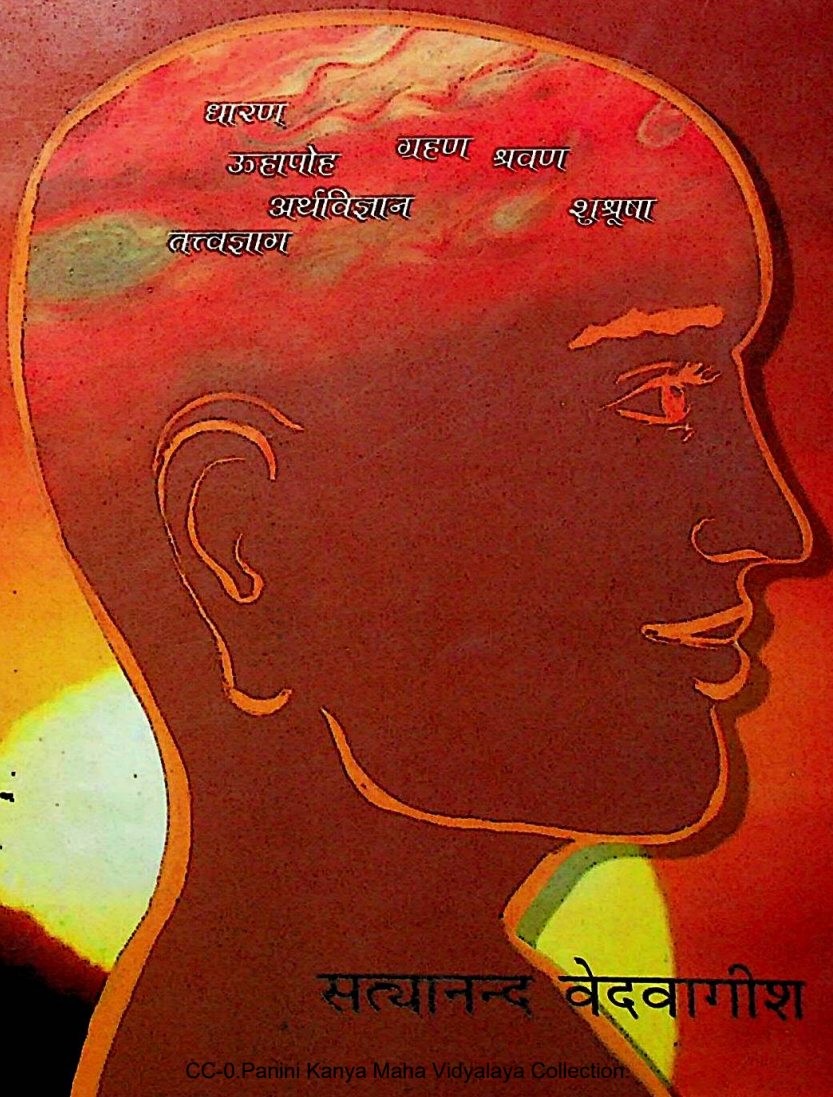


बुद्धिनाधिः



सत्यानन्द वेदवागीश

73

ओ३म्

बुद्धिनिधिः



[बुद्धि के गुण और उनका विकास]

(धीप्रेरक-सुमतिदातृ-मेधायाग-सहितः)

*

*

*

रचयिता-सम्पादक-प्रकाशकः

सत्यानन्द-वेदवागीशः

बुद्धिनिधि:

[पुनर्मुद्रणाद्यधिकारा लेखकायत्ता:]

प्रकाशनतिथि: चैत्र कृष्ण० दशमी, वि० सं० २०५५

संस्करण - प्रथम

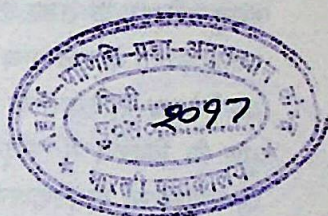
मूल्य : ६४/- रुपये

- प्राप्तिस्थान - १. सत्यानन्द वेदवागीश,
२७२, आर्यनगर, अलवर [राज०] (३०१००१)
२. पी-३१०, सेक्टर २१, नोएडा- [उ० प्र०] (२०१३०१)
३. राष्ट्र सहायक विद्यालय,
रोशनी घर चोराहा, गजनेर रोड, बीकानेर [राज०] (३३४००१)
४. आर्यसमाज, परमानन्द कोलोनी, बीकानेर [राज०] (३३४००१)
५. विजयकुमार गोविन्दराम,
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६ (११०००६)
६. किताब महल, जालोरी गेट बाहर, जोधपुर (३४२००१)

मुद्रक : स्पीडो ग्राफिक्स, दिल्ली 51

ओ३म्

पु रो वा क



ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ (यजुः ३६.३)

‘सर्वरक्षक, गतिप्रदाता, कमनीय, प्रेमास्पद, परमतृप्तिकारक, बोधप्रदाता, कण-कण में प्रविष्ट, सबकी प्रार्थना सुनने वाला, सबका स्वामी, मानवजीवन का परम प्रयोजन, याचना करने योग्य, सब सत् क्रियाओं का आधार, इच्छा करने योग्य, सर्वप्रकाशक, प्राप्त करने योग्य, सब पदार्थों में ओतप्रोत, क्लेशनाशक, दाता, विभागकर्त्ता और वृद्धिकारक ओम् परमेश्वर नित्य एवं प्राणाधार, दुःखविनाशक तथा स्वयं सुखस्वरूप और सबको सुख देने वाला है। उस सर्वव्यापक, सर्वप्रकाशक, सर्व-जगदुत्पादक, कामना करने योग्य परमात्मा के अतिश्रेष्ठ क्लेशनाशक स्वरूप को हम धारण करें- उसका ध्यान करें। जो कि ध्यान में लाया हुआ पूजनीय सविता देव हमारी बुद्धियों को उत्तम रीति से प्रेरित करे’।

यह मानवजाति की प्रभु के प्रति प्राचीनतम बहुधा आवृत्त अति विशिष्ट प्रार्थना है। बुद्धि की उत्तम प्रेरणा हेतु मनुष्य की परमात्मा से गुहार है। बुद्धि उत्तम हो- सद्गुणों से भरपूर हो ऐसी आशीः है- इच्छा है। किन्तु बुद्धि में उत्तम प्रेरणा का क्या स्वरूप है? दूसरे शब्दों में बुद्धि में कौन से गुण अभीष्ट हैं? जिनके कि लिये सविता देव ओम् से पुकार की गई है, यह प्रश्न है। प्राचीन मनीषियों ने इस पर अनेकधा विचार किया है। कृष्ण द्वैपायन व्यास ने महाभारत (भीष्म अ. ४२, ३०-३२) में बुद्धि के तीन भेद बताकर तामसी और राजसी बुद्धि के त्याग और सात्त्विकी बुद्धि की प्राप्ति के लिये इङ्गित किया है। महामति कौटल्य चाणक्य (कौट अ. १.४.२) के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए आचार्य कामन्दक ने बुद्धि के सात गुण माने हैं। वे हैं- शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह, अर्थविज्ञान और तत्त्वज्ञान (काम नीति ४.६२)। हमने इन सात गुणों पर यथासमय कुछ चिन्तन किया। उस चिन्तन को ही पुस्तक का रूप दिया गया है।

इन सात गुणों में से किसी किसी गुण पर कुछ अधिक विस्तार से लिखा गया है। इस पुस्तक की रफ प्रति तैयार हो रही थी, तभी गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद) में

संस्कृतविभाग के रीडर श्री डॉ० कमलेशकुमार शास्त्री ने हमें श्री आचार्य हरिहर पाण्डेय ज्योतिषाचार्य के एक ग्रन्थ 'हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र' से परिचय कराया। इस ग्रन्थ को मैंने स्व-सुविचारों के अनुकूल पाया। मैंने अपनी इस पुस्तक में बुद्धि के 'ऊहापोह' गुण के विवरण में 'सद्-असद्-विवेचन' (विवेक) के प्रसङ्ग में जिन अविवेकजन्य अन्धविश्वासों के निराकरण का प्रयास किया है, उसकी पुष्टि विद्वद्गुरु आचार्य हरिहर पाण्डेय ने भी अपने ग्रन्थ में सप्रमाण की है। पाणिनि कन्या महाविद्यालय की विदुषी आचार्या सुश्री मेधादेवीजी के सौजन्य से हमें वह ग्रन्थरत्न उपलब्ध हो गया। हमने यथाप्रसङ्ग इस ग्रन्थ से अनेक उद्धरण सनामोल्लेख इस पुस्तक में दिये हैं। डॉ० कमलेश कुमार शास्त्री और सुश्री आचार्या मेधादेवी व्याकरणाद्याचार्या के एतदर्थ हम आभारी हैं।

बुद्धिगुणों के विकास के लिये हमने कुछ प्रमुख उपायों पर भी थोड़ा विवेचन प्रस्तुत किया है। शुद्ध सात्त्विक भोजन, औषध-सेवन, गो-अश्व-सेवा, संयम, प्राणायाम, तप, यज्ञ-होम, उषःकालसेवन, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, प्रसन्नता और भक्ति इन बारह उपायों पर यहाँ संक्षेप से विचार किया गया है।

'यज्ञ-होम' उपाय के अन्तर्गत जिस 'धीप्रेरक सुमतिदाता मेधायाग' का उल्लेख किया गया है, उसके लिये चयनित मन्त्र और यागविधि सर्वान्त में दी गई है। वेद में बुद्धि के लिये मुख्य रूप से धी, मति और मेधा इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। मति शब्द प्रमति, सुमति, अमति और दुर्मति के रूप में भी आया है। मति की प्राप्ति तथा 'प्रमति' (= तीक्ष्ण बुद्धि) एवं 'सुमति' (= कल्याणी मति) की सम्प्राप्ति के साथ ही 'अमति' (= निर्बुद्धिता) और 'दुर्मति' (= दुष्ट बुद्धि) के निराकरण की प्रार्थना एवं संकल्प है। यहाँ 'मेधायाग' में 'याग' पद का प्रयोग यज्ञमात्र के वाचक के रूप में किया गया है, न कि श्रौतसूत्रीय रुढ़ अर्थ में।

इस 'मेधायाग' की विधि में समिदाधान और घृताहुति आदि के मन्त्र, सामान्यतया होम में प्रचलित मन्त्रों से भिन्न हैं। 'अयं त इध्म आत्मा' मन्त्र निश्चय ही समिदाधान का मन्त्र है, पर यह वेद-संहिताओं^Δ का मन्त्र नहीं है, अपितु आश्वलायन गृह्यसूत्र (१.१०.१२) का मन्त्र है। हमने गृह्यसूत्रीय मन्त्र के स्थान पर वेदसंहिता में प्रत्यक्षतः उपलब्ध मन्त्र देना उचित समझा। 'समिधाऽग्निं दुवस्यत' मन्त्र भी केवल समिधा का मन्त्र नहीं है। यह तो सम्पूर्ण अग्निहोत्र का मन्त्र है अर्थात् समित्, अग्नि,

* यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः। अमर २.७.१३

यज्ञो यागोऽध्वरः स्तोमः सप्ततन्तुर्मखः सवः। वैज० भूमि० ब्रा० ८२

Δ इस पुस्तक में 'वेद' या 'वेदसंहिता' से अभिप्राय ऋग्वेद (शाकल शाखा), यजुर्वेद (वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्ल शाखा), सामवेद (कौथुम-राणाशाखा) अथर्ववेद (शौनक शाखा) से है।

घृत और हव्य इन चारों का मन्त्र है। 'तं त्वा समिद्धिः' मन्त्र भी समिधा और घृत दोनों का मन्त्र है। 'सुसमिद्धाय शोचिषे' मन्त्र केवल तीव्र घृताहुति का मन्त्र है। 'सुप्रदीप्त ज्वालामय अग्नि पर पुष्कल घृत होमने का मन्त्र है। अतएव मेधायाग में यहाँ समिदाधान के लिये निम्न तीन मन्त्र संगृहीत किये हैं—

'ओम् अग्ने समिधमाहार्धं बृहते जातवेदसे।

स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु' (अ० १९.६४.१)

'ओम् इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि।

तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च' ॥ (अ० १९.३४.२)

'ओम् एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव।

आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय' ॥ (अ० १९.६४.४)

कर्म और विनियोज्य मन्त्र की आपस में स्पष्ट संगति होनी चाहिये। इसी कारण हमने पञ्च घृताहुति के मन्त्र में भी परिवर्तन किया है। वर्तमान में पांच घृताहुति के लिये प्रायः प्रचलित मन्त्र 'अयं त इध्म आत्मा' वेदसंहितेतर तो है ही, साथ ही यह घृताहुति का मन्त्र नहीं है। यह मन्त्र 'इध्म' (= इन्धन = समिधा)* का मन्त्र है। यद्यपि धात्वर्थ—बल से घृत को भी इध्म माना जा सकता है। किन्तु जब अभी अभी दो आहुतियों से पूर्व ही इस मन्त्र को समिदाधान के रूप में समिधा का मन्त्र माना है, तो तुरत बाद ही उसे घृताहुति का मन्त्र मानना कुछ विचित्र सा लगता है। हाँ, यदि वेद में घृतसम्बन्धी मन्त्रों का अभाव होता, तो इस मन्त्र के 'इध्म' को भी घृत मानकर इस मन्त्र का घृताहुति—मन्त्र के रूप में प्रयोग ग्राह्य था। यतो हि, वेद में घृतसम्बन्धी अनेक मन्त्र हैं, अतः हमने 'पञ्च घृताहुति' के लिये निम्नलिखित पांच मन्त्र चुने हैं—

१. ओं घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुर्गृह्या समिन्धे।

घृतं ते देवीर्नृप्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुहतां गावो अग्ने'। अ० ७.८२.६

२. ओं घृतमग्नेर्वध्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम्।

घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्यइव रोचते सर्पिरासुतिः ॥ ऋ० १०.६९.२

३. ओं घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम्।

अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ऋ० २.३.११

४. ओम् आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रीतीको घृतयौनिरेधि।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥ य० ३५.१७ ॥

५. ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे ॥ य० ३.२ ॥

♦ इध्मो वा एषोऽग्निहोत्रस्य यत् समित्। काठक० ६.५

होमेन्धने स्यादिध्मोऽस्त्री पुमानेधः समित् स्त्रियाम् ॥ वैज० भू० ब्रा० ९६

इन पांच मन्त्रों में सोलह बार 'घृत' शब्द आया है। यद्यपि वेद में 'घृत' शब्द जल का भी वाचक है, तथापि यहां संगृहीत मन्त्रों में घृत के साथ अग्नि का सम्बन्ध प्रदर्शित है और दूसरे तथा तीसरे मन्त्र में 'घृतेनाहुतः' तथा 'स्वाहाकृतं' इन अग्नि-विशेषणों के कारण इन मन्त्रों का घृत शब्द घी का ही वाचक है।

होम से पूर्व आचमनमन्त्रों में भी, वेदसंहिताओं के मन्त्रों को ही स्थान देने के विचार से, परिवर्तन किया गया है। वर्तमान में प्रचलित मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक (प्र. १० अनु. ३२, ३५) के हैं। इस याग में चयनित आचमन-मन्त्रों में आया 'आपः' शब्द जल का वाचक है। प्रार्थनामन्त्र भी यहाँ प्रसङ्गानुकूल मेधा-धी-मति-सुमति-प्रमति-प्राप्तिहेतुक और अमति-दुर्मति-निवृत्ति-हेतुक दिये गये हैं।

अन्त में स्विष्टकृद् आहुति का प्रचलित मन्त्र तो दिया ही गया है, पर साथ में एक वैदिक मन्त्र— 'ओं देवो अग्निः स्विष्टकृद्, देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्विष्टं कुर्वन् त्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुने वसुधेयस्य वेतु यज' ॥ यं २८.२२ भी दिया है। क्योंकि 'यदस्य कर्मणो' मन्त्र वेदसंहिता का न होकर शतपथ ब्राह्मण (१४.९.४.२४) का है, जिसे कि आश्वला गृह्य ने उद्धृत किया है। पूर्णाहुति का प्रचलित मन्त्र 'सर्वं वै पूर्णं स्वाहा' भी वेदसंहिता का नहीं है। यह मन्त्र शतपथब्राह्मण की "पूर्णाहुतिं जुहोति। सर्वं वै पूर्णं सर्वं परिगृह्य सूया इति (५.२.३.१) अध्वर्युः पूर्णाहुतिं जुहोति सर्वं वै पूर्णं सर्वमश्वमेधः (१३.४.१.१०) इन कण्डिकाओं के आधार पर ऊहित मन्त्र है। हमने पूर्णाहुति के लिये वेदसंहिता (अथर्व और यजु) के निम्न तीन मन्त्र दिये हैं—

१. ओं धाता दधातु नो रुयिमीशानो जगत्स्पतिः।
स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ अथर्व ७.१५.१
२. ओं पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिध्यते।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिध्यते ॥ अथर्व १०.८.२९
३. ओं पूर्णां देवि परापत सुपूर्णा पुनरपत।
वस्नेव विक्रीणावहा इष्टमूर्ज शतक्रतो ॥ यं ३.४९.

इन सभी परिवर्तित मन्त्रों के प्रति हमारा कोई पूर्वाग्रह अथवा दुराग्रह नहीं है। जो सज्जन प्रचलित अभ्यस्त मन्त्रों पर ही आरुढ़ हों, वे भले ही उन्हीं मन्त्रों को बोलें, किन्तु मेधायाग के प्रधान होम के ६२६ मन्त्रों से आहुति देंगे, तो उन्हें अवश्य लाभ होगा।

अचिन्त्यशक्ति परमेश्वर को इस रचना को समर्पित करने के अनन्तर स्व-गुरुजनों में स्व-पूज्य आचार्य व्रतानन्दजी संन्यासी, स्व-पं-शङ्करदेव जी (नौनेर वाले),

पं० भीमसेन जी वेदवागीश, स्व० श्री मान्य कान्हसिंह जी कोहली आदि के प्रति सश्रद्ध नमोऽञ्जलि । वेदानुसन्धान में सार्थक रूप से मुझे प्रोत्साहित करने वाले आदरणीय स्व० केशवसिंह जी सांखला (जोधपुर) और गांधीधाम निवासी कच्छनररत्न श्री वाल जी रवजी पटेल को भी मैं सादर स्मरण करता हूँ । जिन जिन ग्रन्थों से इस पुस्तक में सहयोग लिया गया है, उनके लेखकों के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ । सुख-दुःख-सहचरी मेरी ध० प० सौ० सुमित्रा आर्य के अनवरत सहयोग के कारण ही मेरी सरस्वती-साधना सफल हुई है, अतः उसके सुस्वास्थ्य-हेतु शुभाशंसा ।

इस पुस्तक में रही न्यूनताओं के लिये क्षमायाचना सहित—

चैत्र कृष्ण० दशमी वि० सं० २०५५
१२.३.९९

निवेदक—
विद्वज्जनचरणरजोजुट
सत्यानन्द वेदवागीश



प्रयुक्त-ग्रन्थ-सङ्केत-सूची

अ०, अथर्व०	अथर्ववेद	मणि०	मणिरत्नमाला
अमर०	अमरकोष	म० पु०	मत्स्यपुराण
ऋ०	ऋग्वेद	मनु०	मनुस्मृति
ऐतरेयो०	ऐतरेयोपनिषद्	मनो० शिव०	मनोविज्ञान तथा
कठो०	कठोपनिषद्		शिवसङ्कल्प
काठक०	काठकसंहिता	म० द० स० जी० च०	महर्षिदयानन्द-
का० नीति०	कामन्दक-नीतिसार		सरस्वती जीवनचरित
कौ० अर्थ०	कौटिलीय अर्थशास्त्र	महानारा०	महानारायणोपनिषद्
ग० त०	गणकतरङ्गिणी	म० भार०	महाभारत
च० सं०	चरक-संहिता	महा० मी०	महाभारत-मीमांसा
चा० सू०	चाणक्य-सूत्र	मु० चि०	मुहूर्त-चिन्तामणि
छान्दो०	छान्दोग्योपनिषद्	य०, यजु०	यजुर्वेद
तैत्ति० उप०	तैत्तिरीयोपनिषद्	योग०	योगसूत्र
तौ ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण	राजनि०	राजनिघण्टु
दक्षि०	दक्षिणामूर्तिस्तव	रामच०	रामचरितमानस
द० दृ० नि०	दयानन्द-दृष्टान्तनिधिः	वाल्मी० रा०	वाल्मीकीय रामायण
द० वे० भा० प्र०	दयानन्द-वेदभाष्य-	वैज०	वैजयन्तीकोषः
	भावार्थप्रकाश	शत०	शतपथ ब्राह्मण
देव० सं० वे०	देवयान, संस्कृति का	शां० ब्रा०	शांखायन ब्राह्मण
	विकास और वेद	शिक्षा०	शिक्षाप्रकाश
धन्व० नि०	धन्वन्तरीय निघण्टुः	शि० सं०	शिक्षासंग्रह
धर्म० इति०	धर्मशास्त्र का इतिहास	संस्कार०	संस्कारविधि
निरु०	निरुक्त	सत्यार्थ०	सत्यार्थप्रकाश
नीति०	नीतिशतक	सां०	सांख्यसूत्र
न्या०	न्यायसूत्र	सा०	सायण
पी० धी० टी०	पीयूषधारा-टीका	सु० सं०	सुश्रुत-संहिता
प्रश्नो०	प्रश्नोपनिषद्	सूक्ति०	सूक्तिनिधि
बृ० वि० शा०	बृहद् विमानशास्त्र	स्वमन्त०	स्वमन्तव्यामन्तव्य-
ब्रह्मवै० पु०	ब्रह्मवैवर्त पुराण		प्रकाश
भग० गी०	भगवद्गीता	ह० ज्यो० ध०	हमारा ज्योतिष और
भोज०	भोजप्रबन्ध		धर्मशास्त्र

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठाङ्क
उपक्रमणिका	१
जड़ पदार्थों से चेतन पदार्थ श्रेष्ठ	१
चेतन जड़ से क्यों श्रेष्ठ हैं?	१
शरीर रूपी रथ में बुद्धि सारथि है	२
बुद्धि के कारण ही मनुष्य की योग्यता	२
बुद्धि: धर्म का अङ्ग	४
राज्यसंचालन-हेतु बुद्धि ही मुख्य साधन	५
छोटे बड़े सभी अभिगमों में बुद्धि की आवश्यकता	६
अध्यापनकार्य और बुद्धि	७
वकालत और बुद्धि	७
तीन प्रकार की बुद्धि	९
बुद्धि के मुख्य सात गुण	९-१८३
१. शुश्रूषा	१०
शुश्रूषा के साथ सेवा आवश्यक	१०
२. श्रवण	१२
३. ग्रहण	१५
४. धारण	२१
५. ऊहापोह	२६-१६०
(क) अपनी अथवा परायी समस्याओं का समाधान	२६
(ख) सिद्धान्तरक्षा अथवा वाद में विजय	३५
(ग) प्रत्युत्पन्नमतित्व (हाजिरजवाबी)	४०
(घ) आविष्कारों की उत्पत्ति	४६
(ङ) विवेकशक्ति (सद् असद् का विवेचन)	५८-१६०
तन्त्रविद्या-अविवेक	५८
गणेशमूर्तिदुग्धपान-अविवेक	६०
'गणेश' एक अवैदिक एवं कल्पित देव	६२

विषय

पृष्ठाङ्क

जड़ में प्राणप्रतिष्ठा—अविवेक	७०
भूतप्रेत—अविवेक	७३
‘भाव’—अविवेक	८८
‘ग्रहप्रभाव’—अविवेक	८८
राशिफल—अविवेक	९२
राशिअनुसार नामकरण—अविवेक	९५
नक्षत्र—अशुभत्व—अविवेक	९७
मूलनक्षत्र—अशुभत्व—अविवेक	९९
वार—अशुभत्व—अविवेक	१०४
मुहूर्त—शुभाशुभत्व—अविवेक	१०९
‘देवशयन’—अविवेक	१२१
कृष्णपक्ष—अशुभत्व—अविवेक	१२३
‘ग्रहण’ अशुभत्व—अविवेक	१२५
‘ग्रहयोग’ अशुभत्व—अविवेक	१२९
ग्रह—अस्तभय—अविवेक	१३०
जन्मकुण्डली (जन्मपत्री)—अविवेक	१३४
फलित—ज्योतिष—अविवेक	१४२
अङ्क—शुभाशुभत्व—अविवेक	१४७
मनौती—अविवेक	१४८
जलस्नान—पापमुक्ति—अविवेक	१४९
जल में अस्थि—विसर्जन—अविवेक	१५२
तीर्थयात्रा से पापमुक्ति—अविवेक	१५३
तीर्थस्थानों पर प्राणत्याग या शवदाह—अविवेक	१५५
मन्त्रतन्त्रसे धनदुगुना—अविवेक	१५६
६. अर्थविज्ञान	१६१—१७८
अभिप्रायज्ञान	१६१
शब्दार्थ—जिज्ञासा	१६३
पुरुषार्थ—चतुष्टयज्ञान	१६४
धर्म	१६५

विषय

पृष्ठाङ्क

'अर्थ'	१६६
काम	१६८
गृहस्थाश्रम	१६९
स्त्रीमहिमा	१७०
सन्तानोत्पत्ति	१७५
मोक्ष	१७६
७. तत्त्वज्ञान	१७९-१८२
प्रकृति से विकृति	१८०
चेतनतत्त्व (ईश्वर, जीव)	१८०
आधुनिक वैज्ञानिक तत्त्व	१८२
बुद्धिविकास के उपाय	१८४-२७५
१. सात्त्विक भोजन	१८५
शाकाहारी भोजन	१८५
गव्य भोजन बुद्धिप्रद	१८५
मांसादिभोजन बुद्धिप्रद नहीं	१८६
२. औषध-सेवन	१८८
३. गो-अश्व-सेवा	१९०
४. संयम, (ब्रह्मचर्य)	१९०
५. प्राणायाम	१९३
६. तप	१९५
७. यज्ञ-होम	१९६
८. उपवास-सेवन	१९८
९. सत्सङ्ग	२००
१०. स्वाध्याय	२०१
११. प्रसन्नता	२०२
१२. भक्ति	२०४

विषय

पृष्ठाङ्क

स्तुति	२०४
प्रार्थना	२०५
उपासना	२०७
धीप्रेरक, सुमतिदाता मेधायाग	२१३-२७५
यागवस्तुएँ	२१३
विधि:	२१३
सङ्कल्पपाठ	२१३
आचमन	२१४
अङ्गस्पर्श	२१४
प्राणायाम	२१५
जप	२१५
प्रार्थना	२१५
अग्न्याधान	२१५
समिदाधान	२१६
घृताहुति	२१६
जलसेचन	२१७
प्रधान-होम	२१७-२७२
धी-मन्त्रा:	२१७
मति-मन्त्रा:	२४२
सुमति-मन्त्रा:	२५७
प्रमति-मन्त्रा:	२६३
अमतिनिवारण-मन्त्रा:	२६६
दुर्मतिनिवारण-मन्त्रा:	२६७
मेधा-मन्त्रा:	२६९
सुमेधा-मन्त्रा:	२७२
प्रियमेधा-मन्त्रा:	२७२
स्विष्टकृदाहुति	२७४
पूर्णाहुति	२७४

बुद्धि-निधि:

[बुद्धि के गुण और उनका विकास]

उपक्रमणिका

बुद्धि का महत्त्व

जड़ पदार्थों से चेतन पदार्थ श्रेष्ठ—

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं। एक जड़ और दूसरे चेतन। इनमें से चेतन (=प्राणी) पदार्थ श्रेष्ठ हैं। चेतनों में बुद्धिजीवी प्राणी श्रेष्ठ हैं। बुद्धिजीवियों में भी मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण (=अध्यापक) श्रेष्ठ हैं। उनमें से भी जो विद्वान् (=उच्च कोटि के ज्ञानवान्) हैं वे श्रेष्ठ हैं और विद्वानों में भी सत्कर्म में सङ्कल्प वाली बुद्धि से युक्त विद्वान् श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो शुभ कर्म करने में लगे हुए हैं, वे श्रेष्ठ हैं; और उनमें भी वे श्रेष्ठ हैं; जिन्होंने अपनी पवित्र बुद्धि से परम चेतन तत्त्व परमेश्वर का सही ज्ञान प्राप्त करके उसका साक्षात्कार कर लिया है^A।

चेतन जड़ से क्यों श्रेष्ठ हैं? —

जड़ पदार्थों की अपेक्षा चेतन (= प्राणी) इसलिये श्रेष्ठ हैं, क्योंकि प्राणियों में जानने का, करने का और भोगने का सामर्थ्य है। जड़ पदार्थ स्वयं किसी को जान

A भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिषु बुद्धिजीविनः।

बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।

कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ मनुस्मृति १.९६, ९७

उपक्रमणिका

नहीं सकते, वे चेतनों के द्वारा जाने जाते हैं। जड़ पदार्थ स्वयं किसी की रचना नहीं कर सकते, उनका निर्माण चेतनों के द्वारा किया जाता है। जड़ पदार्थों का भोग एवं प्रयोग चेतन करते हैं; जड़ पदार्थ किसी का भोग नहीं कर सकते। इस दृष्टि से पृथिवी आदि महत्तम पदार्थों से भी, एक चींटी का भी आत्मा महान् है— श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें जानने का, करने का और भोगने का गुण^B है। इसी प्रकार इच्छा, द्वेष, तथा सुख-दुःख की अनुभूति होना भी चेतनों के ही गुण हैं, जड़ पदार्थों के नहीं^C। इस चेतन आत्मा को भोग और अपवर्ग (=मोक्षप्राप्ति) के लिये शरीर आदि कुछ साधन प्राप्त हैं।

शरीर रूपी रथ में बुद्धि सारथि है—

चेतन (=प्राणी) शरीर धारी हैं। शरीर में बुद्धि का वही स्थान है, जो कि किसी तांगे, कार, बस अथवा ट्रेन आदि में कोचवान अथवा ड्राइवर का होता है। शरीर एक प्रकार का रथ है। आत्मा उसका स्वामी है। इस शरीर-रथ में इन्द्रियाँ घोड़े हैं। मन लगाम है और बुद्धि सारथि है^D।

जैसे बस आदि वाहनों में ड्राइवर का ज्ञानवान्, शान्त स्वभाव वाला, कर्तव्यपरायण, सतर्क और जागरूक होना अत्यावश्यक है। वैसे ही शरीर रूपी रथ में बुद्धि रूपी सारथि (= ड्राइवर) का भी इन गुणों से युक्त होना अनिवार्य है। बस में बैठने वाली सवारियाँ तथा स्वयं बस का मालिक भी, भले ही बसचालन-विद्या से अनभिज्ञ हों, भले ही वे रोष-भरे हों, असावधान हों और भले ही वे उस समय निद्रामग्न भी हो गये हों; किन्तु ड्राइवर का पूर्ण जानकार होना, शान्त रहना, सतर्क रहना और प्रतिक्षण जागरूक रहना परमावश्यक है। ठीक यही बात बुद्धि के विषय में भी है।

बुद्धि के कारण ही मनुष्य की योग्यता—

मनुष्य की योग्यता, उसके शरीर आदि के बड़े हो जाने से नहीं, अपितु उसकी

B ज्ञातृत्वं कर्तृत्वं भोक्तृत्वञ्च चेतनेष्वेव न त्वचेतनेषु ॥

C इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् ॥ न्याय. १.१०

‘मनुष्यैर्योऽन्तःकरण-प्राणेन्द्रिय-शरीर-प्रेरकः सर्वेषामेतेषां धर्ता नियन्ताऽधिष्ठातेच्छाद्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानादिगुणोऽस्ति, सोऽत्र देहे जीवोऽस्तीति वेद्यम् ॥

(ऋ० भाष्ये १.५८.५ स्वामी दयानन्दः)

D आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।

बुद्धिं सु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ कठो० १.३.३, ४

बुद्धि के कारण ही मनुष्य की योग्यता

बुद्धि के विचक्षण होने से आंकी जाती है। हमारे परिवारों में छोटे-छोटे शिशु अपनी अटखेलियों से घर-आंगन की शोभा बढ़ाते हैं। एक-डेढ़ वर्ष का बालक घर में खेल रहा है। अचानक उसकी दृष्टि, सोफे पर पड़े चाबियों के गुच्छे पर पड़ती है। वह उसे उठाकर छमाछम घुमाता-उछालता उससे खेल रहा है। गुच्छा तिजोरी की अथवा दुकान की चाबियों का है। गुच्छे की आवाज से, पिता-माता आदि का ध्यान उधर जाता है। सब यह चाहते हैं और प्रयत्न करते हैं, कि किसी प्रकार इस बालक से यह गुच्छा ले लिया जाय। क्यों? क्या बालक प्यारा नहीं है? निश्चय ही बालक सबको अत्यधिक प्यारा है। पर क्योंकि बालक को अभी उस गुच्छे की चाबियों के महत्त्व का ज्ञान नहीं है। उसके खो जाने से अथवा किसी दूसरे के हाथ पड़ जाने से क्या हानि हो सकती है, इसका अनुमान अभी उस बालक को नहीं है। अर्थात् उसकी बुद्धि का अभी विकास नहीं हुआ है, इसलिये उसके हाथ में अभी चाबियों का रहना ठीक नहीं लग रहा है।

कालक्रम से वही बालक बीस-पच्चीस वर्ष का हो जाता है। तब उसके पिता आदि, उसे तिजोरी की अथवा दुकान आदि की चाबियों का गुच्छा जानबूझकर देते हैं। यदि वह तब कहे कि “मैं चाबियों का गुच्छा नहीं संभालूंगा, मैं तो अभी क्रिकेट खेलूंगा”। तो पिता आदि कहेंगे “नहीं, अब तेरी खेलने की अवस्था गई, अब तुझे ये चाबियां संभालनी पड़ेंगी। हम कब तक यह सब करते रहेंगे। अब तुझे अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिये”।

अब देखिये, कितना अन्तर हो गया। एक समय था, जब उससे चाबियाँ जबर्दस्ती छीनते थे और अब एक ऐसा समय आया, जब उसके द्वारा चाबियाँ लेने से मना करने पर भी जबर्दस्ती उसे चाबियाँ दे रहे हैं। क्या, पहले उसका शरीर एक-डेढ़ फुट का था, इसलिये नहीं देते थे, और अब वह पांच छः फुट का हो गया, इसलिये उसे दे रहे हैं अथवा पहले वह छोटे छोटे कपड़े पहनता था और अब वह बड़े-बड़े कपड़े पहनता है, इसलिये उसे कुंजियाँ दे रहे हैं। अथवा पहले वह बहुत थोड़ा खाता-पीता था और अब उसकी खुराक खूब अच्छी तगड़ी हो गई है, इसलिये उसे चाबियाँ संभालवा रहे हैं? नहीं। ये सब कारण नहीं हैं। कारण बस एक ही है, और वह है बुद्धि। पहले उसकी बुद्धि का विकास नहीं हुआ था, इसलिये वह हानिलाभ आदि का विचार नहीं कर सकता था। अब क्योंकि उसकी बुद्धि विकसित हो गई है, वह उससे हानि-लाभ, आय-व्यय आदि का विवेक कर सकता है। इसीलिये आप जोर देकर चाबियाँ उसके हवाले कर रहे हैं।

उपक्रमणिका

और यह बात वास्तव में सत्य है। अन्यथा जो बालक बड़ा होकर भले ही पांच छः फुट का लम्बा तगड़ा बन गया हो और सु-दर्शन भी हो। किन्तु यदि उसकी बुद्धि का विकास नहीं हो पाया हो, तो वह किसी उत्तरदायित्व को निभाने के योग्य न होने के कारण पराश्रित ही रहता है।

दक्षिणी राजस्थान के एक शहर में एक दांतों के डॉक्टर रहते थे। भगवत्कृपा से उनके आठ पुत्र थे। सम्भवतः अब भी सब जीवित होंगे। उनमें से दो पुत्रों का विवाह इन पंक्तियों के लेखक ने सन् १९६४ के मई मास में थांदला एवं रतलाम में सम्पन्न करवाया था। एक पुत्र डॉक्टर और एक चार्टर्ड अकाउंटेंट था। उनके ससुराल वाले भी अर्थ-सम्पन्न थे। सातवें पुत्र का विवाह भी सन् १९८० के जुलाई मास में थांदला ग्राम में मैंने ही सम्पन्न करवाया। पर इस पुत्र के ससुराल वाले अल्प आर्थिक स्थिति वाले दिखाई दिये। मैंने देखा कि लड़का सुन्दर, स्वस्थ, लम्बा-तगड़ा है, फिर इसका सम्बन्ध यहाँ कैसे हो रहा है? पूछने पर पता लगा कि “लड़के की बुद्धि कम है। एक रुपये में कितने पैसे होते हैं, यह उसे ज्ञात नहीं। पांच रुपये देकर दो पान लाने उसे भेजा जायेगा, तो पनवाड़ी पान के साथ जो भी पैसे लौटायेगा, उन्हें लाकर वह सौंप देगा। कितने का पान आया और कितने बाकी बचे हैं, यह हिसाब उसके बस की बात नहीं है। अतएव उसे आठवें भाई की मेडिकल स्टोर की दुकान पर साथ बैठाया जायेगा, जहाँ वह डिब्बों के और शीशियों के रंग देखकर, काउंटर पर बैठे विक्रेता को देता रहेगा।” अभी हमारे समीप के फ्लेट में रहने वाले परिवार का एक लड़का चौबीस वर्ष का है, परन्तु उसकी बुद्धि तीन-चार वर्ष के बालक की बुद्धि के समान है।

ऐसे उदाहरणों से स्पष्ट है, कि जब तक बुद्धि का सुविकास न हो, तब तक मात्र सुन्दर-स्वस्थ शरीर के कारण मनुष्य योग्य नहीं कहला सकता। विकसित बुद्धि ही मनुष्य की योग्यता की परिचायिका है। इसी के कारण मनुष्य में विवेक-शक्ति आती है। तभी वह भले बुरे की पहचान कर सकता है और सन्मार्ग पर चलकर अपने और पराये जीवन को शान्तिमय बना सकता है।

बुद्धि : धर्म का अङ्ग

मनुष्यों के शान्तिमय और सद् व्यवहार युक्त जीवन का आधार धर्म है। धर्म पर ही सारा संसार टिका हुआ है^E। किन्तु, धर्म क्या है और अधर्म क्या है, इसकी

^E ‘धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा’। महानारा० २२.६

राज्यसञ्चालन-हेतु बुद्धि ही मुख्य साधन

पहिचान बुद्धि के द्वारा ही सम्भव है। इसीलिये प्राचीन मनीषियों ने बुद्धि को धर्म का एक मुख्य अङ्ग माना है। धर्म के प्रसिद्ध दस लक्षणों (धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध) में बुद्धि की भी गणना की गई है^F। 'धी' का अर्थ बुद्धि है^G। वास्तव में निर्बुद्धि अथवा अल्पबुद्धि मनुष्य न धैर्य रख सकता है, न क्षमा कर सकता है और न क्रोध को वश में कर सकता है। मन का दमन करना, इन्द्रियों को वश में रखना और अन्दर-बाहर की तथा व्यवहार की शुद्धि रखना, उसके वश की बात नहीं है। अस्तेय और सत्य के वास्तविक स्वरूप को अल्पबुद्धि वाला नहीं जान सकता। विद्या ग्रहण करके ज्ञानवान् बनना भी उसके लिये 'टेढ़ी खीर' है।

राज्यसञ्चालन-हेतु बुद्धि ही मुख्य साधन

बुद्धि की इतनी महत्ता है, कि इसी के सहारे बड़े-बड़े उपक्रमों का प्रारम्भ और सञ्चालन किया जाता है। राज्य-सञ्चालन रूपी महान् कार्य भी केवल विचक्षण बुद्धि के द्वारा ही सम्भव है। महामति आचार्य चाणक्य ने, भारत की पश्चिमोत्तर सीमाओं पर किये गये विदेशी आक्रमणों को विफल करवाके, भारत के मध्य पूर्व में स्थित विशाल मगध साम्राज्य के नन्द सम्राटों के अन्तिम नन्द सम्राट् घनानन्द के अत्याचारी शासन का विध्वंस करके, जब मौर्य चन्द्रगुप्त को सम्राट् पद पर बिठाया, तो नन्द के कुछ वफादार मित्रों के सहयोग से एक क्षत्रप ने चन्द्रगुप्त के विरुद्ध एक संगठन स्थापित किया और उसमें सम्मिलित होने को चन्द्रगुप्त के पक्ष के भद्रभट, पुरुषदत्त आदि कुछ महत्त्वपूर्ण कर्मचारी चुपके से भाग गये। जब इसकी सूचना महामति चाणक्य को दी गई, कि अमुक अमुक लोग आपका पक्ष छोड़कर शत्रुपक्ष में चले गये हैं। तो इसे सुनकर आचार्य चाणक्य तनिक भी विचलित नहीं हुए और बोले -

'जो लोग [बड़े बड़े ऐश्वर्यों और पदों की लालसा को] हृदय में रख कर परपक्ष में चले गये हैं, अच्छा हुआ कि वे पहले ही चले गये। और अन्य भी जो कोई लोग, हमारे पक्ष में ऐसे हों, जिनके मन में, परपक्ष में जाने से अपनी बड़ी बड़ी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति की सम्भावना हो, वे भी भले ही अभी चले जायें। किन्तु केवल

F 'धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ मनु. ६ १२

G बुद्धि के प्रसिद्ध सात पर्यायवाची हैं- बुद्धि, मति, धी, शेमुषी, प्रज्ञा, मेधा, धिषणा, पण्डा। निघंटु के अनुसार वेद में 'केत, केतु, क्रतु, असु, अभिख्या, शची, माया, चेतः, चित्तम्, व्युनम्' ये दस पर्यायवाची अधिक हैं।

एक वस्तु, जो कि मेरे लक्ष्य को पूर्ण करने में सैंकड़ों सेनाओं से भी बढ़कर है और जिसने अपनी महिमा — अपना पराक्रम नन्दसाम्राज्य को उखाड़ फेंककर दिखा दिया है, वह मेरी बुद्धि मुझे छोड़कर न जावे। बस एक मेरी चमत्कारिणी बुद्धि का मेरे पास रहना पर्याप्त है^H।

यह है राज्य-सञ्चालन में विचक्षण बुद्धि की क्षमता का जीता जागता उदाहरण। विचक्षण बुद्धि वाला मनुष्य नये साम्राज्य स्थापित कर सकता है और बने बनाये साम्राज्यों को मिटा सकता है। इसीलिये कहा है—

‘धनुर्धारी के द्वारा छोड़ा गया बाण केवल एक व्यक्ति को ही मार सकता है, और कभी-कभी [निशाना चूक जाय तो] उसमें भी सन्देह है। किन्तु बुद्धिशाली मनुष्य के द्वारा चलाई गई बुद्धि नायकसहित राज्य को नष्ट कर सकती है^J।

छोटे बड़े सभी अभिगमों में बुद्धि की आवश्यकता

कोई कार्य, व्यवसाय, व्यापार अथवा अभिगम छोटा हो अथवा बड़ा हो सबमें बुद्धि की अनिवार्य आवश्यकता है।

कृषि जैसा साधारण सा मोटा सा दिखने वाला कार्य भी यदि बुद्धिपूर्वक योजनानुसार किया जाय, तो थोड़ी सी भूमि से भी अल्प समय में ही मनुष्य प्रचुर धन प्राप्त कर सकता है. रेगिस्तानी भूमि पर मात्र ५० वर्ष पूर्व स्थापित ‘इसरायल’ देश की कृषि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

व्यवसाय एवं व्यापार में भी जहाँ साहस और पुरुषार्थ की अपेक्षा है, वहीं तीक्ष्ण बुद्धि की भी आवश्यकता है। John Davison Rockefeller, बिडला, टाटा, डालमिया आदि, बड़े बड़े धनाढ्य व्यक्ति कैसे बने ? ये सब साधारण परिवारों के व्यक्ति थे, पर बुद्धिकौशल ने ही उन्हें इतनी सम्पत्ति का स्वामी बनाया। आचार्य चाणक्य ने भी इसीलिये कहा है कि मनुष्य की बुद्धि के अनुसार ही उसका ऐश्वर्य होता है^K।

H ‘ये याताः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्व गता एव ते, ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यमाः। एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका, नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।

(मुद्राराक्षस १.२६)

J एकं हन्यान् वा हन्यादिषुमुक्तो धनुष्मता। बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सनायकम्।

(महाभार० ५.३३.४२)

K यथाबुद्धिस्तथा विभवः ॥ चा० सू० ४०९

वकालत और बुद्धि

अध्यापनकार्य और बुद्धि

अध्यापन कार्य में भी वही मनुष्य पूरा सफल होता है, जो ज्ञानसञ्चय के साथ ही पढ़ाने में बुद्धि से कार्य लेता हो। धीमान् अध्यापक शिष्यों को अल्प समय में ही ज्ञानवान् बना देता है। बुद्धि के बल पर ही विष्णुशर्मा ने जड़बुद्धि राजकुमारों को अपने अध्यापन-सम्बन्धी बुद्धिचातुर्य से छः महीनों के अल्प समय में ही राजनीति-विशारद बना दिया। 'पञ्चतन्त्र' नामक विख्यात ग्रन्थ इसका साक्षी है।

वकालत और बुद्धि

वकालत का कार्य तो मुख्यतः विचक्षण बुद्धि पर ही अवलंबित है। जो वकील जितना अधिक स्फूर्तिमयी प्रतिभामयी बुद्धि का धनी होगा, उतना ही वह वकालत में सफल होगा।

सन् १९५२ में C.R.P.F. नीमच में कार्यरत एक डॉक्टर चोपड़ा जी ने हमें एक घटना सुनाई। पहले न्यायालय के द्वारा किसी को मृत्युदण्ड देते समय लिखा जाता था 'अमुक व्यक्ति को अमुक तारीख को इतने बजकर इतने मिनट पर फांसी पर लटकाया जावे' (On the such date of such month at this time should be hanged)। एक व्यक्ति को मिंगुमरी (अथवा 'मरी') (जो अब पाकिस्तान में है) की जेल में न्यायालय के आदेशानुसार फांसी लगनी थी। फांसी के समय जेलर, डॉक्टर और जज आदि तो उपस्थित रहते ही हैं। विशेष अनुमति से उस फांसी के पात्र व्यक्ति के वकील महोदय भी उपस्थित हो गये। ठीक समय पर जब जल्लाद ने, उस व्यक्ति के गले में फांसी का फंदा फिट करके और मुंह सिर पर काला कपड़ा डालकर जैसे ही व्यक्ति के नीचे का तख्ता खींचा और जैसे ही वह व्यक्ति उस गड़ढे में लटका, तुरन्त दौड़कर उसके वकील ने कौल भरकर उसे उठा लिया। जज आदि सब चिल्लाये। वकील ने कहा 'ठहरिये, यदि मेरा अपराध लगे तो मुझे भी सजा देना। किन्तु मेरे मुवक्किल को जो सजा सुनाई गई थी, वह पूरी हो गई, अतः अब उसका फन्दा खोल दिया जाय। क्योंकि सजा में लिखा है "..... लटका दिया जाय Should be hanged" यह कहाँ लिखा है कि 'मृत्युपर्यन्त Till death'। लटकाने का कार्य पूरा हो गया है। इस पर वादविवाद हुआ। वकील की सशक्त दलील के सामने, उस व्यक्ति को फांसी के फंदे से मुक्त करना पड़ा।" उसके बाद से प्रत्येक मृत्युदण्ड में न्यायालय द्वारा 'मृत्युपर्यन्त फांसी पर लटकाया जावे Should be hanged till death लिखा जाने लगा।

ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं, जिनमें वकीलों के बुद्धि-कौशल से लोग बड़ी से बड़ी सजाओं से बरी हो गये। यह बात अलग है, कि इस बुद्धिसामर्थ्य के दुरुपयोग से दोषी छूट जाते हैं, निरपराध मारे जाते हैं।

बुद्धिमान् मनुष्य के शत्रु भी कम बनते हैं।^Θ सांसारिक सामान्य व्यवहारों में भी व्यर्थ के कलहों से बुद्धिमान् व्यक्ति ही बचता है। इसीलिये नीतिकार का कथन है "सौ देना पड़े तो दे देवे, पर विवाद-कलह-झगड़ा न करे, यह बुद्धिमान् का लक्षण है और देवे कुछ नहीं केवल झगड़ा ही करता रहे, यह मूर्ख का लक्षण है^R।

इसी प्रकार 'अर्थशास्त्र' कार का कथन है, कि बुद्धि से हीन मनुष्य पिशाच के तुल्य होता है।^Δ

आध्यात्मिक क्षेत्र में भी बुद्धि वैभव सम्पन्न व्यक्ति शीघ्र अपने लक्ष्य में सफल होता है। साधना करते हुए जब साधक ऋतम्भरा प्रज्ञा से सम्पन्न हो जाता है, तभी वह सम्प्रज्ञात समाधि और अन्त में असम्प्रज्ञात समाधि की उच्चतम स्थिति में पहुँच पाता है। यजुर्वेद में कहा है कि "जिस परमतत्त्व परमदेव परमेश्वर में सारा संसार एक घोंसले के समान आश्रय ग्रहण करता है, जिसके अन्तर्गत ही संसार के सारे सूक्ष्म-स्थूल पदार्थ संयोग और वियोग को प्राप्त होते हैं, जो सर्वव्यापक है और कण कण में ओत-प्रोत है, उस परमात्मदेव को बुद्धिमान् (= वेनः = प्रज्ञावान्) मनुष्य गुहा में (गुफा में) ही साक्षात् प्राप्त कर सकता है"^L। वह गुहा (=गुफा) बुद्धि ही है। इसीलिये व्यासजी ने पतञ्जलि मुनि के योगसूत्र पर भाष्य करते हुए कहा है कि—

'जिस गुहा (=गुफा) में शाश्वत ब्रह्म परमेश्वर का साक्षात्कार होता है, वह गुफा पाताल नहीं है, पर्वतों की कन्दराएँ भी वह गुफा नहीं है, घना अन्धकार और समुद्र की बहुत गहरी खन्दकें भी वह गुहा नहीं है। वह गुहा है 'बुद्धि'। जिसे ज्ञानी लोग प्रभुप्राप्ति का एकमात्र स्थान साधन बताते हैं^M।'

Θ 'नास्ति बुद्धिमतां शत्रुः ॥ चा० सू० ५३४

R शतं दद्यान् विवदेदेतद् विज्ञस्य लक्षणम्। न दद्याद् विवदेदेव ह्येतन्मूर्खस्य लक्षणम्।

Δ बुद्धिहीनः पिशाचतुल्यः ॥ चा० सू० ५२७ ॥

L 'वेनस्तत् पश्यन्निर्हितं गुहां सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।

तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विश्वः प्रजासु ॥ यजु. ३२.८

M न पातालं न च विवरं गिरीणां नैवान्धकारः कुक्षयो नोदधीनाम्।

गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतं बुद्धिवृत्तिमविशिष्टां कवयो वेदयन्ते ॥

[योग व्यासभाष्य ४.२२]

तीन प्रकार की बुद्धि

लोककल्याण और परोपकार के क्षेत्र में भी बुद्धि से ही विशेष सफलता मिलती है। परोपकारी ऋषि-महात्माओं ने बुद्धि विशेष के बल से ही जनकल्याण के कार्य किये हैं। निकट भूतकाल में महर्षि स्वामी दयानन्द का उदाहरण सामने है।

अशेष-शेमुषी-सम्पन्न स्वामी दयानन्द ने आलस्य, आत्मग्लानि, वासनावन, परतन्त्रता, अन्धविश्वास और अविद्या आदि में जकड़ी हुई कोटि-कोटि जनता का अपने विशिष्ट बुद्धिबल से उद्धार किया। ऋग्वेद में कहा है - 'धैर्यवान् मनुष्य अपनी बुद्धि से लोगों को पवित्र कर देता है।'

तीन प्रकार की बुद्धि

इस प्रकार जो लौकिक और अलौकिक, सांसारिक और आध्यात्मिक सफलताओं का मूल कारण है, उस बुद्धि के विषय में अनेक प्रकार से विचार किया जाता रहा है। महाभारत के (भगवद्गीता-प्रकरण) में बुद्धि तीन प्रकार की बताई गई है। सात्त्विक बुद्धि, राजसिक बुद्धि और तामसिक बुद्धि।

'जो बुद्धि प्रवृत्ति को और निवृत्ति को, कर्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा बन्ध और मोक्ष को जानती है, वह सात्त्विक बुद्धि कहलाती है^N।

'जिस बुद्धि से मनुष्य वास्तविकता के विपरीत धर्म को अधर्म और कर्तव्य को अकर्तव्य मान बैठता है, वह रजोगुणी बुद्धि है^O।

'जिस अज्ञानान्धकार-पूर्ण बुद्धि से मनुष्य अधर्म को धर्म मान लेता है और सभी बातों को उलटा ही समझता है, वह तमोगुणी बुद्धि है^P।

बुद्धि के मुख्य सात गुण

इस सत्त्वगुणी बुद्धि में कौन कौन सी विशेषताएँ और गुण होते हैं, इस विषय में शास्त्र में विविध प्रकार से चर्चा की गई है। वेद में बुद्धि को सात सिर वाली - सात अवयव वाली कहा है। ऋग्वेद का कथन है "हममें जो पालनवृत्ति वाला विद्वान् होता

* पुनाति धीरो भुवनानि मायया¹। ऋ १.१६०.३ [माया = प्रज्ञा]

N प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।

बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ भग० गी० १८.३०

O यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।

अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ भग० गी० १८.३१

P अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता।

सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ भग० गी० १८.३२

बुद्धि के गुण

है, वह सत्य से प्रादुर्भूत होने वाली और सात सिर वाली – सात अङ्गों वाली विशाल बुद्धि को प्राप्त कर लेता है^Q।

आचार्य कामन्दक ने भी अपने नीतिशास्त्र में धी (= बुद्धि) के सात गुण बताये हैं। वे हैं – शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह, अर्थविज्ञान और तत्त्वज्ञान^R।

इन सात गुणों का विस्तार से विवेचन करना आवश्यक है।

१. शुश्रूषा

सुनने की इच्छा को 'शुश्रूषा' कहते हैं। जैसे पीने की इच्छा पिपासा, खाने की इच्छा बुभुक्षा, जीने की इच्छा जिजीविषा, करने की इच्छा चिकीर्षा और जानने की इच्छा जिज्ञासा कहलाती है, वैसे ही सुनने की इच्छा शुश्रूषा कहलाती है। यह बुद्धि का प्रथम गुण है। किसी नई बात को जानने की लालसा, किसी नये विषय को समझने का चाव, किसी उपदेश या प्रवचन को सुनने की ललक अथवा किसी उत्तम लेख और पुस्तक को पढ़ने की रुचि होना ही शुश्रूषा है। यह बुद्धि का आधारभूत अत्यावश्यक गुण है। इस गुण के होने पर बुद्धि के अन्य गुणों के होने की प्रबल संभावना रहती है। जिनकी बुद्धि में यह गुण नहीं है, मानो उनकी बुद्धि का मुख्य द्वार ही बन्द है। उसमें अन्य गुण कहाँ से प्रवेश पा सकेंगे?

शुश्रूषा के साथ सेवा आवश्यक

अब एक प्रश्न होता है, कि आजकल लोक में तो सेवा-शुश्रूषा के रूप में प्रचलित 'शुश्रूषा' शब्द का अर्थ तो सेवा अथवा परिचर्या है, फिर उस का 'सुनने की इच्छा' यह अर्थ कैसे हुआ? इसका समाधान यह है, कि प्राचीनकाल में शुश्रूषा (= श्रवणेच्छा) के साथ सेवाभाव अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ था। जो मनुष्य कुछ सुनना चाहता था – जानना चाहता था, उसे प्रथम सेवा-सत्सङ्ग करना आवश्यक होता था। वास्तव में सेवा के साथ-सेवा के द्वारा जो कुछ सुना जाता है – जाना जाता है, वह

Q इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीर्म-विन्दत् । ऋ० १०.६७.१

R शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।

ऊहापोहार्थं विज्ञाने तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥ का० नीति० ४.६२

महामति चाणक्य ने भी अपने 'अर्थशास्त्र' नामक बेजोड़ ग्रन्थ में बुद्धि के प्रायः ये ही गुण गिनाये हैं। – "शुश्रूषा-श्रवण-ग्रहण-धारण-विज्ञानोहापोह-तत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम्" (को० अर्थ० १.४.२)

संशयरहित और चिरस्थायी होता है। इसीलिये प्राचीन समय में शुश्रूषा (= सुनने की कामना) वाले के लिये सेवासत्सङ्ग करना अनिवार्य होता था।

उपनिषद् में विवरण है, कि सुकेशा भारद्वाज और शैब्य सत्यकाम आदि ब्रह्मनिष्ठ छः विद्वान् एकत्रित होकर परब्रह्म-विषयक प्रश्नों के समाधान के लिये — कुछ जानने- सुनने के लिये शुश्रूषायुक्त होकर महर्षि पिप्पलाद के पास पहुँचे और 'हम अपने कुछ प्रश्नों के उत्तर आपसे सुनना चाहते हैं' ऐसा निवेदन किया। पिप्पलाद ऋषि ने कहा 'एक वर्ष पर्यन्त आप लोग हमारे आश्रम में नियमों का पालन करते हुए निवास करो। तब प्रश्न पूछना। यदि हम उन प्रश्नों का उत्तर जानते होंगे, तो अवश्य उत्तर देंगे'^S। यह था शुश्रूषा (= सुनने की इच्छा) वालों के लिये सेवासत्सङ्ग का दीर्घकालीन प्रावधान। आज के जिज्ञासुओं को — शुश्रूषा वालों को आज कोई आचार्य, मात्र एक मास अथवा एक सप्ताह भी अपने यहाँ नियमपूर्वक निवास करने की अनिवार्यता बताकर, तत्पश्चात् उत्तर देने की बात कहे, तो वे जिज्ञासु (= शुश्रूषु) लोग उसके स्थान से बाहर निकलकर, उस आचार्य को घमंडी बताते हुए उसकी हंसी उड़ायेगें और बिना उत्तर पाये वापिस लौटना ही पसन्द करेंगे। जब कि सुकेशा भारद्वाज आदि उन असली शुश्रूषा वाले विद्वानों ने पिप्पलाद की उस आज्ञा का पालन किया। यथासमय महर्षि पिप्पलाद ने उनके प्रश्नों का यथेष्ट उत्तर दिया और अन्त में नम्रतापूर्वक कहा "मैं इतना ही उस परब्रह्म के विषय में जानता हूँ, इससे अधिक नहीं"^T। किन्तु वर्षपर्यन्त नियमपालन (= सेवासत्सङ्ग) का यह परिणाम था, कि उनकी बुद्धि इतनी निर्मल हो गई थी, कि महर्षि के उत्तरों से उनके सारे संशय नष्ट हो गये और परम सन्तुष्ट होकर उन्होंने ऋषि का आभार माना^U।

शुश्रूषा के साथ सेवा-सत्सङ्ग को जोड़ने का रहस्य यह है, कि उच्चकोटि के सिद्ध व्यक्ति के समीप रहने से और उसके जीवन को निकट से देखने से अनेक शङ्काओं का स्वतः समाधान हो जाता है। इसीलिये कहा गया है—

S सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः। तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नात् पृच्छत, यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्यामः ॥ प्रश्नो १.१, २.

T तान् होवाच—'एतावदेवाहमेतत् परं ब्रह्म वेद नातः परमस्तीति' । प्रश्नो १४.७

U ते तमर्चयन्तः 'त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः' ॥ प्रश्नो १४.८

‘उच्च श्रेणी के सिद्ध गुरु (भले ही वह युवावस्था वाला हो) का तो मौन ही व्याख्यान – उपदेश होता है और शिष्यों के सन्देश स्वतः दूर हो जाते हैं^V।

मुनिजनों के आश्रमों के स्वतः नियमनियन्त्रित सात्त्विक वातावरण में निवास करने से व्यक्ति की बुद्धि निर्मल एवं सात्त्विक होकर गूढ़ बातों को समझने के योग्य हो जाती है। इन्द्रविरोचन-प्रजापति के आत्मविषयक आख्यान से भी इस बात की पुष्टि होती है^W।

इस प्रकार शुश्रूषा के साथ सेवा का कार्यकारण सा सम्बन्ध होने के कारण ही पीछे जाकर शुश्रूषा का अर्थ सेवा अथवा परिचर्या भी प्रसिद्ध हो गया। किन्तु परमार्थतः ‘सुनने की इच्छा’ ही शुश्रूषा का धातुलभ्य अर्थ है^X।

विद्याग्रहण का सम्बन्ध भी बुद्धि से है। जो शुश्रूषा गुण वाली बुद्धि से युक्त होगा = शुश्रूषु होगा = सुनने-जानने की तीव्र इच्छा वाला होगा, वही गुरु से विद्या की प्राप्ति में सफल होगा। इसीलिये मनु ने कहा है—

‘जैसे कुआ खोदने वाला मनुष्य कुदाल से खोदता खोदता अन्त में जल प्राप्त कर लेता है, वैसे ही शुश्रूषु=श्रवणेच्छुक शिष्य गुरु में स्थित सारी विद्या को प्राप्त कर लेता है^Y।

२. श्रवण

बुद्धि का दूसरा गुण है श्रवण अर्थात् सुनना। मनुष्य में सुनने की इच्छा तो होती हो, पर वह सुनने के लिये प्रयत्न न करे, कहीं जावे नहीं, तो केवल इच्छा करने से क्या लाभ? नई-नई बात जानने की इच्छा हो, नया कुछ समझने का चाव हो, पर उसके लिये चेष्टा न करे, कहीं प्रवचन आदि सुनने न जावे, कोई उत्तम पुस्तक आदि न पढ़े, तो उसकी ‘शुश्रूषा’ अपूर्ण ही रह जायेगी। आचार्य चाणक्य कहते हैं कि श्रवण

V चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या युवा गुरुः।

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्याः सञ्छिन्नसंशयाः ॥ दक्षि

W य आत्माऽपहतपाप्मा सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः। इन्द्रो ह वै देवानां विरोचनोऽसुराणाम् तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः। ... स (इन्द्रः) हापराणि द्वात्रिंशतं वर्षाण्युवास....। स (= इन्द्रः) हाऽपराणि द्वात्रिंशतं वर्षाण्युवास..। स (= इन्द्रः) हाऽपराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतं वर्षाणि सम्पेदुः। एतत्तद् यदाहुरेकशतं ह वै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ॥ (छान्दो. ८.७-१२)

X ‘श्रु श्रवणे’ (स्वादि ६७६) + सन् + टाप् = शुश्रूषा

Y यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।

तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ मनु २. २१८

करने से बुद्धि में अभिवृद्धि होती है। मनुष्य जैसे जैसे श्रवण करता जायेगा, वैसे-वैसे उसकी बुद्धि विकसित होती जायेगी।*

श्रवण करने का — सुनने, समझने अथवा पढ़ने का भी एक ढंग है। किसी के प्रवचन, उपदेश अथवा समाधान को एकाग्र बुद्धि से सुने, समझे अथवा पढ़े। हाथ, पांव, आंख आदि की चंचलता न करे। आलस्य न करे। तभी श्रवण = सुनना सफल होगा।

दो मित्र थे। उनमें से एक सत्सङ्ग प्रेमी थे। वे समय निकालकर प्रवचन आदि सुनने जाया करते थे। दूसरे मित्र दिन रात व्यवसाय में लगे रहते थे। कपड़े की दुकान थी। सबेरे जा बैठते और रात्रि आठ बजे तक वहाँ जमे रहते। लड़के संभालने वाले थे, पर आमदनी का लोभ उन्हें प्रवचन आदि में जाने से रोक देता था। एक दिन सत्सङ्गी मित्र के बहुत आग्रह करने पर वे भी किसी प्रकार सायंकाल उसके साथ सत्सङ्ग-भवन में प्रवचन सुनने चले गये। ये नये प्रवचन-श्रोता एक खम्भे का सहारा लेकर बैठ गये। ऐसा प्रवचन कभी सुना न था। अध्यात्म की चर्चा थी। कुछ वे दिन भर के व्यवसाय से थके से थे। सो सहारा लेकर बैठने से निद्रा ने आ घेरा। थोड़ी ही देर में उन्हें स्वप्न में दुकान और ग्राहक दिखाई दिये। भाव-ताव हुआ और चार मीटर पोपलीन का ग्राहक ने ऑर्डर दे दिया। लालाजी ने नाप तो सपने में कर लिया, पर फाड़ने के लिये प्रत्यक्ष हाथ बढ़ा दिया। वहाँ पोपलीन तो थी नहीं। लालाजी का हाथ अपनी धोती पर पड़ा। पास बैठे मित्र को जब कपड़ा फटने की आवाज आई, तो उसने देखा, कि उसका मित्र अपनी पहनी हुई धोती फाड़ रहा है। उसने रोका कि लालाजी! यह क्या कर रहे हो? लालाजी ने कहा 'चुप रह, ग्राहक चला जायेगा'। जब लालाजी को झिंझोड़ कर बताया गया, कि यह तो सत्सङ्गभवन है। यहाँ न दुकान है, न ग्राहक है और न कपड़ा है, आप अपनी धोती फाड़ रहे हो। तब लालाजी सावधान हुए।

कई वर्ष पूर्व की बात है। बड़ौदा (गुजरात) में मुरारि बापू की रामकथा हो रही थी। मैं भी उस समय बड़ौदा में ही था। प्रोफेसर धर्मेन्द्रजी धींग्रा के निवासस्थान के समीप की एक माता भी प्रतिदिन उस कथा में जाती थी। एक दिन उससे पूछा, कि 'माता जी। आपने कथा में क्या सुना?' माता जी 'अरे पण्डित जी! कथा बहु सरस होती'। धींग्रा जी 'माताजी! कथा सरस हरी, पण तमे शुं सांभळ्युं?' माताजी 'अरे! कथा

* श्रुतादि प्रज्ञोपजायते ॥ को० १.४ ॥ यथाश्रुतं तथा बुद्धिः ॥ चा० सू० ४५९ ॥

एवी सरस हती, जग्या जग्या ए टी.वी. सेट लागेला हता, मुरारी बापू कथा करता जोवा मां आवता हता'। धींघ्रा जी 'माता जी! मारो प्रश्न छे के कथा मां तमे शुं सांभळ्युं?' माताजी 'अरे! साहब चार लाख माणस भेगा हता कथा मां'। इस उत्तर के बाद भी जब धींघ्रा जी ने अपना वही प्रश्न दोहराया तो अन्त में माताजी बोलीं "आ तो अमने बरोबर खबर नथी, अमे तो कथा सांभळवा एटले माटे जाइये छीए के कथा सांभळवा जतां दरेक पगे अश्वमेध नो फल मळे छे"।

बताइये इस प्रकार कथा या प्रवचन सुनने से क्या लाभ? ऐसे ही सुनते समय दरी या आसन आदि के धागे निकालना, अखबार पढ़ना, आपस में बातें करना, इधर उधर देखना आदि 'श्रवण' की रीति नहीं है।

कुछ लोग प्रवचन आदि में जायेंगे, किन्तु प्रवचन पर ध्यान न देकर वे प्रवचनकर्ता के शरीर और वेश आदि पर ध्यान देंगे। एक व्यक्ति का ऐसा ही कुछ स्वभाव था। धीरे-धीरे उसने प्रवचन आदि में जाना ही छोड़ दिया। क्योंकि उसे हर प्रवचनकर्ता में कोई न कोई त्रुटि ही दिखाई देती थी। एक दिन उसका एक बन्धु आग्रह करके उसे एक उच्चकोटि के संन्यासी जी के प्रवचन में ले गया। प्रवचन की समाप्ति पर उस बन्धु ने कहा - 'देखा, ये संन्यासी जी कितने अच्छे और शान्त स्वभाव के हैं। इन्होंने कितना सर्वहितकारी प्रेरणाप्रद प्रवचन दिया है'। यह सुनते ही वह व्यक्ति बोला 'क्या खाक प्रवचन दिया है, इन्होंने तो ऐनक लगा रखा है।' अब बताइये, आधा या एक घण्टा प्रवचन के 'श्रवण' में लगाया, पर उस समय का उपयोग उस व्यक्ति ने प्रवचन को ध्यान से सुनने में नहीं किया। वह मात्र प्रवचनकर्ता के दोष ढूँढ़ने में लगा रहा।

जो श्रोता तन्मय होकर प्रवचन, व्याख्यान अथवा पाठ को सुनते हैं, उन्हीं से प्रवचनकर्ता अथवा अध्यापक अपने श्रम को सफल समझते हैं। कहते हैं कि महाराज जनक के यहाँ महर्षि याज्ञवल्क्य का प्रवचन-सत्र चल रहा था। एक दिन मन्त्री आदि सभी लोग आ गये। प्रवचन का निर्धारित समय हो गया था। अभी महाराज जनक नहीं पहुँच पाये थे। महर्षि को जनक की प्रतीक्षा करते देख, लोग आपस में कानाफूँसी करने लगे, कि 'महर्षि होकर भी राजा के प्रति पक्षपात का भाव रखते हैं' आदि। पर बात ऐसी न थी। जनक ही असली श्रोता थे। वे अत्यन्त तन्मय होकर प्रवचन का 'श्रवण' करते थे। अन्य लोगों का भले ही ध्यान इधर-उधर चला जाय, किन्तु जनक की

एकाग्रता भंग न होती थी। एक घटना से सबको इसका प्रमाण मिल गया। एक दिन महर्षि का प्रवचन हो रहा था। किसी ने अफवाह फैला दी, कि महलों में आग लग गई है। प्रवचन स्थल में इस अफवाह के पहुँचते ही भगदड़ मच गई। मन्त्री, तन्त्री, अधिकारी सभी अपने अपने आवासों की ओर दौड़ पड़े। केवल एक श्रोता निश्चल भाव से बैठे 'श्रवण' करने में लगे रहे। वे थे महाराज जनक।

इसलिये एकाग्र होकर विवेकपूर्वक कुछ लेने की भावना से सुनना चाहिये — 'श्रवण' करना चाहिये।

३. ग्रहण

बुद्धि का तीसरा गुण है 'ग्रहण' करना। सुने जाते हुए अथवा पढ़े जाते हुए उपदेश अथवा लेख आदि को क्रमशः बुद्धि में जमाते जाना ही 'ग्रहण' करना है। यदि आपकी बुद्धि में शुश्रूषा=श्रवण करने की इच्छा—जानने की इच्छा प्रबल है और फिर आप ध्यान—पूर्वक सुन—समझ—पढ़ भी रहे हैं, किन्तु यदि आपकी बुद्धि में उस सुने—समझे विषय ने अपना स्थान नहीं बनाया, तो 'शुश्रूषा' और 'श्रवण' व्यर्थ हो गये। इसलिये 'ग्रहण' करना बुद्धि का एक विशिष्ट गुण है। जिनकी बुद्धि इस गुण से रहित है, वे बहुत कुछ सुनकर भी, बहुत कुछ पढ़कर भी कोरे के कोरे रहते हैं। एक घण्टा भर व्याख्यान सुनने के बाद उनसे पूछिये व्याख्यान से आपने क्या ग्रहण किया है?' वे बोलेंगे अजी! व्याख्यान सुनते समय तो बहुत अच्छा लग रहा था, पर अब तो कुछ याद न रहा। अच्छा लेख या कोई विषय पढ़ लेने पर भी उसका कुछ भी उनके पास न रहा। घण्टों लगाकर पूरा अखबार चाट जायेंगे। पर उसकी मुख्य मुख्य खबरों से भी दूसरों को अवगत नहीं करा पायेंगे। अर्थात् सुनते गये और भूलते गये। आगे आगे का पढ़ते गये और पीछे पीछे का वहीं छोड़ते गये। अर्थात् उनकी बुद्धि में 'ग्रहण' गुण का अभाव है। इसके अभाव से मनुष्य प्रायः अयोग्य ही कहलाता है।

प्राचीन काल में एक प्रजाहितकारी राजा ने शिल्पी आदि हस्तकलाकारों को संरक्षण देने और प्रोत्साहित करने की दृष्टि से एक नियम बना दिया था, कि जिन शिल्पियों की वस्तु सायंकाल तक न बिके, उनकी उस वस्तु को राज्य का शिल्परक्षा विभाग खरीद लेगा और शिल्पी को उचित मूल्य दे दिया जायगा। इस नियम से उस राज्य में शिल्प की बड़ी उन्नति हुई। एक शिल्पी ने कई महीनों के परिश्रम से तीन मूर्तियाँ बनाई और नगर के मुख्य द्वार के समीप एक ऊँचे तख्त पर उन्हें रख दिया।

मूर्तियों के साथ लेबल पर उनकी कीमत भी लिखी हुई थी। एक मूर्ति के लेबल पर एक रुपया, दूसरी के लेबल पर दस रुपया और तीसरी के लेबल पर एक हजार रुपया मूल्य लिखा था। मूर्तियाँ इतनी सुन्दर थीं, कि लोगों का ध्यान बरबस उधर ही जाता था। लोग खड़े हो जाते और एकटक उन्हें निहारने लगते। उनके मुँह से निकलता 'वाह! क्या मूर्तियाँ बनाई हैं, अद्भुत कलाकारी है, इतनी सजीव सी मूर्तियाँ हैं, कि मानो बस अब बोलने ही वाली हैं। हर एक की इच्छा होती, कि मैं इन्हें अवश्य खरीद लूँ। पर लेबल देखकर चकित हो जाते, कि इन मूर्तियों की ऊँचाई, चौड़ाई, रंग, रोगन, नग, नगीने, नाक, नक्श और यहाँ तक कि बनाने का आधार (= कच्चा सामान लोहा आदि) भी एक सा है, पर मूल्य में इतना अन्तर क्यों? लोग उस शिल्पी से प्रार्थना करते कि भाई! एक रुपये और दस रुपये वाली मूर्तियाँ हमें बेच दे। शिल्पी का उत्तर होता था 'यह तीन मूर्तियाँ का पूरा सेट ही बिकेगा, अलग अलग मूर्ति नहीं दी जायेगी'। सायंकाल तक कई पारखी जनों ने चक्कर लगाये, किन्तु शिल्पी अपनी शर्त से टस से मस नहीं हुआ और कोई भी ग्राहक एक हजार और ग्यारह रुपये देने की हिम्मत न कर सका।

नियमानुसार वह शिल्पी भी शिल्परक्षा विभाग के प्रांगण में अपनी उन मूर्तियों के साथ उपस्थित हो गया। जब उसकी बारी आई तो, खरीदने वाला राज्याधिकारी भी उन मूर्तियों पर मोहित हो गया। उसने शिल्पी को एकान्त में बुलाकर उन ग्यारह रुपये वाली मूर्तियों के एक सौ रुपये तक लगा दिये, कि मैं इन्हें व्यक्तिगतरूप से खरीद लूँगा, और तीसरी मूर्ति तू वापिस ले जाना"। किन्तु शिल्पी अपनी बात पर अड़ा रहा। उस राज्याधिकारी को इतनी महंगी वस्तु खरीदने का राजा की ओर से अधिकार न था। बात राजा तक पहुँची। उस शिल्पी को मूर्तियों सहित राजा के पास पेश किया गया। राजा भी उन मूर्तियों को देखकर खुशी से झूम उठा। अपने वचनानुसार वह उनकी कीमत देने को तैयार हो गया। किन्तु राजा ने शिल्पी से पूछा "शिल्पी! ये मूर्तियाँ हुबहू बिल्कुल एक सी हैं, फिर मूल्य में इतने भारी अन्तर का क्या रहस्य है?"

शिल्पी बोला 'महाराज! ये मूर्तियाँ तीन प्रकार के मनुष्यों की प्रतिनिधि हैं'। शिल्पी ने एक रुपये वाली मूर्ति राजा के सामने रखकर, एक तिनका राजा के हाथ में देकर, उस मूर्ति के कान में डालने का निवेदन किया। राजा ने पहिले दाहिने और फिर बाँये कान में तिनका डालने का प्रयास किया, पर तिनका अन्दर न गया। दोनों

कानों में छिद्र न थे। दोनों कान ठस थे। शिल्पी बोला “राजन्! यह मूर्ति उन मनुष्यों की ओर इशारा करती है, जो किसी अच्छी बात, उपदेश, व्याख्यान, सलाह को सुनते ही नहीं हैं। कानों में डट्टा लगाये रहते हैं। जब वे कुछ नया सुनने को ही तैयार नहीं, कुछ अच्छी बात जानने को ही तत्पर नहीं, तो उनका मूल्य क्या हो सकता है। भले ही वे इस मूर्ति के समान सुडौल, सुन्दर और दर्शनीय क्यों न हों, किन्तु योग्यता के अभाव में उनकी कीमत नगण्य सी ही है”। शिल्पी ने दस रुपये वाली मूर्ति राजा के समक्ष रखी और पूर्ववत् तिनका कान में डालने को कहा। राजा ने मूर्ति के दाहिने कान में तिनका डाला, तो वह बांये कान से बाहर निकल आया और बांये कान से डाला तो दाहिने कान से बाहर निकल आया। शिल्पी ने कहा ‘भगवन्! यह मूर्ति उन मनुष्यों की ओर इंगित कर रही है, जो किसी बात को, व्याख्यान को या पाठ आदि को सुनते तो हैं, पर उसमें से कुछ भी ग्रहण नहीं करते। अपने पल्ले कुछ भी नहीं बांधते। उनकी बुद्धि में ‘ग्रहण’ करने की शक्ति न होने से, उसमें सुना या पढ़ा कुछ भी चिपकता नहीं है। एक कान से सुना और दूसरे कान से निकाल दिया। ऐसे मनुष्य अपनी योग्यता नहीं बढ़ा सकते। फलस्वरूप उनकी विशेष कीमत कैसे हो सकती है?

शिल्पी ने अब अन्तिम मूर्ति के कान में तिनका डालने को कहा। राजा ने मूर्ति के दाहिने कान में तिनका डाला। तुरंत वह अन्दर की ओर चला गया। बांये कान से डाला वह भी अन्दर की ओर खिंच गया। शिल्पी तिनके देता गया और राजा कानों में डालता गया। सारे के सारे तिनके अन्दर की ओर से मानो लपक लिये गये। शिल्पी ने उस मूर्ति में गलनली बनाई थी और अन्दर लीवर लगा रखे थे। शिल्पी ने निवेदन किया ‘राजन्! यह मूर्ति उन महान् व्यक्तियों की प्रतिनिधि है, जो किसी व्याख्यान, प्रवचन, पाठ आदि सुनकर ‘ग्रहण’ करते जाते हैं। उनको अपना बना लेते हैं। इनके सञ्चय से वे एक दिन बड़े योग्य विद्वान् बन जाते हैं। उनमें से कोई मन्त्री-पद पाता है। कोई न्यायाधीश बनता है और कोई उच्चाधिकारी। वे जीवन में हजारों-लाखों रुपये अर्जित करते हैं।

बुद्धि का यह ‘ग्रहण’ गुण जिनमें होता है, वे अल्प समय में ही अधिकाधिक ज्ञान का उपार्जन कर लेते हैं। मुनिवर गुरुदत्त विद्यार्थी विज्ञान के व्यक्ति थे। छात्रावस्था में और फिर शिक्षावस्था में वे पुस्तकालय से पुस्तकें लेते रहते थे और एक दो दिन के बाद उन्हें लौटाकर नई लेने आ जाते। एक दिन पुस्तकालयाध्यक्ष से रहा न गया। उसने पूछ लिया ‘आप पुस्तकें सूँघने के लिये ले जाते हैं अथवा

बुद्धि के गुण

पढ़ने के लिये'? पूछने का अभिप्राय था, कि इतना शीघ्र तो कोई इन पुस्तकों को सरसरी रूप से भी पढ़ नहीं सकता। मुनिवर ने उत्तर दिया 'आप इस पुस्तक में से किसी पृष्ठ का नंबर बोलिये, मैं बता दूंगा, कि उस पृष्ठ पर क्या लिखा है'। यह है बुद्धि के 'ग्रहण' गुण का चमत्कार!

डेढ़ सौ वर्ष से भी कुछ पहले की बात है। सोरों (उत्तरप्रदेश) में नदी में कुछ लोग स्नान कर रहे हैं। कुछ बाहर हैं। एक दाक्षिणात्य ऋग्वेदी पण्डित कमर तक के जल में खड़े होकर नित्य नियमानुसार कुछ सूत्रों का पाठ कर रहे हैं। घण्टे भर में पाठ समाप्त हो गया। छप-छप की ध्वनि से और पाठ बन्द होने से बाहर बैठे एक नेत्रहीन युवक ने अनुमान लगा लिया, कि पाठकर्त्ता व्यक्ति बाहर आ गये हैं। उसने उनसे निवेदन किया "भगवन्! आप जो पाठ कर रहे थे, कृपया उसे दुबारा बोल दीजिये"। वे विद्वान् बोले "नहीं, हमारे पास दुबारा दोहराने का समय नहीं है। हमने तो अपना व्रत निभाने की दृष्टि से वह पाठ किया था"। यह सुनकर वह नेत्रहीन युवक कुछ सहमते हुए बोला "भगवन्! कृपा करके मेरे से वह पाठ सुन लीजिये, कहीं कोई त्रुटि तो नहीं रह गई है"। युवक की बात सुनकर वे विद्वान् भारी विस्मय में पड़ गये। जिन्हें अभी उस पाठ को दुहराने की फुर्सत नहीं थी, वे ही उस आश्चर्यशक्ति वाले अन्धयुवक के पास बैठ गये और उन्होंने उसका सारा पाठ शान्तिपूर्वक सुना। समाप्ति पर वे बोले 'वाह! जैसा मैंने बोला था, वैसा ही तुमने सुना दिया है'।

यह नेत्रहीन युवक और कोई नहीं, यह वह अद्वितीय आत्मा था, जो आगे जाकर दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती नाम से प्रख्यात वैयाकरण हुए और जिन्होंने पढ़ाकर जगत् को स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसा उद्भट वाग्मी, वेदोपदेष्टा, क्रान्तिकारी सुधारक, प्रबल पाखण्ड-निवारक, अद्वितीय दार्शनिक और स्मृति-विधाता आचार्य प्रदान किया।

वे दाक्षिणात्य विद्वान् पाणिनीय व्याकरण-सूत्रों का अष्टाध्यायीक्रम से पाठ कर रहे थे। उस युवक को वे सूत्र कौमुदी-क्रम से ही याद थे। उसने अष्टाध्यायीक्रम से उन सूत्रों को कभी नहीं सुना था। पर धन्य है, उसकी बुद्धि की 'ग्रहण' शक्ति को जिसके कारण एक बार में ही उसने उन सूत्रों को उस क्रम से याद कर लिया। इसी 'ग्रहण' शक्ति के बल पर ही दण्डी विरजानन्द न केवल फारसी जैसी भाषाओं के भी विज्ञ थे, अपितु शतरंज की चालों के भी विजयी ज्ञाता थे।

संस्कृत के पद्यकाव्यों में बेजोड़ 'नैषध' काव्य के प्रणेता कविवर श्रीहर्ष के विषय में प्रसिद्ध है, कि उन्होंने 'नैषध' की रचना तो कर ली, किन्तु पण्डितसमाज में उसका समादर न हुआ। लोगों ने सम्मति दी, कि आप कश्मीर जाकर वहाँ के राजपण्डितों की और वहाँ के महाराज की अपने काव्य पर मोहर लगवा लीजिये। उनकी अनुकूल सम्मति मिलने पर ही विद्वन्मण्डली में आपके काव्य की पूछ होगी। परिणामतः वे कश्मीर रवाना हुए। योगक्षेम के लिये द्रव्य भी साथ लिया। श्रीनगर पहुंच तो गये, पर वहाँ के स्थानीय पण्डितों ने ईर्ष्यावश उनका राजदरबार में प्रवेश नहीं होने दिया। पर्याप्त समय बीत गया। रुपया-पैसा भी खुटने लगा। तभी एक दिन जब श्री हर्ष जेहलम नदी के किनारे दैनिक व्रतनियम में लगे हुए थे, तभी समीप ही दो महिलाओं में 'तू तू मैं मैं' होते होते घमासान होने लगा। बरतन फूटे और मारामारी भी हो गई। मामला राजदरबार में पहुँचा। राजा ने दोनों महिलाओं की बात सुनकर, गवाही के विषय में पूछा, तो वे दोनों बोलीं, कि वहाँ पास में और तो कोई नहीं था, हाँ, एक पण्डित बैठा हुआ जरूर कुछ कर रहा था। राजा की आज्ञा से सिपाही श्रीहर्ष को दरबार में ले आये। राजा ने पूछा 'क्या आप इन स्त्रियों की लड़ाई के विषय में कुछ बता सकते हैं?' श्री हर्ष ने देखा कि एक कुछ हल्के लाल कपड़ों वाली और एक पीले कपड़ों वाली ये दो स्त्रियाँ वही हैं, जो कुछ गड़-बड़-सड़-बड़ सी बोलती हुई, नदी तट पर उनके नियमानुष्ठान-स्थल के समीप ही लड़ रहीं थी। अतः राजा की ओर अभिमुख होकर श्री हर्ष बोले 'राजन्! मैं बाहर का व्यक्ति हूँ। इनकी भाषा तो नहीं जानता। इसलिये अर्थज्ञान न होने के कारण यह तो नहीं बता सकता, कि किसने बुरा कहा और किसने भला कहा, किन्तु इन्होंने जो वाक्य बोले, उन्हें मैं बता सकता हूँ। राजा की स्वीकृति मिलने पर श्रीहर्ष ने क्रमशः बताना आरम्भ कर दिया कि लाल वस्त्रों वाली ने यह बोला, फिर पीले वस्त्रों वाली ने यह उत्तर दिया, फिर लाल ने यह कहा, फिर पीली ने यह कहा। इत्यादि। दोनों स्त्रियों ने मुस्कराते हुए स्वीकार किया, कि ठीक ये ही वचन उन्होंने बोले थे। राजा ने न्याय करके स्त्रियों को तो विदा कर दिया। पश्चात् राजा ने परम आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि 'हे पण्डितप्रवर! धन्य है आपकी 'ग्रहण' वती मेधा बुद्धि, को कि जिसमें उनका अर्थ न जानते हुए और स्वप्न में भी यह आशा न होते हुए कि इनके झगड़े में कभी हमारी गवाही होगी, वे वाक्य जस के तस संरक्षित हैं। आप कौन हैं और कहाँ के हैं?' कविप्रवर

बुद्धि के गुण

श्रीहर्ष ने अपनी सारी रामकहानी कह सुनाई। राजा ने उन्हें प्रचुर सम्मान प्रदान किया, उनके काव्य पर उत्कृष्ट काव्य होने की मोहर लगाई और इतने दिनों तक श्रीहर्ष को राजदरबार में प्रवेश न पाने देने के षड्यन्त्र के लिये पण्डितों को खूब धिक्कारा।

पण्डितों ने तो हजार प्रयत्न किये, कि श्रीहर्ष का राजा से मेल न होने पावे, परन्तु क्या कहना, उसकी बुद्धि की चमत्कारिणी 'ग्रहण' शक्ति को जिसके कारण उन्हें न केवल राजा से मिला दिया, अपितु उनकी अद्भुत मेधाशक्ति से प्रसूत काव्यरत्न को भी सुसम्मान प्राप्त हुआ।

इस गुण को अभ्यास के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति बढ़ा सकता है। आप पांच मिनट किसी का प्रवचन सुनिये अथवा टेप रिकार्डर से किसी की वार्ता सुनिये अथवा किसी पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़िये और फिर विचार कीजिये कि इस प्रवचन-खण्ड में अथवा पृष्ठ में पहले क्या कहा गया था, फिर क्या कहा गया और अन्त में क्या कहा गया था। इस प्रकार विचार करते रहने से बुद्धि की 'ग्रहण' शक्ति बढ़ती जायेगी।

जो लोग निरन्तर इस प्रकार की साधना करते हैं, वे 'ग्रहण' की चमत्कारिणी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। कोई तीस वर्ष पूर्व ऐसे ही एक अभ्यासी साधक मुनि ने इस शक्ति का प्रदर्शन किया था। सभा में वे एकाग्र होकर बैठ गये। एक व्यक्ति वहाँ समीप में घंटे पर चोट करता रहा। बीच में कईयों ने कई प्रकार के प्रश्न उन मुनि महोदय से किये। एक ने पूछा '४३५७ को १३६ से गुणा करने पर गुणनफल क्या होगा'। दूसरे ने पूछा 'पेरु की राजधानी क्या है?' तीसरे ने पूछा 'ईराक के सिक्के का क्या नाम है?' किसी ने पूछा—'सात अङ्कों की सबसे बड़ी संख्या में १८९ का भाग देने पर भजनफल क्या होगा?' 'हल्दीघाटी का युद्ध कब हुआ था? आदि। पांच मिनट समाप्त होने पर उन मुनि ने बताया कि इतने तो घंटे बजे हैं। ४३५७ को १३६ से गुणा करने पर गुणनफल होगा ५,९२, ५५२। पेरु देश की राजधानी 'लीमा' है। ईराक के सिक्के का नाम 'दीनार' है। सात अंकों की सबसे बड़ी संख्या ९९,९९,९९९ में १८९ का भाग देने पर भजन फल ५२,९१० होगा और ९ शेष रहेंगे। आदि सभी प्रश्नों के क्रम से उत्तर दे दिये। यह कार्य असम्भव सा प्रतीत होता है, किन्तु बुद्धि की सूक्ष्मता ऐसी है, कि उसकी 'ग्रहण' शक्ति को सतत विकसित करने से यह सब सम्भव हो जाता है। यदि कदाचित् विद्यार्थियों की बुद्धि के इस गुण का सुविकास हो जाय, तो बार बार रट्टा लगाने और सुनने से उन्हें मुक्ति मिल जाय।

४. धारण

बुद्धि का चौथा गुण है 'धारण'। सुने हुए और ग्रहण किये हुए किसी विषय को बहुत समय तक स्मरण रखना 'धारण' गुण कहलाता है। यदि हमने श्रवण और ग्रहण द्वारा किसी विषय को उस समय तो हुबहु स्मरण कर लिया, पर यदि कुछ समय बाद उसे भूल गये तो, उस सुनने और ग्रहण करने का विशेष लाभ न हुआ। इसलिये बुद्धि के 'धारण' गुण का भी विशेष महत्त्व है। इस गुण के कारण ही ऋषि-मुनियों ने और वेदपाठियों ने सहस्रों वर्षों तक वेदादि शास्त्रों को और अनेक विद्याओं को सुरक्षित रखा। सामान्य जगत् व्यवहार में भी इस गुण का महत्त्व देखने को मिलता है।

सन् १९५६ ईसवी में इन पंक्तियों का लेखक पारजी (गुजरात) में श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी के पास वेदाध्ययनार्थ कुछ समय तक रहा था। तब उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द जी की 'धारणा' शक्ति के विषय में बताया, कि पहले गुरुकुल कांगड़ी गंगा के उस पार अपने पुराने भवनों में था। उस समय स्वामीजी 'महात्मा मुंशीराम' के रूप में गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य थे और पं. सातवलेकर जी वहाँ वेदोपाध्याय थे। महात्माजी प्रतिदिन एक बार गुरुकुल के सभी विभागों का निरीक्षण अवश्य करते थे। जब वे अतिथिशाला में पहुंचते, तो वहाँ प्रायः छात्रों का कोई न कोई संरक्षक ठहरा हुआ मिलता था। वे उससे पूछते 'आप उदयपुर से आये हैं?' अतिथि—'जी महाराज!', महात्मा जी—'आपका बालक पृथ्वीराज है?' अतिथि—'हाँ, महाराज'। महात्मा जी—'वह पञ्चम कक्षा में पढ़ता है?', अतिथि—'जी हाँ'। महात्मा जी—'आप उसकी उन्नति से सन्तुष्ट हैं?', अतिथि—'पूरी तरह से सन्तुष्ट हूँ महाराज'।

वह संरक्षक यह समझता, कि महात्मा को किसी ने मेरे विषय में पहले से ही सूचित कर दिया है। पर वास्तविकता यह नहीं होती थी। महात्मा जी को कोई सूचना न देवें, तो भी 'किसी ब्रह्मचारी का कौन संरक्षक है और वह कहाँ का है' इत्यादि महात्मा जी को स्मरण रहता था। उस समय गुरुकुल में लगभग ३५० छात्र थे। जिन्होंने विद्यालयों में अध्यापन-कार्य किया है, वे जानते हैं, कि कक्षाध्यापक को अपनी कक्षा के २५-३० छात्रों के भी नाम रजिस्टर में लिखकर रखने होते हैं। उनके पिता आदि के नाम याद रखना तो दूर की बात है। प्रधानाध्यापक को भी सब छात्रों के विषय में यह स्मरण नहीं रहता, कि कौन किस कक्षा का छात्र है। पर, महात्मा जी को सब छात्रों के तथा उनके संरक्षकों के नाम और उनके निवास स्थान तथा छात्रों की कक्षा का

बुद्धि के गुण

नाम स्मरण रहता था। यह कैसे होता था? जब कोई संरक्षक अपने बालक को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने आता था, तो महात्मा जी से आचार्य के नाते उसका और उसके बालक का नाम-धाम आदि रूप परिचय होता ही था। बस, उसी समय महात्माजी की धारणावती बुद्धि में वे नाम-धाम आदि स्थिर हो जाते थे।

जिनकी बुद्धि में यह 'धारणा' गुण अति विशेष होता है, वे आश्चर्य-जनक योग्यता प्राप्त कर लेते हैं।

कविराज उमाचरण के पितामह के पास विभिन्न देशों से आकर अनेक शिष्य विविध विद्याओं का अध्ययन करते थे। एक शिष्य ने आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन पूर्ण कर लिया। अब उसका अपने घर जाने का समय आ गया। आचार्य उसकी बुद्धि की विशेषता से परिचित थे। उन्हें विश्वास भी था, कि इस शिष्य ने वास्तव में ही सम्पूर्ण चिकित्सा शास्त्र को आत्मसात् कर लिया है और यह एक सफल चिकित्सक बनकर मनुष्यों को ही नहीं अन्य प्राणियों को भी सुख पहुँचायेगा। किन्तु "निघण्टु (= ओषधिगुणविज्ञान) के बिना वैद्य, व्याकरण से रहित विद्वान् और मन पर विजय के बिना साधु, ये तीनों उपहास के पात्र होते हैं"^Z। इस लोकोक्ति के अनुसार आचार्य ने उस शिष्य स्नातक की निघण्टु विषय में परीक्षा लेने का निश्चय किया।

आचार्य ने एकान्त में अपने ओषधि-उद्यान की सैकड़ों ओषधियों में से कई ओषधियाँ लेकर उनसे कुछ गोलियाँ बनाईं। सूख जाने के बाद, एक दिन उस शिष्य को बुलाकर एक गोली दी और कहा "इस गोली को मुख में रखकर चूसो और इसमें जो जो ओषधियाँ तुम्हें मालूम पड़ें, उनके नाम लिखते जाओ"। स्नातक ने गोली मुख में रखी। नेत्र बन्द करके उसे चूसना आरम्भ किया। कुछ क्षणों के पश्चात् वह लेखनी लेकर, उस गोली में मिश्रित ओषधियों के नाम लिखने लगा। बहुत से नाम लिख लिये। पर, आगे जाकर वह रुक गया। गोली भी घुलकर समाप्त हो गई। वह चिन्ता में बैठा है। आचार्य ने पूछा 'नाम लिख लिये?' स्नातक बोला 'आचार्यवर! गोली में मिश्रित चौदह ओषधियों के नाम तो लिख लिये, किन्तु एक ओषधि इस गोली में और है, उसका नाम स्मरण नहीं आ रहा है। आचार्य ने उसके हाथ से कागज लेकर उसमें लिखे ओषधिनामों को देखा। देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हुए बोले 'वत्स! तुम पूर्णरूप से

Z निघण्टुना विना वैद्यो विद्वान् व्याकरणं विना ।

मनोजयं विना साधुस्त्रयस्ते यान्ति हास्यताम् ॥

उत्तीर्ण हो गये हो। वास्तव में इस गोली में पन्द्रह ही ओषधियों का मिश्रण था। जिस ओषधि का नाम तुम नहीं लिख सके, वह ओषधि अपने ओषधि-समूह में नई आई है और मैंने अभी तक उससे तुम लोगों को परिचित नहीं कराया था।^Δ

बुद्धि की प्रबल 'धारणा' शक्ति के द्वारा उस स्नातक ने पूर्वानुभूत उन ओषधियों को उस गोली में तुरन्त पहचान लिया था।

राजस्थान के अजमेर जिले के ग्रामीण अंचल में एक घटना प्रसिद्ध है। मेरी कनिष्ठ बहिन अ० सौ० शीला ने सुनाया था—

'एक चौधरी गर्मी की ऋतु में एक दिन अपने गांव से किसी दूसरे गांव को जा रहा था। अपराह्न ३-४ बजे के लगभग जब वह एक चरागाह के समीप से गुजर रहा था, तो पशु चराते हुए एक व्यक्ति ने सहजभाव से उसे पुकार कर अपने पास बुलाया और थोड़ी देर सुस्ता लेने को कहा। वार्तालाप से दोनों के विचार कुछ इस प्रकार से मिल गये, कि उस पशुपालक ने बहुत आग्रहपूर्वक उस चौधरी को, समीपस्थ गांव में अपने घर पर एक रात रुककर, फिर सबेरे आगे जाने को मना लिया। रात्रि को भोजन करते हुए, जब चौधरी ने दही खाया, तो अकस्मात् उसके मुहँ से निकल गया 'ओहो' यह स्वाद तो मेरी उस भैंस के दही का स्वाद है जो कि १०-११ वर्ष पूर्व चोरी हो गई थी। उसकी यह बात सुनकर पशुपालक बोला 'चौधरी! मैंने एक भला सयाना आदमी समझकर, तुम्हें अपना अतिथि बनाया और तुम मुझको चोर बना रहे हो'। चौधरी ने कहा 'भाई! भले ही तुमने यह भैंस चुराई न हो, कहीं से खरीदी हो, पर है यह दही मेरी भैंस के दूध का'। पशुपालक 'चौधरी! तुम्हारी भैंस तो दस वर्ष पहले चुराई गई थी, पर यह दही जिस भैंस के दूध का है, वह अभी छः सात साल की है। फिर तुम्हारी भैंस का कैसे हुआ?', चौधरी - 'तो फिर यह भैंस मेरी भैंस की पाडी (= बछड़ी) होगी। माँ के दूध जैसा ही बेटे का दूध होता है'। चौधरी के इस वाक्य ने पशुपालक को उत्तेजित कर दिया।

प्रातःकाल वह पशुपालक हठ करके उस चौधरी को समीपस्थ बड़े गाँव के ठाकुर के पास न्याय करवाने के लिये ले गया। दो तीन आदमियों को और भी साथ ले लिया। गांव के बाहर ठाकुर परिवार की एक महिला मिली। 'ठाकुर के पास न्याय करवाने के लिये ये लोग जा रहे हैं' यह पता लगने पर उसने व्यंग में कहा 'यह बहरा

Δ सन्दर्भ - स्वामी आत्मानन्द सरस्वती कृत 'मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प' पृष्ठ ७९

ठाकुर क्या न्याय करेगा। लोग कह कह कर थक गये, कि तुम्हारी बेटी बड़ी हो गई है, अब उसका विवाह कर दो, पर उस ठाकुर के कानों पर जूं भी नहीं रेंगती। वे आगे बढ़े। रावले (= ठाकुर के मकान) के बाहर एक और स्त्री से सुनने को मिला 'यह अन्धा राव क्या न्याय करेगा! घर में जवान लड़की बैठी है और इसे उसका विवाह करने की जरा भी चिन्ता नहीं है, अन्धा बना बैठा है'।

ठाकुर के विषय में इन महिलाओं की टिप्पणियों को सुनकर पशुपालक आदि शंकित तो हुए, पर साहस करके रावले में प्रविष्ट हो गये। ठाकुर की पारिवारिक परिस्थितियाँ जो कुछ भी रही होंगी, किन्तु ठाकुर का जनता में बड़ा सम्मान था। तत्कालीन राव-ठाकुरों से उसका व्यवहार भिन्न प्रकार का था। न तो वह किसी से 'बेगार' करवाता था और न ही निरपराध प्रजा को स्वार्थ हेतु सताता था। परिणामतः उसका बाह्य आर्थिक स्तर तो घटिया था, पर प्रतिष्ठा का माप बहुत ऊँचा था। सात्त्विक प्रवृत्ति के होने के कारण वह बहुत बुद्धिमान् भी था।

शिष्टाचार के पश्चात् पशुपालक ने पूरी बात सुनाते हुए, उस चौधरी को व्यर्थ इलजाम लगाने का दोषी बताया और न्याय करने की प्रार्थना की। ठाकुर ने चौधरी से भी प्रश्नोत्तर किये। दोनों पक्षों की बात सुनकर ठाकुर बोले 'देखो, यह जेठ महीने का शुक्ल पक्ष है। छः महीने बाद मगसर के महीने की पूनम के दिन तुम लोग मेरे पास आना। तुम्हारा न्याय हो जायेगा'। आगे की पेशी की तारीख सुनकर वे लोग यथास्थान चले गये।

मगसर की पूनम आ गई। ठाकुर ने उस दिन पृथक् रखे दो सेर बाजरे की लाप्सी (= पुष्कल घी में तैयार किया गया मीठा दलिया) बनवाई। उसमें कुछ मेवे और इलायची भी डलवाई। पूर्व निर्देशानुसार वे पशुपालक और चौधरी ठाकुरद्वारे पहुँच गये। उनको आदरपूर्वक भोजन हेतु बिठाया गया। वह लाप्सी विशेष रूप से उन्हें परोसी गई। भोजनसमाप्ति पर ठाकुर ने पहले पशुपालकों से पूछा 'क्यों, लाप्सी कैसी लगी?'। पशुपालक 'मालिक! लाप्सी इतनी स्वादिष्ट थी, कि उसका बखान कैसे करें? हमने अपने जीवन में ऐसी बढ़िया लाप्सी कभी नहीं खाई'। अब राव चौधरी की ओर मुड़ा "कहो चौधरी! लाप्सी कैसी लगी?"। चौधरी "रावसाहब। लाप्सी थी तो बहुत बढ़िया पर...., इतना कहकर वह रुक गया। ठाकुर चौधरी के उत्तर को सुनकर कुछ रोष से बोला "पर पर क्या लगा रखी है, क्या लाप्सी में कोई कमी थी?" सहमते हुए चौधरी-

“अन्नदाता! आप नाराज न हों, तो सच्ची बात कहूँ। ठाकुर की स्वीकृति मिलने पर चौधरी बोला “ठाकुर साहब! लाप्सी खूब मीठी थी। घने घी में भूनी गई दिखती थी। मेवे भी थे और इलायची की सुगंध भी आ रही थी। किन्तु इसमें बकरे की ओजरी, (= आमाशय) की सी गन्ध भी आ रही थी, जैसे बकरा-बकरी को डकार आने पर उसके मुंह से आती है। और लाप्सी के हर ग्रास में उस गंध का पता लग रहा था”।

चौधरी की बात सुनते ही ठाकुर की आंखें चमक उठीं। वह फैसला सुनाते हुए पशुपालक से बोला “भाई! जिस भैंस के दूध का दही उस दिन इस चौधरी को तुमने खिलाया था, वह भैंस इस चौधरी को लौटा दी जाय। वास्तव में वह भैंस इसी की है”

इस फैसले का विवरण देते हुए ठाकुर ने बताया — “जिस लाप्सी को तुमने खाया है, उसके बाजरे का इतिहास सुनो। छः महीने पहिले तुम्हारे न्याय हेतु आने के तुरन्त बाद, एक सेर सूखा बाजरा एक बकरे को खिलाया गया और तुरन्त उसे पानी पिला दिया गया। बाजरा अभी उसके आमाशय में ही था, अतः फूलने लगा और थोड़ी ही देर में बकरे का पेट फट गया। पेट से निकले बाजरे को धोकर, सुखवा दिया। आषाढ़ में उस बाजरे को खेत के एक अलग टुकड़े में बो दिया गया। समय पर कुटवाकर बाजरा निकलवाकर संभालकर पृथक् रखवा दिया था। इस बाजरे का क्या होगा, इसे मेरे सिवाय अन्य कोई मनुष्य नहीं जानता था। आज उसी बाजरे के दलिये की लाप्सी बनवाई गई थी। इतना सब होने पर भी, जब इस चौधरी को इस लाप्सी में से बकरे की ओजरी (= आमाशय) की गंध की अनुभूति हो रही है, तो निश्चय ही इसकी बुद्धि की स्मृति शक्ति = ‘धारण’ करने की शक्ति अद्भुत है और वस्तुतः ही यह अपनी भैंस के दही के स्वाद को नहीं भूला है और ऐसा ‘धारण’— सामर्थ्य उस भैंस की पांडी (= बछड़ी) के दूध-दही के स्वाद को पहचान सकता है”। यह है बुद्धि के ‘धारण’ गुण का कमाल।

इस धारणावती बुद्धि को ही ‘मेधा’ कहा गया है। वैदिक जन नित्यप्रति इसकी प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं—

‘हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर। जिस पवित्र धारणावती बुद्धि के लिये दिव्य गुण वाले विद्वान् जन और पालक अनुभवी लोग अर्चना करते हैं, उस बुद्धि से हमें आज ही संयुक्त कर दीजिये’^B।

B यां मेधां देवगुणाः पितरश्चोपासते ।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ यजु० ३२.१४

५. ऊहापोह

बुद्धि का पञ्चम गुण 'ऊहापोह' है। 'ऊह' कहते हैं तर्क को, प्रतिभा को, सूझ को, प्रत्युत्पन्नमतित्व को, नई स्फुरणा को। अपोह कहते हैं, प्रतितर्क को। यह 'ऊह' गुण बुद्धि का अतिविशेष गुण है। ऊह = तर्क की स्थिति एक ऋषि के समान है। अतएव कभी यास्क ने कहा था -

'ऋषियों का अभाव सा होने पर मनुष्यों ने देवों से पूछा 'अब हमारे मध्य कौन ऋषि होगा?' तब देवों ने उन्हें 'तर्क' को ऋषि के रूप में प्रदान किया^C। हम इस 'ऊह' गुण के पांच विभाग कर सकते हैं-

(क) अपनी अथवा परायी समस्याओं का समाधान करना -

ऊहापोह बुद्धि के द्वारा मनुष्य अपने घर-परिवार की अथवा दूसरों की समस्याओं का समाधान सरलता से कर लेता है। संसार में देखा जाता है, कि इस प्रतिभा से सम्पन्न मनुष्य स्वयं भी सुखी रहता है और दूसरों को भी सुखी कर देता है। झगड़ा करते हुए व्यक्तियों का आपस में मेल-मिलाप करवा देता है। अन्यो पर व्यर्थ दोषारोपण करने वालों को उनका ही दोष समझा देता है। लोगों के आपसी मनमुटाव को क्षणभर में दूर कर देता है।

बात सन् १९४० के लगभग की है। हरयाणा (जो कि तब पंजाब के ही अन्तर्गत था) के एक गांव में स्कूल नहीं था। गांव के बच्चे पढ़ने दूसरे गांवों के स्कूलों में जाते थे। गांव वालों ने मिलकर पच्चीस हजार रुपये स्कूलभवन के लिये इकट्ठे कर लिये। पर पैसा इकट्ठा होने पर झगड़ा खड़ा हो गया। गांव के बीचों बीच एक सड़क निकलती थी। आधा गांव पूर्व दिशा में और आधा पश्चिम में। पूर्व की ओर वाले चाहते थे, कि स्कूल हमारी ओर बने, जब कि पश्चिम वालों का आग्रह अपनी ओर स्कूल बनवाने का था। इस झगड़े के कारण परस्पर भारी मनमुटाव रहने लगा। बच्चों के लिये स्कूल तो नहीं बना, उल्टा बड़ों में वैमनस्य हो गया। इसी बीच समीप के किसी बड़े गांव में लाहौर से पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी प्रचारार्थ आये हुए थे। उस गांव के कुछ सयाने लोग स्वामीजी को अपने यहाँ बुला लाये। गांव के लोगों ने अपनी स्कूल वाली समस्या रखी और निर्णय करने को कहा। हर पक्ष की अपेक्षा थी, कि स्वामी जी का निर्णय

C ऋषिषूक्तामत्सु मनुष्या देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति ते मनुष्येभ्यः तर्कमृषिं प्रायच्छन् (निरु^७ १३.१२)

हमारे पक्ष में हो। स्वामी जी ने सबकी बात सुनकर कहा 'देखो, एक स्कूल में तो बालक और बालिकाएँ साथ साथ पढ़ेंगी। सहशिक्षा के तो आप और हम विरोधी हैं। अतः क्यों न दो स्कूल बनाये जावें। एक बालकों के लिये और एक बालिकाओं के लिये। पूर्व में बालकों का हो और पश्चिम में बालिकाओं का'। स्वामी जी के निर्णय को सुनकर सबके मुखों पर प्रसन्नता छा गई। सब मनमुटाव दूर हो गया। कहने लगे "अरे, हमें तो यह बात सूझी ही नहीं। वास्तव में सिद्धान्त तो अलग अलग पाठशालाओं का है, वाह ! स्वामी जी! धन्य हैं। एक मिनिट में हमारी समस्या मिटा दी।" तुरंत दूसरे स्कूलभवन के लिये भी चंदे की रकम लिखी जाने लगी और थोड़ी देर में ही और पच्चीस हजार की व्यवस्था हो गई।

एक ग्राम में एक सयाना बुद्धिमान् मनुष्य रहता था। उसकी बुद्धि बड़ी ऊहापोह वाली थी। प्रतिभासम्पन्न और प्रत्युत्पन्न समाधान वाली। उसके पास दूर दूर से लोग समस्याएं लेकर आते और उस व्यक्ति के द्वारा किये गये समाधान से पूर्ण सन्तुष्ट होकर जाते। लड़ते-झगड़ते आते और हंसते-बतियाते जाते। जब वह वृद्ध हो गया, तो उसे चिन्ता हुई, कि 'मेरे मरने के बाद, इस घर के द्वारे कोई नहीं आयेगा'। यद्यपि उसके तीन पुत्र थे। पर सामान्य लोकगति के अनुसार, उसको भी अपने पुत्रों पर पूरा विश्वास नहीं था। 'उसके पुत्र भी उसके समान समस्याओं का समाधान कर सकेंगे' इस बात में उसे सन्देह था।

इसी अन्तराल में एक दिन प्रातःकाल ही दो ग्रामीण व्यक्ति उसके पास आये और उन्होंने बताया "हम दोनों कुंटपालक हैं। हमारे कुंटों के बाड़े भी साथ-साथ हैं। एक बाड़ में से दूसरे बाड़े में जाने का मार्ग भी खुला रहता है। हम दोनों की एक एक कुंटनी कल ब्याने वाली थी। देर रात तक हम दोनों प्रतीक्षा करते रहे। जब नहीं ब्याई तो घर जाकर सो गये। सबेरे जाकर देखा तो दोनों कुंटनियाँ ब्या गई हैं और दोनों पास पास खड़ी हैं। पर एक बच्चा मरा पड़ा है और एक जीवित है। अब झगड़ा यह है, कि हम दोनों में से प्रत्येक, जीवित बच्चे को अपनी कुंटनी का और मरे हुए को दूसरे की कुंटनी का बताता है। अब आप इसका समाधान कर दो'। उस सयाने व्यक्ति ने कहा 'भाई। वह बच्चा जिस कुंटनी का दूध पी रहा हो, उसी का समझ लो'। कुंटवाले अजी! वह बच्चा बारी बारी से दोनों का दूध पी ले रहा है। कभी इसका कभी उसका'।

इस वार्तालाप को उस व्यक्ति के तीनों पुत्र भी सुन रहे थे। वे आकर बोले

बुद्धि के गुण

‘पिताजी! इसका समाधान तो हम कर देंगे’। पिता ने मान लिया। वे तीनों भाई उन ऊंटवालों को दोनों ऊंटनियों और उस बच्चे सहित गांव के समीप बहने वाली छोटी नदी के किनारे ले गये। युवकों ने कहा ‘तुममें से एक व्यक्ति पुल पर से इस बच्चे को नदी के उस पार ले जाओ और नदी के किनारे किनारे धीरे-धीरे चलाओ दूसरे व्यक्ति से कहा कि ‘तुम इधर के किनारे पर दोनों ऊंटनियों को, जिस दिशा में वह बच्चा चल रहा है, उधर ही चलाओ’। ऐसा ही किया गया। दोनों ऊंटनियाँ नदी के इस किनारे चलती हुई, उस किनारे चलते हुए बच्चे को निहारती जा रही थीं और लाड़ में गलबल-गलबल करती जा रहीं थीं। कुछ समय तक ऐसा ही होता रहा। पर अन्त में एक ऊंटनी से न रहा गया। पानी की बिना परवाह किये वह नदी में उतर गई और डेढ़-दो फुट गहरे पानी को पार करके उस बच्चे से जा मिली।

उन भाइयों ने ऊंटवालों को कहा कि बस इसी ऊंटनी का यह बच्चा है। वात्सल्य भाव के कारण भले ही दोनों ऊंटनियाँ इसे दूध पिला रहीं थीं और लाड़ भी दिखा रही थीं, फिर भी जिसके जिगर का यह टुकड़ा है, वह मां नदी के पानी की परवाह न करके-जोखम उठा कर भी इस बच्चे के पास पहुँच ही गई।

इस समाधान से ऊंट वाले पूर्णरूप से सन्तुष्ट हो गये। युवकों के पिता को भी सन्तोष हो गया, कि मेरे पुत्रों में भी प्रतिभाबुद्धि है और वे भी जनता को अपने समाधान से सन्तुष्ट कर सकेंगे। मेरे द्वारे मेरे बाद भी लोग आते रहेंगे।

कुछ मास बाद निरन्तर रुग्ण रहे उस व्यक्ति को जब अपना अन्तसमय प्रतीत हुआ, तो उसने तीनों पुत्रों को बुलाकर कहा ‘पुत्रो! तुम सदा सदबुद्धि से लोगों का उपकार करते रहना। इस संसार में बहुत कुछ सीखने को है। तुम लोग देश-देशान्तर का भ्रमण करके अपनी बुद्धि को और चर्वरा बनाना’।

अपने पिता के देहावसान के छः मास बाद, तीनों भाई देशाटन को निकले। पैदल चलते-चलते एक दिन एक मार्ग में अचानक छोटा भाई रुक गया और बोला ‘भाइयो! इस मार्ग से कोई ऊँट गया है, जो कि बहुत थका हुआ है’ मझला बोला ‘उसकी बाँई आँख फूटी हुई है’। बड़ा बोला ‘उसके ऊपर शहद के मटके लदे हुए हैं’। तीनों भाइयों ने तीनों की बातों को सत्य बताया।

वे बात कर ही रहे थे, कि अचानक पीछे से चार पांच आदमी दौड़ते हुए से आये और उन भाइयों से पूछा कि ‘‘हमारा एक ऊंट खो गया है, क्या तुमने उसे देखा

है?" तीनों भाइयों ने क्रम से पूछा 'क्या वह बहुत थका हुआ है?', 'क्या उसकी बाईं आंख गायब है?' 'क्या उस पर शहद के मटके रखे हुए हैं?'। ऊंट वाले "हाँ, हाँ, बिल्कुल ठीक कहा, बस वही ऊंट हमारा है"। इस पर वे भाई बड़ी मासूमियत के साथ बोले "आप लोगों के उस ऊंट का हमें तो कोई अता-पता नहीं है और न हमने उसे देखा है"। यह सुनकर उन लोगों ने उन भाइयों को पकड़ लिया और कहा 'तुम चोर हो, तुम्हीं ने हमारा वह ऊंट कहीं छिपा दिया है। तुम उस ऊंट का पूरा हुलिया जानते हो, और फिर कहते हो कि हमने वह ऊंट नहीं देखा'।

ऐसा कहकर वे लोग उन तीनों को उस प्रान्त के राजा के दरबार में ले गये और अपना ऊंट उनसे दिलवाने की फरियाद की। राजा ने भी सारी बात सुनकर, उन भाइयों से कहा कि 'वास्तव में तुम्हीं ने इनका वह ऊंट चुराया है। नहीं तो ऊंट को बिना समीप से देखे, उसकी एक आंख फूटी हुई और उस पर शहद लदा हुआ है, यह कैसे जाना जा सकता है। और 'ऊंट थका हुआ है' यह बात तो, उस ऊंट को चलते हुए को देखे बिना कोई भी नहीं बता सकता। इसलिये तुम शीघ्र इनका चुराया हुआ ऊंट लाकर इन्हें लौटा दो"। वे भाई बोले "महाराज! इनके ऊंट को चुराने की बात तो दूर, हमने इनके ऊंट को कभी भी देखा तक नहीं है। रही बात यह कि हमने उसका हुलिया आदि कैसे बता दिया, सो यह बुद्धि की बात है, कृपया सुनिये। कच्चे रास्ते में ऊंट के जो खोज (= पदचिह्न) थे, वे मात्रा से अधिक बड़े बड़े और मुश्किल से चल पाने के कारण लम्बाई में घसीटे हुए से थे। इससे प्रतीत हुआ, कि वह थका हुआ था। मार्ग में दोनों ओर जो झाड़ियाँ थी, उनमें से दाहिनी ओर की 'झाड़ियाँ जहाँ तहाँ खाई हुई थी और कुछ ताजे पत्ते भी नीचे गिरे हुए थे, जब कि बाईं ओर की झाड़ियाँ वैसी की वैसी ही थीं। इससे ज्ञात हो गया, कि उसकी बाईं आंख काम नहीं कर रही है। मार्ग के किनारे स्थान स्थान पर मक्खियाँ भिन भिना रही थीं। देखने पर पता लगा कि शहद की बूंदों पर ही मक्खियाँ लगी हुई हैं, अतः अनुमान हुआ कि ऊंट पर रखे पात्रों से ही शहद की बूंद गिरी हैं।"

तीनों भाइयों की बात सुनकर राजा को निश्चय हो गया, कि बुद्धिबल से ही अनुमान द्वारा, इन युवकों ने ऊंट के विषय में बताया है, वास्तव में इन्होंने न ऊंट को देखा है और न ही चुराया है।" ऊंट वाले भी सन्तुष्ट होकर चले गये।

उस राजा ने ऐसे बुद्धिशाली युवकों को गंवा देना उचित नहीं समझा। उसने

आग्रहपूर्वक उन्हें अपने यहाँ उपमन्त्री के रूप में नियुक्त कर लिया और एक शर्त रखी। उसके अनुसार तीनों भाई बारी बारी से प्रतिदिन राजा को सोने से पूर्व बुद्धि को विकसित करने वाली कहानी सुनायेंगे और कहानी सुनाने वाला भाई ही रात्रि में राजा की सुरक्षा पर तैनात रहेगा।

तीनों बुद्धि के धनी भाइयों के कारण राज्यकार्य निर्विघ्न रूप से चलने लगा। सभी समस्याओं का झटिति समाधान होने लगा। इन तीनों भाइयों से राजा को ऐसा लगाव हो गया, कि पुराने मन्त्रियों से राजा का संवाद-सम्पर्क लगभग टूट सा गया। पुराने मन्त्री अपनी इस उपेक्षा से तिलमिला उठे। उन्होंने अपनी राज्यमान्यता एवं प्रतिष्ठा में विघ्नरूप आये हुए, इन तीनों भाइयों को मार्ग में से हटाने के लिये एक षड्यन्त्र रचा जिसमें एक सपेरे की भी भूमिका थी।

एक दिन जब रात्रि में तीन युवकों में से छोटे भाई से कथा सुनते हुए राजा को नींद आ गई, तो उस युवक ने भी कथा कहना बन्द कर दिया और सावधान हो कर, पहरा देने लगा। शान्ति होते ही, राजा के प्रकोष्ठ में, दीपक के उजाले में, उस युवक ने एक कोने से एक फणियल काले नाग को राजा के पलंग की ओर बढ़ते देखा। युवक ने झट से म्यान से तलवार निकालकर, उस सांप पर प्रहार करके उसके टुकड़े कर दिये। कच्ची नींद में तलवार की खनक से, राजा सहसा चौंक कर उठ बैठा और देखता क्या है, कि उस रक्षक युवक के हाथ में खून से सनी तलवार है। उनींदी स्थिति में पूरा विवेक नहीं रहने पाता। राजा ने झट से यह समझ लिया, कि यह युवक मुझे मारना चाहता है, सो जोर से “दगा! दगा! पकड़ो! पकड़ो!! चिल्लाया और उस प्रकोष्ठ से बाहर भागा। तभी षड्यन्त्र द्वारा पूर्वतः सधाये हुए सिपाही वहाँ जा पहुँचे और उस युवक को पकड़कर, उन्होंने राजा की आज्ञानुसार कैदखाने में डाल दिया।

रात्रि भर राजा को इन अज्ञात कुलशील युवकों द्वारा अपनी हत्या का अवसर दूँढने और उससे स्वयं बच जाने का ही विचार आता रहा। प्रातःकाल राजा ने मन्त्रियों की सभा बुलाई। पुराने मन्त्रियों ने बड़ी सहानुभूति दिखाते हुए और राजा के बच जाने हेतु प्रभु को धन्यवाद देते हुए, उस युवक को मृत्युदण्ड देने का और शेष दो भाइयों को देशनिकाला देने का सुझाव दिया। उपमन्त्री होने के कारण वे दोनों भाई (मझला और बड़ा) भी मन्त्रि-सभा में बैठे थे। पुराने मन्त्रियों की बात समाप्त होने पर, बड़ा भाई बोला ‘महाराज! मेरी भी बात सुनने की कृपा करें’। राजा “तुम तो अपने भाई

को माफ करने की बात कहोगे'। बड़ा भाई 'नहीं, अपने भाई के विषय में एक शब्द भी नहीं कहूँगा, बस मेरी बात सुनने का कष्ट करें'। राजा के 'अच्छा' कहने पर बड़े भाई ने कहना आरम्भ किया -

बहुत समय पहले की बात है। एक राजा के पास एक पक्षी बेचने वाला आया। उसके पास अनेक प्रकार के तोते थे। उसने राजा को एक बड़े आकार के तोते के विषय में बताया - "महाराज! यह एक विशेष प्रकार का अति बुद्धिमान् और पारखी तोता है। यह अनेक प्रकार की बोलियाँ तो बोलता ही है, पर यह अन्य सामान्य तोतों के स्वभाव के विपरीत, पिंजरे से मुक्त कर दिये जाने के बाद भी कुछ दिनों में वापिस लौट आता है और किसी अज्ञात स्थान से अपनी चौंच में किसी न किसी ऐसे अद्भुत फल का बीज लाता है, जिसके बोने पर पौधा अमृतफल से फल देता है।" पर महाराज! कीमत - इसकी एक हजार रुपये है"। राजा ने उस तोते से अनेक भाषाओं के बोल सुने और पसन्द आने पर उसे खरीद लिया।

अब उस राजा का अधिक समय उस तोते की बोलियाँ सुनने और उससे बतियाने में ही बीतने लगा। अतः राजा के मुंहलगे खुशामदी अधिकारियों का राजा के पास आना जाना बहुत कम हो गया। वे किसी ऐसे अवसर की तलाश में थे, जिससे उस तोते को राजा से दूर किया जा सके।

एक दिन राजा ने परीक्षा के लिये उस तोते को पिंजरे से मुक्त कर दिया। वह राजमहल से उड़कर गोता लगाता हुआ दूर आकाश में उड़ गया। पांच-सात दिन बाद वास्तव में तोता लौट आया। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। राजा के पास आते ही तोते ने अपनी चौंच में से एक बीज राजा की हथेली पर डाल दिया। राजा को उस पक्षी-विक्रेता की बात याद हो आई। उसने अपने रामू नामक माली को बुलाकर उस बीज को अलग से बो देने और उसके पेड़ पर फल आने पर सूचित करने को कह दिया।

बीज बोने के कुछ मास बाद ही उसका पौधा बड़ा हो गया और तीन मास में उस पर हरे-पीले रंग के अद्भुत फल लगने लगे। उनकी सुगंध पक्के सेब-खरबूजा-अमरूद की मिश्रित गन्ध सी थी। रामू चार-पांच पके हुए फल एक टोकरी में रखकर राजा को भेंट करने चला। अकस्मात् बीच में राजा के मुंह लगे खुशामदी एक मन्त्री को रामू दिख गया। "ये फल तोते के द्वारा लाये गये बीज के पेड़ के हैं और राजा जी की सेवा में ले जाये जा रहे हैं" यह ज्ञात होते ही, तोते से खार खाये

उस खुशामन्दी मन्त्री के मस्तिष्क में एक षड्यन्त्र पनप गया। वह बोला “अरे रामू! राजा जी को फल कहीं टोकरी में रखकर दिये जाते हैं? जाओ मैं रुक्का लिखकर देता हूँ। भंडारी से चांदी का थाल लाओ, उसमें रखकर, ये फल भेंट किये जायेंगे”। रामू तो थाल लाने गया। इसी बीच मन्त्री ने उन फलों पर कोई जहरीला घोल लपेटवा दिया। थाल आने पर मन्त्री ने रामू को तो अपने काम पर भेज दिया और स्वयं उन विषलिप्त फलों को थाल में सजाकर राजा के पास पहुंचा और बनावटी प्रसन्नता के साथ बोला “महाराज! देखिये, इस गुणी तोते के द्वारा लाये गये बीज से उत्पन्न फल कितने रूपवान् और अद्भुत सुगंध वाले हैं”। राजा ने भी उन्हें निहार कर बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की और उनका सेवन करने की इच्छा प्रकट की। मन्त्री बोला “महाराज! हैं तो ये फल अत्युत्तम, फिर भी अपने लिये नये हैं, इसलिये परीक्षा कर लेनी चाहिये, कहीं खाने पर कुछ गड़बड़ न कर दें”। राजा ने मन्त्री का सुझाव मान लिया। दो तीन बकरियों को उन फलों की कुछ फांकेँ खिलाई गईं। बकरियाँ तुरन्त मर गईं। राजा को बड़ा क्रोध आया, कि तोते के द्वारा लाये गये बीज का फल तो अत्यन्त विषैला है। मन्त्री ने और भी नमक मिर्च लगाकर राजा को उकसा दिया। बस, राजा ने आव देखा न ताव, झट पिंजरे में से तोते को पकड़ कर बाहर निकाला और उसकी गरदन मरोड़ कर उसे नीचे पटक दिया। तोते ने फड़फड़ाकर प्राण त्याग दिये। खुशामदी अधिकारियों ने चैन की सांस ली।

लगभग १५ दिन बाद राजा अचानक घूमते हुए बगीचे में जा निकले। वहाँ देखा कि बीस-पच्चीस वर्ष का नवयौवन भरा एक युवक क्यारी में खुदाई कर रहा है। राजा ने उसके सेब से लाल गाल, काले स्याह बाल और चमकते चेहरे को देखकर, उससे पूछा “तुम कौन हो?” यह सुनते ही वह युवक काम छोड़कर खड़ा हो गया और थरथर कांपते हुए बोला “अन्नदाता! मुझे माफ कर दीजिये, मुझे माफ कर दीजिये”। राजा को कुछ समझ नहीं आया, अतः फिर पूछा “तुम हो कौन?” उसने कांपते हुए कहा “अन्नदाता! मैं आपका रामू माली हूँ”, राजा ने हैरान होकर कहा “हमारा रामू तो पचपन वर्ष का बुढ़ा आदमी है, उसके बाल सफेद हो गये हैं, उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं”। माली ने धिधियाते हुए कहा ‘अन्नदाता! मैं वहीं रामू माली हूँ, मेरे से भारी गलती हो गई है, मुझे माफ कर दीजिये’। राजा को यह एक पहेली सी लगी। फिर डांट कर पूछा “क्या बात है, यह सब क्या है? सच सच बताओ” उस

माली ने तोते के द्वारा लाये गये बीच से उत्पन्न उस फल के पकने की और उसकी सुगन्ध से अभिभूत होकर उसको स्वयं खा लेने की तथा उसके खाने से अपने शरीर में ऐसे अद्भुत परिवर्तन होने की सारी कथा कह सुनाई।

राजा यह सब सुन रहा था और मन्त्री द्वारा भेंट किये गये उन्हीं फलों के खाने से बकरियों के मरने की घटना पर विचार कर रहा था। राजा ने तुरन्त उस माली को उस अद्भुत वृक्ष के पास ले चलने को कहा। वहाँ पहुँचकर राजा ने उस वृक्ष के फल तुड़वाये और माली को उन्हें खाने को कहा। माली डरा-घबराया और बोला "नहीं, मालिक! अब गलती नहीं करूँगा"। पर राजा के सान्त्वना देने और आज्ञा देने पर माली ने दो-तीन फल खाये। राजा देख रहा था कि फलों से सुगन्ध तो फूट ही रही है, साथ ही उसके स्वाद के कारण खाते समय माली की आकृति परितृप्त और प्रफुल्ल भी लग रही है। अब राजा ने दो तीन फल स्वयं खा लिये। उनके अभूतपूर्व स्वाद से राजा अतिहर्षित हो गया। पेट में फलों के पहुँचते ही शरीर में विचित्र सी उत्प्रेरक और नस-नस में नवजीवन भर देने वाली प्रक्रिया को राजा ने स्वयं अनुभव किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा ने देखा, कि उसके शरीर में नवयौवन की सी शक्ति आ गई है। चेहरे पर भारी रौनक फैल गई है। त्वचा कान्तिमयी, दांत विशेष चमकीले और केश काले एवं मुलायम हो गये हैं। यह सब देखकर राजा को निश्चय हो गया, कि उस दिन वह मन्त्री जो फल लाया था, अवश्य ही उन पर उसने विष का लेप करवाया था। राजा ने मन्त्री को बुलाकर चेतावनी के साथ सच सच बताने को कहा। वह सच को छिपा न सका। उसके कुकृत्य के दण्डस्वरूप, राजा ने उसे सपरिवार राज्यनिर्वासन का दंड दिया। पर ऐसे अति आश्चर्यजनक अमृतफल उपलब्ध कराने वाले तोते को, शीघ्रता में बिना पूरी जांच पड़ताल किये मार देने पर राजा निरन्तर पछताता ही रहा।"

बड़े भाई की बात समाप्त होते ही मञ्जला भाई बोला 'हे कृपालु महाराज! जरा मेरी भी बात सुनने का कष्ट करें। राजा के स्वीकृति-सूचक सिर हिलाने पर, उसने आरम्भ किया—

"महाराज! बात पुरानी है। एक राव ने एक उकाब पक्षी पाल रखा था। एक दिन वह अपने दरबारियों सहित शिकार के लिये जंगल में गया। उकाब को भी साथ ले गया, क्योंकि उकाब शिकार में बड़ा सहायक होता है। जंगल में अचानक आंधी—

बुद्धि के गुण

तूफान आने से वे सुदूर निकलते हुए एक दूसरे से बिछुड़ गये। राव भी अकेला पड़ गया। धूप में व्याकुलता से प्यासा राव परेशान हो उठा। आसपास ढूँढने पर भी कहीं पानी नहीं मिला। अकस्मात् उसे चट्टानों की दरार में से सफेद सी द्रव धारा निकलती दिखी। राव ने झट से अपनी जेब में से एक प्याला निकाला और उसमें उस द्रव को लेकर पानी समझकर जैसे ही पीने को मुख की ओर बढ़ाया, वैसे ही कंधे पर बैठे उकाब ने झपट्टा मार कर, उस प्याले को नीचे गिरा दिया। द्रव मिट्टी में मिल गया। प्यासे राव ने फिर से उस पात्र में उस धार से कुछ द्रव लिया और पीना चाहा, किन्तु उकाब ने फिर उसे गिरा दिया। प्यास से बेहाल राव से रहा न गया। क्रोध में आकर उसने बांये हाथ में उकाब को पकड़ा और दाहिने हाथ में छुरी लेकर उसकी गर्दन कलम कर दी। उकाब के प्राणपखेरु तत्काल उड़ गये। उधर वह द्रवधारा भी बन्द हो गई। राव देखता क्या है, कि उस दरार में से एक भयंकर विषधर विचित्र सर्प सा जन्तु निकला, जिसके मुख से जीभ के साथ, उस द्रव के कुछ बिन्दु भी टपक रहे हैं। ओहो! अब राव को होश आया, “हाय! उस मूक पक्षी उकाब ने बोलने में असमर्थ होने पर भी झपट्टा मारकर, उस विषद्रव के पान से मुझे दो बार बचा लिया। उस वफादार ने अपने स्वामी को दो बार मरने से बचा लिया। पर हाय! मैंने अपने उस जीवनरक्षक को जल्दीबाजी में मूर्खतावश मार दिया, हाय!!”

दोनों भाइयों की बातें सुनकर राजा बोला “तुम्हारा मतलब यह है, कि जैसे उस राजा ने और राव ने बिना विचारे उन अतिउपयोगी एवं जीवनरक्षक तोते को और उकाब को मार डाला, जब कि वे निरपराध थे। वैसे ही तुम्हारा भाई भी निरपराध है?” दोनों भाई— “महाराज! इस विषय में तो आप स्वयं—जांच पड़ताल करें, तभी सत्य का पता लगेगा”।

राजा ने तुरत छोटे भाई को उपस्थित करने का आदेश दिया। छोटे भाई से राजा ने रात को खूनसनी नंगी तलवार लेकर उसके पास खड़े होने के विषय में पूछा। छोटा भाई— “महाराज! उस प्रकोष्ठ में आपके सिवाय दूसरा मनुष्य मैं ही था। आपके कहीं घाव लगा नहीं, मैं अपने आप पर क्यों शस्त्र चलाऊंगा? विचारने की बात है, कि फिर तलवार पर किसका खून लगा था?” यह सुनकर राजा को भी होश आया और उसने पूछा “फिर वह खून किसका था?” युवक ने राजा के निद्रामग्न होने पर फणियल नाग के प्रकट होने और उसको तलवार से मार डालने की सारी घटना बता

दी। सुनने पर राजा— “हमारे सुरक्षित प्रकोष्ठ में सांप कहाँ से आ सकता है?” युवक “इसका ज्ञान मुझे नहीं है। पर सांप वहाँ लाकर छोड़ा तो जा सकता है।”

राजा उस युवक को साथ लेकर रात वाले कमरे पर पहुँचे। सच ही कहा है “पापी लोग पाप करते समय कहीं न कहीं चूक ही जाते हैं”। सो रात्रि में वे षड्यन्त्रकारी लोग उस कमरे में से सांप के अवशेषों को हटाना भूल गये थे। राजा ने देखा, कि जहाँ वह युवक रात्रि में तलवार लिये खड़ा था, वहीं फर्श पर तलवार की धार के निशान थे और खून सूखा हुआ पड़ा था। कुछ दूरी पर सांप तीन टुकड़ों में मरा पड़ा था। राजा को विश्वास हो गया कि मेरी रक्षा के लिये इस युवक ने तत्परता से उस सांप को मारा था और तलवार पर खून भी उसी का लगा था।

उसने झट पुराने मन्त्रियों को बुलाकर गम्भीर परिणाम की चेतावनी देते हुए सच बताने को कहा। षड्यन्त्र का भेद खुल गया और उन षड्यन्त्रकारियों को जेल में डाल दिया गया।

अब राजा ने जल्दबाजी में एक निरपराध को — बल्कि अपनी रक्षा करने वाले को मौत के घाट उतारने से अपने आपको बचा हुआ देखकर चैन की सांस ली और उन भाइयों से बोला — “हे अति बुद्धिशाली युवको! तुम्हें कितना धन्यवाद दूँ। मेरे पास कोई शब्द नहीं है, जिनसे मैं तुम्हारे उपकार का वर्णन कर सकूँ!! दोनों भाइयों ने युक्ति से मुझको भयंकर पाप करने से उबार लिया। अन्यथा, जिस वफादार युवक ने मेरी प्राणरक्षा की उसी को मैं षड्यन्त्रकारियों के कुचक्र के कारण मरवा देता। आज मैं पारितोषिक देना चाहता हूँ। आज तो तुम मुझसे आधा राज्य भी मांगोगे तो मैं सहर्ष दे दूँगा। बोलो, मैं तुम्हें क्या दूँ?” तीनों भाई — “आप हमें पक्का वचन दीजिये, कि आप हमारी मांग पूरी करेंगे” राजा के सहर्ष ‘हाँ’ कहने पर तीनों युवक — “महाराज! अब हमें आप अपने दरबार से छुट्टी दे दीजिये, हमें अभी और संसार देखना है”।

यह है ऊहापोह बुद्धि का चमत्कार, जिसके कि कारण वे युवक अपनी और परायी रक्षा कर सके।

(ख) सिद्धान्तरक्षा अथवा ‘वाद में विजय’ —

बुद्धि के ऊहापोह गुण के कारण मनुष्य अपने सिद्धान्तों की पुष्टि और रक्षा कर सकता है तथा वाद में — शास्त्रार्थ में अपनी विजय सुनिश्चित कर सकता है। किसी विद्वान् को भले ही शास्त्र रटे पड़े हों, पर केवल उद्धरणों के सहारे वादविजय सम्भव नहीं है, जब तक कि उसके साथ ऊहापोह बुद्धि न हो।

घटना भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व की है। पेशावर-आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव था। एक दिन रात्रि के अधिवेशन में पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार का 'ईश्वर' विषय पर व्याख्यान था। उस समय अध्यक्षता कर रहे थे वहाँ के डिप्टी कमिश्नर, जो थे तो मुसलमान पर सुपठित होने के कारण उदार विचारों के थे। पण्डित जी ने व्याख्यान में ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हुए 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ बताया— "सर्वशक्तिमान् का यही अर्थ है, कि ईश्वर अपने कर्म करने में पूर्ण रूप से समर्थ है। अपने कर्मों के करने में वह किसी अन्य की सहायता नहीं लेता है। 'सृष्टि की रचना करना, सृष्टि का पालन करना, उसका संहार (= प्रलय) करना और जीवों के कर्मों का निरीक्षण तथा तदनुसार फलप्रदान करना' ये जो ईश्वर के कर्म हैं, उनके करने में वह सम्पूर्ण शक्ति से युक्त है — सर्वशक्तिमान् है। किन्तु 'सर्वशक्तिमान्' का यह अर्थ कदापि नहीं है, कि वह जो चाहे सो कर दे। बिना किसी सामग्री के कुछ बना दे। उसके भी कुछ नियम हैं। उनके अनुसार ही वह कार्य करता है, उनके विपरीत नहीं। कभी वह ऊटपटांग काम नहीं करता है"।

ध्यान से सुन रहे डि० कमिश्नर ने अनुभव किया, कि पण्डित जी के इस प्रवचन से तो कुरान के "सृष्टि से पहले खुदा के सिवाय कुछ नहीं था। खुदा ने 'कुन' (= हो जा) कहा और नेशत में से अशत हो गया" = नास्ति में से अस्तित्व हो गया = अभाव में से भाव हो गया" इस सिद्धान्त का खण्डन हो रहा है। अतः वे बीच में ही बोले— "पण्डित साहब! खुदा तो वही हो सकता है, जो जैसा चाहे सो कर सके। खुदा पर भी कोई नियम लागू हो तो वह खुदा ही क्या?" पण्डित जी ने समझाने का प्रयास करते हुए कहा— 'ईश्वर भी नियमानुसार व्यवस्थानुसार कार्य करता है। वह असम्भव कार्य नहीं करता"। डि० कमिश्नर— 'हाँ, ईश्वर असम्भव को भी सम्भव कर सकता है, वह सब कुछ कर सकता है"। पण्डित जी— "क्या खुदा अपने आप को मार सकता है? क्या वह अपने आपको दुराचारी, पापी, मलिन बना सकता है? या फिर क्या वह ऐसा कोई पत्थर बना सकता है, जिसे वह स्वयं न उठा सके?" डि० कमिश्नर— " पण्डित जी। ये तो बेसिर पैर की बातें हैं। खुदा वास्तव में सब कुछ कर सकता है"।

तुरन्त पण्डित जी की ऊहा-प्रतिभा जागृत हुई। उन्होंने पूछा— 'अच्छा, कमिश्नर साहब! खुदा का वजूद (= अस्तित्व) कहाँ तक है?" डि० कमिश्नर— 'उसका

वजूद सब जगह है, वह हरजों मौजूद है, कोई जगह उसके बिना नहीं है”। पण्डित जी— “क्या वह हिन्दुस्तान से या एशिया से बाहर भी है?”। डि० कमिश्नर— “पण्डित साहब! आप कैसी मखौल की बात कर रहे हैं। आप भी तो ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं। वास्तव में खुदा संसार में सब जगह है। दूर से दूर तक है। He is omnipresent.” पण्डित जी— “कहीं तो खुदा के वजूद की सीमा होगी?” डि० कमिश्नर— “नहीं, उसकी कोई हदो हदूद (= सीमा) नहीं हैं। वह असीम है, अनन्त है He is infinite.”

इस प्रकार ईश्वर की अनन्तता—सर्वव्यापकता को स्वीकार करवा के पण्डित जी ने प्रसन्न बदलते हुए पूछा— “कमिश्नर साहब! यदि मैं इस समय ऐसा व्याख्यान दे दूँ, जिससे साम्प्रदायिक दंगा भड़कने की आशंका हो जाय, तो आप क्या करेंगे?”। डि० कमिश्नर (हंसते हुए)— “ऐसा करने पर मैं आपको तुरन्त पेशावर जिले की सीमा से बाहर निकलवा दूंगा”। अब पण्डित जी की बारी थी— “कमिश्नर साहब! आप तो मुझे अपनी (= अपने जिले की) सीमा से बाहर निकाल सकते हैं। पर, क्या खुदा अपनी सीमा से मुझे बाहर निकाल सकता है, चाहे मैं कितना ही पाप करूँ? और यदि नहीं, तो यह कैसे कि वह सब कुछ कर सकता है?”। डि० कमिश्नर विचारवान् व्यक्ति थे। तुरन्त समझ गये, कि जब खुदा की कोई सीमा ही नहीं है, तो वह किसी को अपनी सीमा से बाहर कैसे निकाल सकता है? अतः प्रसन्न होकर पण्डित जी को उत्तम तर्क द्वारा ईश्वर की अनन्तता और सर्वशक्तिमत्ता समझाने का धन्यवाद दिया।

यह है ऊहा द्वारा सिद्धान्त को समझाने और उसकी रक्षा करने का चमत्कार!

पूर्वी राजस्थान के झालावाड़ नगर की सन् १९०६ की जनवरी के मध्य की घटना है। वहाँ एक छोटा सा आर्यसमाज था। वहाँ के उत्साही आर्यों ने वार्षिकोत्सव का आयोजन किया। अन्यत्र व्यस्त होने के कारण कोई भी उपदेशक वहाँ नहीं पहुँच सके। केवल एक भजनीक महोदय ही पधारे। वहाँ पौराणिकमण्डल ने मन्त्रणा कर के राजगुरु पं० जयदेव झा मीमांसाचार्य के द्वारा वार्षिकोत्सव पर शास्त्रार्थ का चैलेंज दे दिया।

चैलेंज का पत्र पाकर समाज के मन्त्री और प्रधान जरा सोच में पड़ गये। परसों १४ जनवरी से उत्सव प्रारम्भ होने वाला है। शास्त्रार्थ के लिये अब किसी महोपदेशक को कहाँ से बुलावें? अकस्मात् उन्हें पता लगा कि, कोटा नगर में प्रतिवादि—भयङ्कर श्री पं० गणपति शर्मा (चूरु वाले) प्रचारार्थ आये हुए हैं। तुरन्त एक

व्यक्ति भेजा गया। दूसरे दिन सायंकाल तक वह पं० गणपति शर्मा को साथ लेकर आ गया। समाज के प्रधान और मन्त्री ने पण्डित जी का नाम ही सुना था। पहली बार ही आज उन्हें देखा था। “यह दुबला सा, ठिगना सा व्यक्ति कैसे शास्त्रार्थ करेगा, इसका कोई व्यक्तित्व ही नहीं है”। ऐसा सोचने लगे वे पण्डित जी को ऊपर से नीचे तक देखते हुए। वास्तव में ये दोनों अपनी अल्पज्ञता के कारण, शरीर के आकार से बुद्धि का— विद्या का अनुमान लगा रहे थे। सो बोले— “पण्डित जी! शास्त्रार्थ करना है, शास्त्रार्थ!!”। पण्डित जी— “हाँ जी! इसीलिये मैं आया हूँ”। प्रधान और मन्त्री के हावभाव और बातचीत से पण्डित जी अनुभव कर रहे थे, कि इन्हें मुझ में शास्त्रार्थ करने की योग्यता प्रतीत नहीं हो रही है, अतः खुलकर कहा— “देखिये, मैं शरीर से साधारण हूँ, अतः कुशती या शस्त्रार्थ तो नहीं कर सकता, किन्तु शास्त्रार्थ मैं अवश्य करूँगा। आप घोषणा कर दीजिये कल आर्यसमाज के मञ्च पर जो कोई भी शास्त्रार्थ करना चाहे, पूर्वाह्न १० बजे अवश्य उपस्थित हो जावे”।

दूसरे दिन अर्थात् १४ जनवरी १९०६ को समाज के पण्डाल में यज्ञ के पश्चात् आर्यबन्धु और पण्डित गणपति शर्मा प्रतीक्षारत थे। भारी जनसमूह शास्त्रार्थ देखने—सुनने आया हुआ था। नगर के एक उभयपक्ष—सम्मत प्रतिष्ठित मनुष्य को मध्यस्थ नियुक्त किया गया था, सो वे भी आ गये। कुछ समय बाद अपने सेवकों से चँवर डुलवाते हुए और अपने साथी पण्डितों और शिष्यों के द्वारा अपना और अपने पक्ष का जयघोष करवाते हुए घण्टा—शङ्ख — निनाद के साथ पं० जयदेव झा सभास्थल पर पधारे। जब किसी ने बताया, “कि आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ करने वाला पण्डित वह बैठा है।” तो कृशदेहधारी और साधारण वेशभूषा वाले पं० गणपति जी को देखकर श्री जयदेव झा का ‘अहं’ आकाश को छूने लगा। “यह पिद्दी सा आदमी क्या शास्त्रार्थ करेगा?” यह सोचते हुए उन्होंने पीठासन पर चढ़कर खड़े होकर अभिमान के साथ घोषणा की— “आर्यसमाज का यह पण्डित जो कुछ भी बोलेगा, हम उसके अक्षर अक्षर का खण्डन कर देंगे”।

इस घोषणा से समाज के अधिकारी घबरा गये। पण्डित जी ने बड़ी कठिनाई से उन्हें आश्वस्त किया। अब मध्यस्थ ने पं० गणपति शर्मा को शास्त्रार्थ आरम्भ करने को कहा। पं० गणपति शर्मा उठे और मध्यस्थ सभापति जी को सम्बोधन करने के पश्चात् श्रोताओं की ओर मुख करके बोले— “सज्जनो! शास्त्रार्थ आरम्भ करने से पूर्व मैं कुछ

कहना चाहता हूँ। बात यह है कि मैं जैसे शरीर से कमजोर हूँ, वैसे ही मैं कुछ सुनता भी शायद कम हूँ। श्री पं० जयदेव जी झा ने अभी खड़े होकर कुछ बोला था। मुझे यह सुनाई पड़ा कि वे घोषणा कर रहे थे कि “आर्यसमाज का पण्डित जो कुछ बोलेगा, हम उसके अक्षर अक्षर का खण्डन कर देंगे” मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, कि क्या श्री पं० जयदेव जी ने यही कहा था?”। सब ओर से आवाज आई “हाँ, यही कहा था, हाँ यही कहा था”। पं० गणपति शर्मा—“क्यों सभापति जी! यह पं० जयदेव जी की प्रतिज्ञा है? मध्यस्थ—‘हाँ ऐसा ही है’। ऐसा स्पष्टीकरण करवाने से सभा में उपस्थित प्रत्येक श्रोता को यह समझ में आ गया, कि अब शास्त्रार्थ का ढंग यह होगा, कि आर्यसमाज का पण्डित जो कुछ भी कहेगा, पं० जयदेव जी ने उसका खण्डन करना है।

पं० गणपति शर्मा शास्त्रार्थ—आरम्भ हेतु मध्यस्थ की आज्ञा लेकर बोले—“श्री पं० जयदेव झा अपने पिता शुकदेव झा के पुत्र हैं” यह मेरी पहली स्थापना है, श्री पं० जयदेवजी इसका खण्डन करें”। बुद्धिमान् श्रोताओं की आंखें चमक उठीं। सब ओर से आवाज आने लगी “जयदेवजी! अब आप इसका खण्डन करिये”। पं० जयदेव जी की स्थिति देखने योग्य थी। वे इस बात का खण्डन कैसे करें?। यदि प्रतिज्ञानुसार इसका खण्डन करें, तो मानना पड़ेगा, कि ये अपने पिता शुकदेव झा^Δ के पुत्र नहीं हैं। इनकी माता ने इनको किसी अन्य से प्राप्त किया है, दूसरे शब्दों में ये जारज हैं। खण्डन नहीं करें, तो हेकड़ी में की गई प्रतिज्ञा टूटती है। मध्यस्थ के और श्रोताओं के बहुत आग्रह करने पर पं० जयदेव जी ने मुख खोला “मेरा मतलब मूर्तिपूजा आदि विषय पर बोले हुए का खण्डन करने से था”।

तुरत पं० गणपति शर्मा खड़े हो गये और पं० जयदेव जी को उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराते हुए कहा “पण्डित जी! इस सभा का प्रत्येक श्रोता जानता है, कि आपकी प्रतिज्ञा में किसी विषय—विशेष का नामोनिशान नहीं था। “आर्यसमाज का पण्डित जो कुछ भी बोलेगा, उसका खण्डन करूँगा” यह है कि आपकी प्रतिज्ञा। सो प्रतिज्ञानुसार मेरे कथन का खण्डन करिये, अन्यथा पराजय स्वीकार करिये। क्योंकि आप प्रतिज्ञा—संन्यास और प्रतिज्ञान्तर’ नामक निग्रहस्थान में निगृहीत हो गये हैं”। इतना कहकर पं० गणपति जी ने धाराप्रवाह संस्कृत में निग्रहस्थानों का वर्णन करना आरम्भ कर दिया। “हमारा पूजा का समय हो गया है” ऐसा कहकर श्री पं० जयदेव

Δ यह नाम लेखक द्वारा अनुमान से लिखा गया है।

झा मण्डलीसहित सभास्थल से चले गये और "पं० गणपति शर्मा की जय हो" के निनाद से सभास्थल गूँज उठा।

यह है बुद्धि के ऊहापोह गुण के द्वारा शास्त्रार्थ में कुतर्की और मिथ्याभिमानि विद्वन्मन्यों के गर्व के विखण्डन का दृष्टान्त!

ई० सन् १८७८ के नवंबर मास में जब स्वामी दयानन्द सरस्वती अजमेर में वेदधर्मप्रचार कर रहे थे, तो एक दिन अन्य धर्मग्रन्थों से वेद की श्रेष्ठता बताने के प्रसंग में बाइबिल की सृष्टिक्रम एवं युक्ति से विरुद्ध बातों के उदाहरण देते हुए कहा— "बाइबिल में लिखा है कि "चौथे दिन सूर्य की सृष्टि हुई" यह बात कैसी भ्रान्त है? जब सूर्य का अस्तित्व ही नहीं था, तो तीन दिनों की गणना कैसे की गई?" इस पर एक मिर्जा बोल उठे "हमारा कुरान ईश्वरीय है, उसमें सब कुछ शुद्ध है"। यह सुनकर स्वामी जी ने उससे पूछा — "कुरान में लिखा है कि जो पुरुष यहाँ दिन में पांच-बार नमाज पढ़ता है, उसे बहिश्त में सत्तर हूरें भोग के लिये मिलेंगी, तो मिर्जा तुम बताओ, कि जो स्त्री यहाँ दिन में पांच बार नमाज पढ़ती है, उसे क्या बहिश्त में सत्तर पुरुष मिलेंगे?" यह सुनकर मिर्जा के मुख पर सील लग गई।

(ग) प्रत्युत्पन्नमतित्व (= हाजिरजवाबी)–

ऊहापोह बुद्धि वाला मनुष्य तुरत किसी भी प्रश्न का सही और सटीक उत्तर दे देता है। उसे कोई परेशानी में नहीं डाल सकता और न कोई उसे नीचा दिखा सकता है। उसकी बुद्धि, प्रश्न के साथ ही उसका उचित उत्तर तलाश देती है। मानो हर प्रश्न का उत्तर, उसमें पहले से फिट किया हुआ हो।

स्वामी दयानन्द सरस्वती धर्मप्रचार-यात्रा में एक स्थान पर ठहरे हुए थे। अपने अथक उत्साह से अन्यत्रवत् यहाँ भी, वे धर्मोपदेश की वर्षा से सत्त्वगुणी धर्मपिपासुओं को तृप्त कर रहे थे। ऋतम्भरा बुद्धि की ऊहा से वे सभी प्रश्नों का सहज ही उत्तर देकर, सभी धर्मजिज्ञासुओं को सन्तुष्ट करते जाते थे। हठी स्वार्थी कुतर्की लोगों के और अन्य अविद्याग्रस्त मतवादियों के वाग्बाणों को अपने अकाट्य तर्कतीरों से विफल करके उन्हें मौन कर रहे थे। कुछ सिरफिरे लोगों ने सोचा कि यह साधु सब सवालों का तुरत जवाब दे देता है, सबका मुँह बन्द कर देता है। कोई ऐसा सवाल करो कि जिसका यह जवाब न दे सके। वह 'हाँ' कहे तो भी उलटा पड़े और 'ना' कहे तो भी उलटा पड़े। सबने खूब सोच विचार

कर, एक प्रश्न तय किया और बड़े प्रसन्न हुए कि बस इस प्रश्न से इस बाबा का मुख बन्द हो जायेगा।

सब स्वामीजी के पास पहुँचे और बोले “स्वामीजी! हमारी एक शङ्का है”। स्वामीजी – “कहो भाई! क्या शङ्का है?”। आये हुए लोग मुस्करा रहे थे और बड़े निश्चिन्त हो रहे थे, कि बस हमने प्रश्न किया नहीं कि बाबा की बोलती बन्द हुई नहीं। स्वामीजी ने कहा— “भाई! क्यों मेरा समय खराब कर रहे हो, जो पूछना है सो पूछो”। आगन्तुओं में से एक बोला— “महाराज! हमारा सवाल यह है, कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी?”। स्वामी जी तुरत बोले – “भाई! मैं संस्कृत-व्याकरण-वेदादि में कुछ ज्ञानी हूँ, फारसी, अंग्रेजी तथा दुकानदारी आदि में अज्ञानी हूँ”। यह सुनकर प्रश्नकर्त्ताओं पर मानो घड़ों पानी पड़ गया। उन्होंने सोचा था, कि यदि यह साधु कहेगा, कि मैं ज्ञानी हूँ तो हम कहेंगे कि स्वामीजी आप साधु होकर अभिमान करते हैं और यदि बोलेंगे, कि ‘मैं अज्ञानी हूँ’ तो हम कहेंगे कि जब आप स्वयं अज्ञानी हो, तो हमें क्या ज्ञान देने आये हो, जाओ पहले खुद ज्ञान प्राप्त करके आओ”। पर स्वामी जी महाराज का उत्तर सुनने के बाद, उनके पास आगे बोलने को कुछ भी न रहा, अतः वे अपना सा मुँह लेकर वहाँ से चल दिये।

बादशाह अकबर के दरबार के विशिष्ट रत्न पण्डित बीरबल अति प्रत्युत्पन्न-मति थे। हाजिरजवाबी के कारण और विशेष सूझबूझ आदि गुणों के कारण वे अकबर के अतिप्रिय थे। एक बार दरबार लगा हुआ था। सभी दरबारी आ चुके थे। अभी बीरबल नहीं आ पाये थे। अकबर उनकी प्रतीक्षा में ही थे। इतने में एक मुसलमान दरबारी ने शिकायत के लहजे में कहा— “जहाँपनाह! आप बीरबल को इतना क्यों चाहते हैं? हम लोग आलिम फाजिल हैं, फारसी, अरबी के आला विद्वान् हैं और बहुत से दूसरे भी फनों के जानकार हैं। बीरबल में ऐसी कौनसी खास बात है, जो आप हम पर उसे तरजीह देते हैं?” यह सुनकर बादशाह कुछ विचार कर रहे थे, कि अचानक उनकी दृष्टि अपनी हथेली पर पड़ी। वे पूछ बैठे – “दरबारियो! शरीर पर और सब जगह बड़े या छोटे बाल हैं। पर हमारी हथेलियों पर बाल बिल्कुल ही नहीं हैं, इसकी क्या वजह है?” दरबारी— “परवरदिगार! यह तो कुदरत की बात है, कि हथेलियों पर बाल नहीं होते”। बादशाह— “वही तो मैं पूछ रहा हूँ, कि ऐसा क्यों है?”। दरबारी एक दूसरे का मुँह देखने लगे, कि इसका कोई माकूल जवाब दे दे।

इतने में पं० बीरबल आ गये। शिष्टाचार के बाद तुरत बादशाह ने बीरबल से भी वही सवाल किया— “बीरबल! शरीर के हर अङ्ग पर बाल हैं, किन्तु हथेलियों पर नहीं है, इसकी क्या वजह है?” बीरबल तपाक से बोले “जहाँपनाह! यह तो छोटी सी बात है। आप बड़े दानी हैं। लगातार हाथों से भर-भर अशर्फी और रुपये देते रहते हैं, इसलिये आपकी हथेलियों में उगने का मौका ही नहीं रहता, सब घिस जाते हैं”। बादशाह— “फिर तुम्हारी हथेलियों पर क्यों नहीं हैं?” बीरबल— “बादशाह सलामत! अति प्यार के कारण आप मुझे खूब देते हैं, सो लेते लेते मेरी हथेलियों के भी बाल घिस गये”। बादशाह— “वाह! यह तो कोई बात नहीं हुई। मेरे तो देने के कारण घिस गये और तुम्हारे लेने के कारण घिस गये। किन्तु इन दरबारियों की हथेलियों पर भी तो बाल नहीं है?” बीरबल— “परवरदिगार! आप देते हैं इसलिये आपके घिस गये, मैं लेता हूँ इसलिये मेरे घिस गये। इन बेचारों को मिलता नहीं है, सो अफसोस में हाय! हमें नहीं मिला, हाय! हमें नहीं मिला” यह कहते हुए हाथ मसलते रहते हैं। इसलिये इनके भी घिस गये। बीरबल का जबाब सुनकर दरबारी तो हंसी और मायूसी के बीच लटकने लगे, पर बादशाह ने उनसे कहा— “सुन लिया तुमने उत्तर!”। इसके बाद किसी दरबारी ने बीरबल के विषय में बादशाह से चर्चा नहीं की।

वास्तव में देने-लेने से हथेलियों पर बालों के होने या न होने का सार्वत्रिक सम्बन्ध नहीं है। पर जैसा प्रश्न वैसा उत्तर। जैसा सवाल वैसा जवाब।

अकबर ने एक बार सोचा, कि बीरबल कहीं पर मात नहीं खाता है। कोई ऐसा मौका आवे, कि वह मात खा जाय और उसे नीचा देखना पड़े। इसी ताक में लगे हुए बादशाह ने एक दिन सुबह सुबह बीरबल को बुलवाया और कहा— “बीरबल! आज हमें एक बहुत हसीन सपना आया”। बीरबल— “बादशाह सलामत! आपको हसीन सपना नहीं आयेगा, तो क्या आपके दुश्मनों को आयेगा?” भगवान् आपको हमेशा बढ़िया से बढ़िया सपना दिखावे”। बादशाह— “बीरबल! सपना यह था, कि एक दिन मैं और तुम पैदल सैर करते करते बहुत दूर निकल गये। चलते चलते हम एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये, जहाँ चलने का रास्ता बहुत की संकड़ा था और दोनों तरफ बड़े-बड़े गड्ढे थे। बाईं ओर के गड्ढों में शहद भरा था और दाहिनी ओर के गड्ढों में बदबूदार कीचड़ भरा था। हम दोनों संभल संभल कर आगे बढ़ रहे थे, कि अचानक आपस में टकरा गये और मैं शहद भरे गड्ढे में गिर पड़ा और तुम बदबूदार कीचड़ वाले गड्ढे में। दोनों गले गले तक सन गये”।

बीरबल तुरत बोले — “जहाँपनाह । आप बिल्कुल बजा फरमा रहे हैं । बिल्कुल यही सपना आज मुझे भी आया था, पर सपना और आगे भी चला और सपने में मैंने देखा, कि आप और मैं एक दूसरे की चिन्ता करते हुए, किसी तरह से गड़ढ़ों में से बाहर निकले तथा एक दूसरे की खैर पूछते हुए मारे लाड़ के एक दूसरे को चाटने लगे” । यह सुनते ही बादशाह की चालाकी काफूर हो गई और बोले — “हाय ! हाय !! तुमने हमारे मुँह में गन्दा कीचड़ भरवा दिया” । बीरबल — “बादशाह सलामत ! खता माफ हो । सपना तो सपना ही है । कभी वह गड़ढ़ों में गिराता है, कभी उठाता है और कभी कुछ भी चटवा देता है” । कहते हैं, इसके बाद बादशाह अकबर ने बीरबल को नीचा दिखाने की कभी नहीं सोची ।

ऐसे हाजिरजवाब, विशेष ऊहा वाले पण्डित बीरबल के अकबर बादशाह के दरबारी बनने की भी एक विशेष घटना है । एक दिन जब बादशाह के पानपेशकार ने बादशाह को पान पेश किया, तो बादशाह ने मुँह में पान चबाते ही तुरत पेशकार को बाजार से पाव भर चूना लाने को कहा । पानपेशकार पान का सामान बेचने वाले की दुकान पर गया और पाव भर चूना तोलने को कहा । पान-मसाले वाले ने कहा — “अरे ! तू तो बादशाह का पानपेशकार है न ?” । उसने हाँ में सिर हिलाया । चूने वाले ने कुछ देर सोचकर कहा — “आज तेरी मौत आई है” । पानपेशकार — “वह कैसे ! ?” । चूनेवाला — “जब तूने बादशाह को पान पेश किया और उन्होंने पान मुँह में रखा, तो क्या बादशाह ने थोड़ा मुँह बिचकाया था ?” । पानपेशकार (याद करके) — “हाँ, हाँ पान चबाते ही मुँह बिचकाया तो था” । चूने वाला — “इसका मतलब यह है, कि तुझ से पान में चूना अधिक लग गया । यद्यपि बादशाह के पान वाला चूना होता तो हीरे और मोती का है । पर चूना तो चूना ही है । मात्रा से अधिक पड़ा चूना बादशाह की जीभ पर लग गया है और अब तुझे सजा के रूप में पाव भर चूना खिलाया जायेगा । बस अब तेरा खातमा ही समझ” । पानपेशकार घबराया और बोला — “अब मैं क्या करूँ ?” । चूने वाला — “देख आगे गली में एक ब्राह्मण ‘बीरबल’ रहता है । उसके पास जा । शायद कोई तरकीब बचने की बता दे” ।

मरता क्या न करता । वह जल्दी से बीरबल के घर पहुँचा और अपने पर आई मुसीबत कह सुनाई । बीरबल बोला — “तू ऐसा कर, एक सेर घी ले ले । सरदी का समय है, घी जमा हुआ होगा । काफी सारा कच्चा घी खा जा । पाव आधा पाव घी का डला, महल में घुसने से पहले मुँह में रख लेना । जब तुझे चूना खाने को कहा जावे,

तो जीभ बचाकर फटाफट चूना निगल जाना”। पानपेशकार ने कहीं से घी का इन्तजाम किया और उसे खाकर बादशाह के पास हाजिर हो गया। चूने वाले का अनुमान सच निकला। उस पानपेशकार को बादशाह के सामने वह चूना खाना पड़ा। उसने सटासट चूना निगल लिया।

दूसरे दिन ठीक समय पर वह पानपेशकार अपनी ड्यूटी पर हाजिर हो गया। बादशाह उसे पूर्ण स्वस्थ और जीवित देखकर हैरान रह गया। बादशाह ने उससे पूछा—“तुमने मुझे कल पान पेश किया था?”। पानपेशकार—“जी हूजूर”। बादशाह—“फिर हमने तुम्हें पाव भर चूना बाजार से लाने को कहा था और हमारे सामने तूने चूना खाया था?”। पानपेशकार—“जी, हूजूर”। बादशाह सकते में आ गये बोला—“अबे! फिर तू जिन्दा कैसे है?”। पानपेशकार—“हुजूर आला! परवरदिगार!! रहीमोकरीम! खत माफ हो। मैं अपनी जिन्दगी की भीख मांगता हूँ।” बादशाह—“अरे! यह तो साबित हो गया, कि मारने वाले से बचाने वाला बड़ा है। पर तू बचा कैसे? पाव भर चूना खाने के बाद तो कोई बचता नहीं। सच सच बताओ”। पानपेशकार ने एक ब्राह्मण ‘बीरबल’ के पास जाने की और सेर भर घी खाने की सारी घटना कह सुनाई।

बादशाह को निश्चय हो गया, कि सेर भर कच्चा घी खाने से मूँह, गला, आमाशय और अन्तड़ियों में घी का गाढ़ा लेप लग गया और उस पर चूना खाने से चूने का अन्दर की ओर कोई असर नहीं हुआ और घी के साथ चूना भी मलद्वार से बाहर निकल गया। ऐसी सूझ वाले उस ब्राह्मण ‘बीरबल’ को बुलवाया गया। बादशाह ने बहुत देर तक उसके साथ बातें की और उसकी ऊहापोह—सम्पन्न बुद्धि से प्रसन्न होकर सम्मान के साथ उसे अपने दरबारियों में शामिल कर लिया।

दक्षिण भारत में राजा कृष्णराय के एक हाजिरजवाब दरबारी तैनालीराम भी अपनी ऊहासम्पन्न बुद्धि के कारण ही राजा के दरबारियों में स्थान पाकर मन्त्री पद पा सके थे। भगवत्कृपा से वे पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण बचपन से ही तर्कपूर्ण कुशाग्र बुद्धि वाले थे। जब वे युवावस्था में पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि, “बहुत से लोग वंशपरम्परा से राजा के दरबारी और मन्त्री बने हुए हैं, जब कि वे सामान्य बुद्धि वाले हैं। भगवान् ने मुझे तीव्र बुद्धि प्रदान की है, क्या मैं मन्त्री—पद नहीं पा सकता?”। वे ऐसे विचार में ही थे, कि एक ऐसा अवसर उनके हाथ आ गया।

एक दिन एक जादूगर—मण्डली अपने ताम श्याम के साथ राजमहल में प्रवेश कर रही थी। बस झट से वे भी उस मण्डली के साथ हो लिये। पहरेदारों ने सोचा

कि यह भी जादूगर-मण्डली का ही सदस्य है। जादूगर-मण्डली ने सोचा कि यह राजमहल का ही कोई कर्मचारी है।

राजदरबार में सब यथास्थान बैठ गये। तैनालीराम ने भी युक्ति से कहीं अपना स्थान बना लिया। जादूगर ने अनेक जादू भरे करतब दिखाये। आश्चर्यकारक अनेक खेलों से सबका मन मोह लिया। एक बड़ी नांद में अपनी मण्डली के एक पांच फुटे मनुष्य को उतारा। ढकना लगाया। ऊपर जादू वाली छड़ी घुमाई। ढक्कन खोलकर उस आदमी को बाहर निकाला, तो वह दो फुट का बोना होकर निकला। झट जादूगरमण्डली की एक महिला उठी और राजा के सामने रोकर कहने लगी— 'हे महाराज! अन्याय हो गया। देखिये इस दुष्ट जादूगर ने मेरे पति को बिल्कुल बोना बना दिया। हाय! अब मैं इसका क्या करूँ?' राजा भी हैरान! उस स्त्री के रोने धोने पर जादूगर ने उस बौने को वापिस नांद में डाला और पूर्ववत् जादुई झड़ी घुमाकर उसे फिर जो बाहर निकाला तो वह फिर पांच फुट था। सारे दरबारी और राजा ऐसे अभूतपूर्व करतब देखकर दंग रह गये।

अन्त में जादूगर बोला— 'हे महाराजाधिराज! आपकी सेवा में हमने अपने ये थोड़े से जादू के करतब पेश किये हैं। है कोई ऐसा जादूगर आपके राज्य में? यदि नहीं तो, आप मुझे जादूगर-चक्रवर्ती की उपाधि दीजिये और 'हमारे राज्य में ऐसा कोई गुणी नहीं है, यह भी लिखकर दीजिये'। राजा मन्त्रियों की ओर देखने लगा, कि शायद कोई मन्त्री मेरे राज्य की इज्जत बचा सकने की युक्ति बता दे। पर सबके मुहँ पर ताला लगा हुआ था। इतने में अकस्मात् वह युवक 'तैनालीराम' उठ खड़ा हुआ और बोला— "महाराज! मैं इसको जादू के विषय में हरा सकता हूँ"। यह सुनकर राजा और मन्त्रियों की जान में जान आई। राजा की अनुमति मिलने पर तैनालीराम उस जादूगर के अभिमुख होकर बोला— 'हे जादूगर! क्या जो काम मैं अपनी आंखें बन्द करके करूँ, उसे तुम अपनी आंखें खोलकर कर सकते हो'? जादूगर ने विचार किया, कि जब यह साधारण सा आदमी आंखें बन्द करके कोई काम कर सकता है, तो मैं तो हाथ की कला का अभ्यस्त हूँ, सो मैं उसे आंखें खोलकर क्यों नहीं कर सकूँगा। सो, उसने झट 'हाँ' भर दी। तैनालीराम ने कहा— 'हे जादूगर! यदि तुम वह काम न कर सके, तो तुम्हारी सारी जादूगरी झूठी मानी जायेगी'। जादूगर ने चैलेंज स्वीकार कर लिया।

तैनालीराम फुरती से महल के बाहर गया और जहाँ कमठे का काम चल रहा था, वहाँ से पिसा हुआ चूना एक पात्र में भर लाया। भरे दरबार में सबके सामने तैनालीराम ने अपनी दोनों मुड़ियों में वह चूना भरा और अपनी आंखें बन्द करके सिर पीछे झुकाकर, दोनों मुड़ियों का चूना दोनों आंखों पर डाल दिया। फिर सिर सामने की ओर झुकाकर सिर झिंझोड़कर चूना नीचे डाल दिया। और रुमाल से आंखें पोंछकर आंखें खोल लीं। अब उस जादूगर से अपनी खुली आंखों पर दो मुड़ी भर चूना डालने को कहा। जादूगर को अपनी आंखें फोड़नी थोड़े ही थीं। बस वह अपना सामान लेकर मण्डलीसहित वहाँ से चलता बना। राजा कृष्णराय ने 'तैनालीराम' को अपने पास बुलाया और उसकी प्रत्युत्पन्न मति की प्रशंसा करते हुए कहा— "वाह! तुमने तो हमारी और हमारे राज्य की लाज रख ली। आज से मैं तुम्हें अपना मन्त्री नियुक्त करता हूँ।"

(घ) आविष्कारों की उत्पत्ति —

ऊहापोह बुद्धि का चौथा चमत्कार है नये नये आविष्कार करना। संसार में जितने भी अनुसन्धान-आविष्कार हुए हैं, इस तर्कप्रधान बुद्धि के कारण ही उनका होना सम्भव हुआ है।

सृष्टि के आरम्भ में जीव इस जगत् को समझ सकें, इससे उपयोग ले सकें और बन्धों से मुक्ति प्राप्त कर सकें, इस उद्देश्य से परम पिता परमेश्वर द्वारा अनवच्छिन्न रूप से सतत प्रवाहित वेदरूपी ज्ञान को चार महर्षियों ने अपनी ऋतम्भरा बुद्धि से अक्षर-अक्षर 'ग्रहण' करके 'धारण' किया और ऊहा द्वारा उसे हूबहू अन्य मानवों के सामने उस वेदज्ञान का प्रकटीकरण किया, उसका आविष्कार किया। 'अग्नि ऋषि ने 'ऋग्वेद' का आविष्कार किया। 'वायु' ऋषि ने 'यजुर्वेद' का, 'आदित्य' ऋषि ने 'सामवेद' का और 'अङ्गिरा' ऋषि ने 'अथर्ववेद' का आविष्कार किया— उन्हें जगत्-हितार्थ प्रकट किया।

यथासमय अन्य ऋषि-महर्षियों ने ऊह बुद्धि से उन वेदों के रहस्यों को सरलता से समझाने के लिये ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य और गोपथ आदि ब्राह्मण^A ग्रन्थों का, शिक्षा^B, कल्प^C, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन वेदाङ्गों का और अन्य स्मृति आदि ग्रन्थों का आविष्कार किया।

A यहाँ 'ब्राह्मण' का अर्थ वर्णविशेष 'ब्राह्मण, क्षत्रिय' वाला ब्राह्मण नहीं है। अपितु ब्रह्म = वेद। उसका व्याख्यान ग्रन्थ 'ब्राह्मण' है। ब्रह्मणो वेदस्य व्याख्यानं ब्राह्मणम्। 'ब्राह्मणं नाम

कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः' — भट्टभास्कर (तै. सं. भा. १.५.१)
B वर्णों (= अक्षरों) के उच्चारण करने की विद्या Science of pronunciation का नाम 'शिक्षा' है।
C कल्प के अन्तर्गत चार प्रकार के ग्रन्थ आते हैं — श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र।

पञ्चशिख आदि ऋषियों ने ईश्वरप्राप्ति की विद्या का आविष्कार किया। कणाद ऋषि ने 'विशेष' नामक पदार्थ का अनुसन्धान करके जगत् में कुल 'द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव' ये सात पदार्थ हैं। इस बात का आविष्कार किया था। इनका अनुसन्धानग्रन्थ 'वैशेषिक दर्शन' नाम से प्रसिद्ध है। इसी का समन्वयक 'प्रशस्तपाद-भाष्य' है।

गौतममुनि ने न्याय (Logic) का प्रथम आविष्कार किया और प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान इन सोलह के तात्त्विक ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। इसका आविष्कार किया। इनका विवरण 'न्यायदर्शन' में उपलब्ध है।

कपिल मुनि ने सर्वप्रथम, सूक्ष्मप्रकृति से स्थूल जगत् की उत्पत्ति के क्रम के सिद्धान्त का आविष्कार किया और इस जगत् को पच्चीस तत्त्वों का विस्तार बताया। तदनुसार सूक्ष्म से स्थूल का क्रम है - प्रकृति → महत्तत्त्व → अहङ्कार → मन + चक्षुः + रसना + घ्राण + त्वचा + श्रोत्र; हस्त + पाद + पायु + उपस्थ + वाक्; शब्दतन्मात्रा (→ आकाश), स्पर्शतन्मात्रा (→ वायु), रूपतन्मात्रा (→ अग्नि), रसतन्मात्रा (→ जल), गन्धतन्मात्रा (→ पृथिवी) ये चौबीस पदार्थ सूक्ष्म से स्थूल रूप की प्रक्रिया में होते हैं। पच्चीसवाँ पदार्थ चेतन है। वह चेतन दो प्रकार का है। प्रथम चेतन मात्र संख्या में एक ही है और अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, अजर, अमर, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव तथा सच्चिदानन्द आदि गुणों वाला है। द्वितीय चेतन संख्या में असंख्य अनन्त हैं। वे भी अनादि और नित्य हैं। किन्तु परिच्छिन्न (= अल्प परिमाण वाले = एकदेशी), अल्पज्ञ और निमित्त से बद्ध और मुक्त होने वाले हैं। कपिल के इन आविष्कारों का वर्णन सांख्यदर्शन में मिलता है।

महर्षि पतञ्जलि ने अपनी ऊह बुद्धि की प्रतिभा से चित्तवृत्ति-निरोध के लिये विशेष साधकों की दृष्टि से अभ्यास वैराग्य, ईश्वर-प्रणिधान, प्राणनियन्त्रण, मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा-जन्य प्रसन्नता, विशोका ज्योतिष्मती, स्वप्ननिद्राभावालम्बन आदि आठ उपायों का आविष्कार किया। साधारण साधकों की दृष्टि से यम (= अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान), आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन आठ उपायों का आविष्कार किया और 'संयम' नामक नवम अंग का भी अनुसन्धान किया। इन उपायों के करने से साधक के बुद्धि, मन और शरीर में अलौकिक से सामर्थ्य आ जाते हैं, उनका भी

अनुसन्धान किया। जैसे दूर की बात को जान लेना, भविष्यत् का भी ज्ञान होना। शरीर में अति तीव्रताप उत्पन्न कर लेना, शरीर को यथासमय अदृश्य बना लेना, शरीर को इतना हल्का बना लेना कि वह पृथिवी आदि से ऊपर उठ जाये आदि। मन, शरीर आदि के इन विशिष्ट सामर्थ्यों को उन्होंने विभूति नाम दिया है। इन पर आपाततः तो विश्वास भी नहीं होता। पर वे असम्भव नहीं हैं। पतञ्जलि के इन आविष्कारों की सूचना उनके 'योगसूत्र' नामक ग्रन्थरत्न से प्राप्त होती है।

यह अद्भुत और इतना विचित्र जगत् किसने बनाया है, इस महाप्रश्न का समाधान, महर्षि व्यास ने 'इस सृष्टि का रचयिता एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर है' यह अनुसन्धान करके किया। पञ्चीकरण के द्वारा पञ्च स्थूल भूतों की रचना का आविष्कार भी उन्होंने किया। उनके इन आविष्कार-अनुसन्धानों का विस्तृत विवेचन ब्रह्मसूत्र (= वेदान्तदर्शन) में द्रष्टव्य है।

वेदों को यथार्थ रूप से समझने उनकी इयत्ता को और उनके अस्तित्व को सुरक्षित रखने के साधनों का आविष्कार जैमिनि मुनि ने किया। उनके पूर्वमीमांसा दर्शन में इन बातों का ऊहापोह-पूर्वक सुविस्तृत विवेचन है।

राजर्षि मनु ने वेदोक्त सूक्ष्म सिद्धान्तों का चिन्तन करके स्व-ऊहस्फूर्जित बुद्धि से सबसे प्रथम मानव समाज के सब वर्गों के कर्तव्यों और अधिकारों का आविष्कार किया। उन्हीं के आधार पर आज तक के कानून बने हैं। इसीलिये मनु को कानून का प्रथम आविष्कारक कहते हैं। उसने ही सर्वप्रथम राजनीति-विज्ञान (Political Science) के मूल सिद्धान्तों का आविष्कार 'राजधर्म' के रूप में किया था। धर्म के वास्तविक दश लक्षणों के अनुसन्धाता भी मनु हैं। मनु के अनुसन्धान-आविष्कार हमें आज 'मनुस्मृति' नामक ग्रन्थ में देखने को मिलते हैं।

प्राचीन ऋषि-मुनियों की ऊहाबुद्धि ने भौतिक आविष्कारों से भी मानव जाति को उपकृत किया था। उन्होंने अनेक प्रकार के यन्त्रों और स्वचालित यानों के भी आविष्कार किये थे। उनका पता लगभग आठ सहस्र वर्ष पूर्व के भरद्वाज ऋषि के 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रन्थ से लगता है। यद्यपि वह अपने समग्र रूप में आज उपलब्ध नहीं है। तथापि उसका उनचालीसवाँ अध्याय 'वैमानिक प्रकरण' नाम से सूत्ररूप में आज भी उपलब्ध है। उसके ऊपर बौधायन मुनि की श्लोकमय व्याख्या भी उपलब्ध है^A।

A यह ग्रन्थ 'बृहद्विमानशास्त्र' नाम से सार्वदेशिक सभा, दयानन्द भवन, रामलीलामैदान, नई दिल्ली-2 द्वारा प्रकाशित किया गया था। इसमें स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत हिन्दी टीका भी साथ में है।

इस ग्रन्थ को देखने से प्राचीन काल की वैमानिकी (Aeronautics) पर उत्तम प्रकाश पड़ता है। इसमें प्राचीन काल के छः विमानविद्यावेत्ता ऋषियों और उनके ग्रन्थों का नामोल्लेख किया गया है। यथा — नारायण की 'विमानचंद्रिका', शौनक का 'व्योमयानतन्त्र', गर्ग का 'यन्त्रकल्प', वाचस्पति का 'यानबिन्दु', चाक्रायणि की 'खेटयानप्रदीपिका' और धुण्डिनाथ का 'व्योमयानार्क-प्रकाश'^B। उस समय के वैमानिक ऋषियों ने कितने उन्नत विमानों का आविष्कार किया था, इस बात का प्रमाण पदे पदे प्रतीत होता है।

वहाँ विमान की परिभाषा करते हुए कहा गया है—

“जो यान एक देश से दूसरे देश में, एक द्वीप से दूसरे द्वीप में और एक लोक से दूसरे लोक में आकाशमार्ग से जा सके उसे 'विमान' कहते हैं^C। इन विमानों की बॉडी विशेष प्रकार के धातुओं आदि के मिश्रण से बनती थी। जो जल नहीं सकती थी, कटती नहीं थी और गलती नहीं थी^D। उन विमानों में बत्तीस प्रकार के रहस्ययन्त्र लगे होते थे^E। उन यन्त्रों के सञ्चालनार्थ अलग अलग कीलक (= स्विच) होते थे। 'दूसरे विमान में बैठे लोग क्या बात कर रहे हैं' इसका ज्ञान एक यन्त्र^F के द्वारा होता था। एक अन्य यन्त्र के द्वारा अन्य विमान में स्थित वस्तुओं का ज्ञान हो जाता था^G। विमान के इकतीस अङ्गों का भी वहाँ वर्णन है^H।

- B नारायणः शौनकश्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा। चाक्रायणिधुण्डिनाथश्चेति शास्त्रकृतः स्वयम् ॥ ३४ ॥
विमानचंद्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथैव च। यन्त्रकल्पो यानबिन्दुः खेटयानप्रदीपिका ॥ ३५ ॥
व्योमयानार्कप्रकाशश्चेति शास्त्राणि षट् क्रमात् ।
नारायणादिमुनिभिः प्रोक्तानि ज्ञानवित्तमैः ॥ ३६ ॥ (बृहद्विमानशास्त्र पृ० ५)
- C देशादेशान्तरं तद्वद् द्वीपाद् द्वीपान्तरं तथा।
लोकाल्लोकान्तरं चापि योऽम्बरे गन्तुमर्हति।
स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्रविदां वरैः ॥ (बृ० वि० शा० पृ० ७)
- D कलासंयोजनद्वाराऽभेद्यत्वाऽच्छेद्यत्वाऽदाह्यात्वाऽविनाशित्वादि-गुणविशिष्ट-विमानरचना-
क्रियारहस्यम् । (बृ० वि० शा० पृ० ९)
- E 'रहस्यज्ञोऽधिकारी'। वैमानिकरहस्यानि यानि प्रोक्तानि शास्त्रतः।
द्वात्रिंशदिति तान्येव यानयन्त्रत्वकर्मणि ॥ (पृ० ७)
- F 'विमानस्थशब्दग्राहकयन्त्रद्वारा परविमानस्थ-जनसम्भाषणादि सर्वशब्दाकर्षणरहस्यम्' (पृ० १६)
- G 'विमानस्थरूपाकर्षण-यन्त्रद्वारा परविमानस्थितवस्तुरूपाकर्षणरहस्यम्' (पृ० १६)
- H अङ्गान्येकत्रिंशत्। विश्वक्रियादर्पणयन्त्रमारभ्य यथाविधि एकत्रिंशद् विमानाङ्गस्थानान्युक्तानि
भूरिशः (पृ० २३)

वहाँ विमानों की अनेक प्रकार की गतियों (चलन, कम्पन, ऊर्ध्वगमन, अधोगमन, मण्डलगति, चक्रगति, विचित्रगति, अनुलोमगति, दक्षिण गति, वामगति, तिर्यग्गति, विविधगति) का भी वर्णन है।

भारद्वाज और बोधायन यति के इस ग्रन्थरत्न में उद्धृत प्राचीन ग्रन्थों के नामों से ज्ञात होता है कि, प्राचीन बुद्धि के धनी ऋषि मुनियों ने भौतिकी और रासायनिकी के विविध क्षेत्रों में अनेक अनुसन्धान किये थे और उन अनुभवों को विविध ग्रन्थों में संरक्षित किया था। उन ग्रन्थों में से कुछ नाम द्रष्टव्य हैं - शक्तिसर्वस्वम्, ऋतुकल्पः, शब्दनिबन्धनम्, सौदामिनीकल्पः, लोहतन्त्रम्, लोहशास्त्रम्, लोहरहस्यम्, दर्पणशास्त्रम्, पटकल्पः, मूषकल्पः, कुण्डकल्पः, मुकुरकल्पः, यन्त्रकल्पतरुः, मणिरत्नाकरः, अशनकल्पः, पाकसर्वस्वम्, ब्रह्माण्डसारः, आकाशतन्त्रम्, वायुतत्त्वप्रकरणम्, वाल्मीकिगणितम् आदि।

बृहद् विमान शास्त्र (= वैमानिकप्रकरण) के सन्दर्भों (अस्पष्ट ही सही) को देखकर, वाल्मीकीय रामायण में वर्णित कामचारी विचित्र पुष्पकविमान, महाभारत में वर्णित शुल्व के विमान के वर्णन और 'समरांगण सूत्रधार' के विमान-वर्णन समझ में आ जाते हैं। कालक्रम से ऋषियों के वे आविष्कृत यन्त्र, विमान आदि नष्ट हो गये और उनके ग्रन्थ भी काल के कराल गाल में समा गये अथवा विध्वंस कामी, मानवोन्नति के शत्रु आततायियों द्वारा जला दिये गये।

किन्तु फिर भी उन ग्रन्थों के जहाँ तहाँ उल्लिखित सङ्केतों के अवलम्बन से आधुनिक काल के मनीषियों ने अपनी ऊहाबुद्धि से इन विमान आदि की रचना की सम्भावना पर विचार और कार्य किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जब ई० सन् १८७५ में बम्बई नगर में अपने एक व्याख्यान में "प्राचीन काल में लोग विमानों द्वारा आकाशमार्ग से जाते आते थे" कहा और उसका वर्णन किया, तो लोगों ने इस बात की हंसी उड़ाई थी और उसे असम्भव कहा था। किन्तु वैदिक विद्वान् हताश नहीं हुए। स्वामीजी के ही एक महाराष्ट्रीय अनुयायी श्री शिवकर बापू जी तलपदे ने निरन्तर चिन्तन एवं प्रयोग करके सन् १८९५ में एक विमान का निर्माण किया और उसका सफल प्रदर्शन भी उसी वर्ष बम्बई की चौपाटी पर किया। उस समय प्रसिद्ध न्यायाधिपति महादेव गोविन्द रानाडे, महाराज श्री सयाजीराव गायकवाड़ आदि अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। तलपदे जी ने अपने उस विमान का नाम 'मरुत्सखा' रखा था^K।

J पृष्ठ ७२

K 'अर्वाचीन भारतीय वैज्ञानिक (प्रो० भालवा केलकर) पृ० १२

विज्ञानकथा (मरुत्सखाचे उड़्डाण) पृ० ३२

किन्तु अपने अत्यन्त सीमित साधनों के कारण वे उसका और विकास न कर सके।

उन्हीं के पदचिह्नों और उन्हीं की प्रौद्योगिकी के आधार पर अमेरिका वासी राइट बन्धुओं (विल्बर राइट और आर्विल राइट) ने सन् १९०३ में उसका विकसित रूप तैयार किया और उसी वर्ष १७ दिसम्बर को उसका प्रदर्शन भी किया। यह उड़ान भी कुछ सैकंड्स की ही थी। क्रमशः उसका विकास होता गया। उसी का परिणाम आज के अतिस्वन आदि विमान हैं।

प्राचीन काल के एक मनीषी ने एक ऐसे यन्त्र का आविष्कार किया था, जिसके दर्पणपटल पर अतिदूरस्थ वस्तुओं का क्रियासहित चित्रण उभरता था। ऐसे, यन्त्र का ज्ञान महाभारत कालीन कृष्णद्वैपायन व्यास मुनि को था। उन्होंने ऐसा यन्त्र बनाकर सञ्जय को दिया था। उस पर सुदूर स्थान पर होते हुए कौरव-पाण्डव युद्ध के सम्पूर्ण चित्र आ रहे थे। और सञ्जय उन्हें देखकर धृतराष्ट्र को वहाँ का हाल बताता जा रहा था। इसका नाम 'दिव्यदृष्टि' = दिव्यदर्शन था। उसे ही आजकल दूरदर्शन (Television) कहा जाता है। कालक्रम और आलस्य प्रमाद से वह यन्त्र तो तिरोहित हो गया, किन्तु बुद्धिशाली लोगों के क्रमिक प्रयत्नों से अन्त में स्काटलैंड के एक व्यक्ति जॉन लोगी बेयर्ड ने ई० सन् १९२६ में पहला टेलीविजन बनाया। उसी का क्रमशः विकास होता गया। आज उसी का समुन्नत स्वरूप वर्तमान टेलीविजन है।

बुद्धि की ऊहसम्पत् के स्वामी प्राचीन ऋषिमुनियों द्वारा जगद्धिताय आविष्कृत अनेक यन्त्र-यान-विमान आदि कालगति से उच्छिन्न हो गये। किन्तु परवर्त्ती भारतीय बुद्धिशाली, शिल्पियों ने भी यान्त्रिक उन्नति में सफलता प्राप्त की थी। उसका कुछ विवरण 'समरांगणसूत्रधार' और 'भोजप्रबन्ध' आदि में मिलता है। 'भोजप्रबन्ध' में एक ऐसे कृत्रिम अश्व का वर्णन है, जो एक घंटे में साढ़े सत्ताईस कोश (= ५५ माइल = ७७ किलोमीटर) की गति से चलता था। एक ऐसे व्यजन (= पंखे = Fan) का वर्णन है, जो स्वसञ्चालित (Automatic) था और पुष्कल वायु देता था^M।

प्राचीनकाल के, भौतिक ज्ञानविज्ञान के आविष्कर्त्ता ऋषि-मुनि उच्च कोटि के शिल्पी एवं वैज्ञानिक थे। उत्तम कोटि के वैज्ञानिक एवं शिल्पी विद्वान् अवश्य ऋषिपद

M घट्यैकया क्रोशदशैकमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या।

वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजसम् ॥ भोज

और मुनिपद के पात्र होते हैं। भले ही मध्यकाल में शिल्पोन्नति और भौतिक यान्त्रिक उन्नति करने वालों को थोड़ा हेय सा दर्जा दिया जाने लगा था। किन्तु प्राचीन काल में ऐसा न था। प्रमतिमान् वैमानिक और यन्त्राविष्कर्ता सत्त्वकोटि के जन्मधारी माने जाते थे^N। इस युग में क्रान्तदर्शी मनीषियों ने इस सत्य को स्वीकारा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने वेदभाष्य में लिखते हैं — 'जो शिल्प के ज्ञाता लोग दूसरों को शिल्पविद्या के दान से श्रेष्ठ बनाते हुए अन्धे को जैसे आंखवाला वैसे उन्हें अच्छी प्रकार देखने वाला और बहिरे को जैसे श्रवणशक्ति वाला वैसे उन्हें बहुत [विद्याओं] का सुनने वाला बनावें, वे इस संसार में पूज्य हों' ^{NN} "धर्मरक्षार्थं दुष्टों के संहार के लिये अनेक युद्धोपकरणों और विचित्र अस्त्रशस्त्रों का आविष्कार भी प्राचीन प्रमतिशाली मुनियों ने किया था। ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र, आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र आदि विविध अस्त्रों का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध है^P। शतघ्नी (= तोप) और भुशुण्डी (= बन्दूक) आदि का आविष्कार भी उन की देन है ^Q।

मनुष्यों और अन्य प्राणियों के स्वास्थ्य-संरक्षण और रोग-निवारण-हेतु, वेदवेत्ता, महामति ऋषियों ने चिकित्सा के अनेक सिद्धान्तों का, योगों (= नुस्खों) का और शल्यक्रिया के उपकरणों का आविष्कार किया था। महर्षि धन्वन्तरि-प्रोक्त सुश्रुत-संहिता और आत्रेय पुनर्वसु-प्रोक्त चरक संहिता, इसके जीते जागते प्रमाण

N तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः।

नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः ॥ मनु० १२.४८ ॥

NN "यथा शिल्पविदोऽन्याञ्छिल्पविद्यादानेनोत्कृष्टान् सम्पादयन्तोऽन्धं चक्षुष्मन्तमिव सम्प्रेक्षकान् बधिरं श्रुतिमन्तमिव बहुश्रुतान् कुर्युस्तेऽस्मिञ्च गति पूज्याः स्युः ॥ (ऋ० २.१३.१२ भाष्ये)

P ददामि ते महाबाहो ब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम्।

वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम् ॥

ददामि चास्त्रं पैनाकमस्त्रं नारायणं तथा। आग्नेयमस्त्रं दयितं शिखरं नामनामतः ॥ बाल० रा० २७.७.१०

Q शुक्रनीतिसार आदि में बन्दूक (= भुशुण्डी) आदि का वर्णन है। "आज हम उस प्रागैतिहासिक युग में बन्दूक के अस्तित्व को असम्भव मान रहे हैं, किन्तु ऐसा है नहीं। रूस की राजधानी मास्को के पुराप्राणिशास्त्रीय संग्रहालय में सुरक्षित ईसा पूर्व आठ सहस्त्र वर्षों से भी अधिक प्राचीन नव पाषाणयुगीन वृषभ के कंकाल के मस्तक में पूर्णतः गोलाकार छिद्र उस समय के लिये अनुमानित किसी अस्त्र शस्त्र के आघात से न बनकर, बन्दूक की गोली से ही बना हो सकता है" (देवयान, संस्कृति का विकास और वेद" प्र० ८ पर Danikan के The gold of gods" से उद्धृत।

हैं। अश्वी वैद्ययुगल द्वारा कृत्रिम अङ्ग लगाने का और अङ्ग प्रत्यारोपण का भी सहस्रों वर्षों पूर्व आविष्कार किया गया था^R।

आकाशीय नक्षत्रों—ग्रहों—ताराओं के अध्ययन आदि के सिद्धान्तों, गणनाओं और तदर्थ उपयोगी साधनों—उपकरणों का अनुसन्धान—आविष्कार प्राचीन काल के ऊहप्रज्ञासम्पन्न मनीषी मुनियों ने किया था। लगध ऋषि का वेदाङ्ग ज्योतिष इसका एक संक्षिप्त सा प्रमाण है। ज्योतिष के नाना ग्रन्थ जला दिये गये। फिर भी भास्कराचार्य के 'सिद्धान्त-शिरोमणि' और आर्यभट्ट के ग्रन्थों से ज्योतिष सम्बन्धी प्राचीन गवेषणाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कालान्तर में सायास अनुसन्धान करते रहने पर ही आज का समुन्नत खगोलविज्ञान हमें प्राप्त हो सका है। नक्षत्रों के निरन्तर अध्ययन हेतु ऊहमतिसम्पन्न ज्योतिषियों ने वेधशालाओं का भी निर्माण किया था। काशी, जयपुर चण्चैन और दिल्ली की दो सौ तीन सौ वर्षों के अन्दर बनी वेधशालाएँ एक नमूना मात्र हैं। पुराकाल की अत्यन्त सूक्ष्म गणितीय आधार पर बनी वेधशालाओं के अवशेष यत्र तत्र आज भी उपलब्ध होते हैं।

इंग्लैण्ड के साल्सबरी के मैदानों में एक प्राचीन वेधशाला उपलब्ध है। उसे आजकल 'स्टोन हेन्ज' कहा जाता है। इसके सम्बन्ध में सही तथ्य जानने के लिये सन् १९३६ से ही विभिन्न अनुमान—अध्ययन किये जाते रहे हैं। अद्यतन गवेषणा से ज्ञात हुआ है, कि इसकी सहायता से ज्योतिर्गणनाओं की शृंखला प्रस्तुत की जा सकती है, जिनसे चन्द्रमा की उत्तर और दक्षिणतम अंशों की यात्रा की १८६१ वर्षों की अवधि, उत्तरायण और दक्षिणायन के दिन होने वाले सूर्योदय और चन्द्रोदय का काल तथा सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का भी सटीक पूर्वानुमान किया जा सकता है^S। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इसका निर्माण ईसा से दो सहस्र वर्ष पूर्व किया गया था। दक्षिण अमरीका में उपलब्ध 'चिचेन की वेधशाला' भी प्राचीन ज्योतिर्विदों की ऊहा बुद्धि का प्रमाण है। 'जंगलों के बीच क्रमशः घटते हुए तीन चबूतरों पर बनी यह वेधशाला आस पास की वन—वृक्षावली से बहुत ऊपर उठी हुई है। और भीतर ही भीतर इसके ऊपर जाने के लिये चक्राकार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है, कि इसकी अण्डाकार छत में खुलने वाले गवाक्ष अत्यधिक प्रकाशमान नक्षत्रों की

R सुद्यो जङ्घामार्यसीं विरपलाये धने हिते सतर्वि प्रत्यधत्तम् ॥ ऋ० १.११६.१५

युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ऋ० १.११८.७

S देव० सं० वे० (डॉ० अरुणकुमार) पृ० १४६

और न खुलकर यूरेनस् और नेप्च्यून तथा वैसे ही अन्य कम प्रकाशवान् तारों का अध्ययन करते प्रतीत होते हैं^T।

अपने भावों को दूसरे में सङ्क्रान्त करने का सशक्त माध्यम भाषा ही है। भाषा को शीघ्र समझने और उस पर अधिकार करने के लिये प्राचीन मनीषियों ने स्व-ऊहा से शब्दशास्त्र (= व्याकरण) का आविष्कार किया। विस्तृत भाषा को शब्दशः ग्रहण करने में मनुष्यों को असमर्थ होते जाते देख देवों ने अपने में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् इन्द्र से भाषा (= देवभाषा = वेदभाषा = देववाणी) का व्याकरण बनाने की प्रार्थना की। तब इन्द्र ने एक दूसरे भाषाविद् वायु नामक विद्वान् के सहयोग से व्याकरण का निर्माण किया। इन्होंने ही सर्वप्रथम भाषाशब्दों में प्रकृति और प्रत्ययरूप संस्कार का आविष्कार किया^U। जो कि व्याकरण का कबन्ध रूप कलेवर है। अर्थात् प्रत्येक शब्द में अमुक अंश प्रकृति (= धातु या प्रतिपादिक) है और अमुक अंश प्रत्यय है। इसका निर्धारण किया। इस प्रकृति-प्रत्यय रूपी संस्कार के आविष्कार के पश्चात् ही इस देववाणी को 'संस्कृत' (= संस्कारयुक्ता) नाम से पुकारा जाने लगा^Δ।

इस शब्दशास्त्र (= व्याकरण) के आविष्कार के महत्त्व को समझकर ही प्राचीन मुनियों ने इसका निरन्तर प्रवचन जारी रखा। जिनमें आपिशलि, शाकल्य, गार्ग्य, काशकृत्स्न, स्फोटयन, काश्यप आदि प्रमुख थे। उसी परम्परा में व्याडि और पाणिनि तथा पश्चात् कात्यायन अन्तिम मुनि थे। शब्दशास्त्र के अन्तिम प्रवचनकर्ता पाणिनि के (व्याकरण-संक्षिप्ती-करण-प्रयास) अष्टाध्यायी रूपी आविष्कार को देखकर शब्दशास्त्र के प्रेमी आधुनिक विद्वान् दांतो तले अंगुलि दबाते हैं। रूसी विद्वान् शेरवात्स्की ने लिखा है— "पाणिनि की अष्टाध्यायी मानवमस्तिष्क का अद्भुत चमत्कार है"।

व्याकरण रूपी महा आविष्कार की उपयोगिता का पतञ्जलि मुनि ने भी मुक्तकण्ठ से गुणगान किया है और व्याकरण के अध्ययन के अठारह लाभ (प्रयोजन) बताये हैं^V।

T वही० (पृ० १४८)

U 'वाचै पराध्यव्याकृतावदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन् 'इमां नो वाचं व्याकुर्विति.... तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्' (तै० सं० ६.४.७)

Δ तामखण्डां वाचं मध्ये विच्छिद्य प्रकृतिप्रत्ययविभागं सर्वत्राकरोत् (सा० ऋ० उपो०)

संस्कृते प्रकृति-प्रत्ययादिविभागेः संस्कारमापादिते। शिक्षा॥ शि० सं० पृ० ३८७

V रक्षा-ऊहा-आगम-लघु-असन्देहाः प्रयोजनम्। तेऽसुराः। दुष्टः शब्दः। यदधीतम्। यस्तु प्रयुक्ते। अविद्वांसः। विभक्तिं कुर्वन्ति। यो वा इमाम्। चत्वारि। उत त्वः। सक्तुमिव। सारस्वतीम्। दशम्यां पुत्रस्य। सुदेवोऽसि वरुण।

ऊहापहि (आविष्कार) की उत्पत्ति

किसी शब्द की तह में जाकर उसके सही भाव को समझने के लिये व्युत्पत्तिशास्त्र (Etymology) का आविष्कार भी प्राचीन काल में हुआ था। उसके आविष्कारकों में वार्ष्पायणि, शाकपूणि, गालव, तैटीकि आदि प्रमुख थे। पहले इस शास्त्र को 'निरुक्त' नाम से पुकारते थे। इसके अन्तिम आचार्य 'यास्क' हुए हैं।

योगज एवं साधनोत्पन्न ऊहा प्रज्ञा से मनीषी लोग सब युगों में मानव जाति को उपकृत करते रहे हैं। गत तीन-चार सहस्र वर्षों में बुद्धिगम्य ऋषिमुनिप्रणीत और उनके आधार भूत वेदशास्त्रों से मानव जाति क्रमशः दूर और दूरतर होती गई। परिणाम स्वरूप अनेक कुरीतियाँ, भ्रान्तियाँ, अन्धविश्वास, अविद्या, अधर्म और पाप, प्रपञ्च, पाखण्ड मानवजाति में फैल गये। अठारवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में दण्डी विरजानन्द सरस्वती नामक संन्यासी ने स्व-साधनोपलब्ध महाप्रज्ञा से "आर्षग्रन्थों का अध्ययन ही मानवजाति के उत्थान का मूल कारण है" इस तथ्य का आविष्कार किया^W।

उन्हीं के अप्रतिम शिष्य अशेषशेमुषी-सम्पन्न महातार्किक स्वामी दयानन्द सरस्वती (सन् १८२४ से १८८३) ने अपने गुरु के सङ्केतों के आधार पर स्वकीय अद्वितीय ऊहा से, ऐसे अनेक सत्य सिद्धान्तों का अनुसन्धान और पुनः स्थापन किया, जो सहस्रों वर्षों से तिरोहित हो गये थे। उनमें मुक्ति से पुनरावृत्ति, मनुष्य मात्र को वेदाधिकार, स्त्रियों को शिक्षा और मन्त्राध्ययन का अधिकार, अध्ययन के काल की दीर्घता तथा उसमें ब्रह्मचर्य की अनिवार्यता, वेदों की अपौरुषेयता, वैदिक धर्म की अन्य मतमतान्तरों से श्रेष्ठता, एकेश्वरवाद, षड्दर्शनों में अविरोध, यज्ञ का स्वरूप, अग्निहोत्र की दैनिक अनिवार्यता, गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता, गोरक्षा और कृषि हेतु अनिवार्य उद्यम आदि प्रमुख हैं।

प्रतिभा के धनी प्राचीन आचार्यों ने वास्तुविद्या का भी आविष्कार किया था। उसके द्वारा ही प्राचीन उत्तमोत्तम भवन, दुर्ग, स्तूप, महालय, प्रासाद, पुल, वापी, कूप, झील, सभाभवन आदि का निर्माण सम्भव हुआ था।

महाराज युधिष्ठिर के विचित्र सभाभवन का निर्माण महाशिल्पी मय द्वारा किया

^W 'लगभग डेढ़ सौ वर्ष हुए होंगे कि यमुना के तट पर मथुरा में एक अंधे संन्यासी (दण्डी विरजानन्द) ने इस बात का प्रचार किया कि आर्षज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, आर्ष सिद्धान्त ही सर्वोत्तम सिद्धान्त है और आर्ष शिक्षा ही मनुष्य के यथार्थ सुख और शान्ति का हेतु है" (देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय) म० द० स० जी० च० भूमिका)

बुद्धि के गुण

गया था^X। भारत और प्राचीन लङ्का द्वीप के मध्य सैंकड़ों मील के पुल का नल नील नामक महा अभियन्ताओं द्वारा किया गया निर्माण भी इसी वास्तुविद्या के आविष्कार का परिणाम था^Y।

आधुनिक आविष्कारों के मूल में भी वही ऊहा बुद्धि मुख्य है। हम विस्तार के भय से कुछ ऊहाप्रज्ञाशील आधुनिक व्यक्तियों और उनके द्वारा किये गये कुछ आविष्कारों का नाममात्र, कालाङ्क—सहित नीचे दे रहे हैं—

आविष्कार	आविष्कर्ता का नाम (राष्ट्रीयता)	काल
साइकिल	बैरन कार्ल (जर्मन)	१८१३ ई०
मोटर साइकिल	गोटलीब डायमलर (जर्मन)	१८८७ ई०
मोटर कार	कार्ल बैज (जर्मन)	१८८६ ई०
टेलीफोन	अलेक्जेंडर ग्राहम बेल (स्काटिश)	१८७६ ई०
फोटोग्राफी	लुई दाग्युरे (फ्रेंच) [श्वेतश्याम चित्र] ग्रेबियल लिप्पैन [रंगीन चित्र]	
रेडियो	गुगलील्मो मार्कोनी (इटालियन) हैनरिख हर्टज (जर्मन), ली. डी. फोरेस्ट (अमेरिकन)	१८९६ ई०
ट्रांजिस्टर	जान बारडीन, विलियम शौकले, वाल्टर ब्राटेन (तीनों अमेरिकन)	१९४८ ई०
प्रेसर कुकर	डेनिस पेपिन (फ्रांसीसी)	१६७२ ई०
रेफ्रिजरेटर	माइकेल फैराडे (ब्रिटिश) जैकब परकिन्स (अमरीकन)	१८२० ई० १८३४ ई०
रेल इंजिन	जॉर्ज स्टीफेंसन	१८१४ ई०
टेलीविजन	जान लोगी बेयर्ड (स्काटिश)	१९२६ ई०
कम्प्यूटर	हर्मन हॉलरिथ (अमेरिकन)	१८८९ ई०
टाइपराइटर	क्रिस्टोफर लैथम शोल्स (अमेरिकन)	१८६७ ई०
टेपरिकार्डर	वाल्डेमार पोल्सेन (स्वीडिश) फ्र्यूमर (जर्मन)	१८९९ ई० १९२९ ई०

X द्रष्टव्य— महाभारत, सभापर्व १-३ अध्याय।

Y वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग २२ श्लोक ४५-८७

हवाई जहाज	शिवकर बापूजी तलपदे (भारतीय)	१८९५ ई०
	आर्विलराइट, विल्बर राइट (अमेरिकन)	१९०३ ई०
हेलीकॉप्टर	कोरनू (फ्रांसीसी)	१९०७ ई०
	सिकोस्की (रूसी + अमरीकी)	१९४१ ई०
घड़ी (कमानी वाली)	पीटर हेनलीन (जर्मन)	१५०० ई०
घड़ी (पेंडुलम वाली)	क्रिश्चियन हाइजिंस (डच)	१६५८ ई०
प्रिंटिंग मशीन	रगल्स	१८३० ई०
	जॉर्ज गार्डन	१८६१ ई०
प्रिंटिंग शीशा टाइप	गुटेनबर्ग (जर्मन)	
राडार	रोबर्ट वाट्सन वाट (स्काटिश)	१९३५ ई०
राकेट	मैक्स वेलियट	१९२९ ई०
कृत्रिम उपग्रह	सर्जीकरोलोव (रूसी)	१९५७ ई०
टेलिस्कोप (दूरदर्शी)	हैंस लिपरशी (डच)	१६०८ ई०
माइक्रोस्कोप (सूक्ष्मदर्शी)	जकारियस जेन्सेन	१५९० ई०
थर्मामीटर	गैलिलियो (इटालियन)	१५९३ ई०
स्टेथस्कोप	रैने थि० है० लैनिक (फ्रांसीसी)	१८१६ ई०
	डा० कैमन	१८८५ ई०
एक्स-रे	विलहेम रॉन्जेन् (जर्मन)	१८९५ ई०
बिजली जनरेटर	माइकेल फैराडे (ब्रिटिश)	१८३१ ई०
डायनामाइट	अल्फ्रेड नोबेल (स्वीडिश)	१८८६ ई०
मशीनगन	हिरेम मैक्सिम (अमरीकी)	१८८२ ई०
टैंक	जॉम फेण्डर (ब्रिटिश)	१८८२ ई०
मिसाइल	वार्नर फॉन ब्रान (जर्मन)	१९४० ई०
ग्रामोफोन	टामस अल्वा एडिसन (अमेरिकन)	
पैराशूट	सेबेस्टियन लेनॉरमेंड (फ्रेंच)	१७८३ ई०
पनडुब्बी	विलियम बोर्नी	१५७९ ई०
	डेविड ब्रुशनेल	१७७३ ई०
	साइमन लेक	१९०१ ई०
होवर क्राफ्ट	सी. एस. काकरेल	१९५४ ई०
पुल	नल, नील (भारतीय)	रामायणकाल

इस प्राचीन और अर्वाचीन आविष्कर्त्ताओं ने अपनी ऊह-बुद्धि और सतत साधना से मानव जाति को योग, चिकित्सा और टेलीफोन आदि संसाधन उपलब्ध कर कर वास्तव में अति प्रशंसनीय कार्य किया है।

(ड) विवेकशक्ति (= सद् असद् का विवेचन)-

बुद्धि के ऊहापोह गुण का पांचवां अङ्ग है विवेक। जिसके द्वारा मनुष्य सत् और असत् का-अच्छे और बुरे का - धर्म और अधर्म का-पुण्य और पाप का - वास्तविकता और भ्रान्ति का-ऋजु और पाखण्ड का विवेचन करके, उनमें से सत् का अच्छे का-धर्म का-पुण्य का-वास्तविकता का - सरल का ग्रहण कर सकता है और असत् - अधर्म - पाखण्ड - भ्रान्ति को त्याग देता है।

ऐसी विवेचनात्मिका बुद्धि को ही गीता में सात्त्विक बुद्धि कहा गया है^Z।

इसी विवेक बुद्धि के द्वारा मनुष्य अनेक अन्धविश्वासों और भ्रान्तियों से बच जाता है। ऐसी बुद्धि के अभाव में मनुष्य अनेक चालाक स्वार्थी लोगों के बहकावे में आकर अपना स्वास्थ्य, धन और प्रतिष्ठा गंवा बैठता है और बुरी मौत मरता है।

मानवजीवन व्यवहार में इस विवेकप्रधान ऊहाबुद्धि की कितनी उपादेयता है और इसके बिना जनता में कितने आडम्बर घर कर लेते हैं। इसका विवेचन हम अगली पंक्तियों में सोदाहरण कर रहे हैं-

तन्त्रविद्या-अविवेक

विवेक बुद्धि के अभाव में कई तन्त्रविद्या^A के द्वारा धनवान् होने के चक्कर में आ जाते हैं। परअन्त में तथाकथित तान्त्रिकों के झूठे दावों का पर्दाफाश हो ही जाता है। गत दशक से 'तान्त्रिक' रूप से प्रसिद्ध और अनेक देशों के शसनाधिपतियों और उच्चाधिकारियों से सम्बन्ध रखने वाले एक 'स्वामी' की तन्त्रविद्या रूपी अन्धविश्वास की पोल अभी गतवर्ष, लखनूभाई पाठक वाले मामले में खुल ही गई। संसार समझता था, कि यह बहुत बड़ा तान्त्रिक है, जो तन्त्रविद्या के बल पर इतना प्रभावशाली, वैभव सम्पन्न और प्रतिष्ठित बन गया है। 'तन्त्रविद्या' नाम तो मात्र एक बाहरी आडम्बर था, उसकी सम्पन्नता का रहस्य विधिविरुद्ध उपायों से हेराफेरी ही था। यदि वह तथाकथित

^Z प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।

बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३० गी० १८.३०

A

५८

बुद्धिनिधि:

‘तन्त्रविद्या’ में निष्णात था, तो अपनी रक्षार्थ कुछ तो करता। उसे ठगी आदि के मामलों में जेल में डाल दिया गया। जेल के सीकचों से बाहर आने के लिये, उस तान्त्रिक ने नौ बार जमानत हेतु आवेदन किया, पर नौ बार ही वह खारिज कर दिया गया। तथाकथित तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव से न तो वह जेल का दरवाजा खुलवा सका, न एक सीकचा भी हटा सका, न जेल के अधिकारियों—सुरक्षाकर्मियों का दिमाग बदल सका और न ही न्यायाधिपतियों के मस्तिष्क अपने पक्ष में कर सका।

उसका जेल से बाहर आना तो, उसी केस में तथाकथित रूप से संलिप्त एक पूर्व प्रधानमन्त्री को राजनैतिक दबाव के कारण मिली जमानत के प्रकाश में, उसे भी जमानत मिलजाने के कारण हुआ। इस सब घटनाचक्र से एक लाभ यह हुआ, कि लोगों के दिमाग पर तथाकथित तन्त्रविद्या का जो भारी आतङ्क था वह जाता रहा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती (संवत् १८८१-१९४०) मानवजाति के उत्थान के लिये और अविद्या-अन्धकार से उसे निकालने के लिये धर्म प्रचार करते हुए मृतकश्राद्ध आदि कुरीतियों और जड़पूजा आदि अन्धविश्वासों का प्रबल खण्डन करते थे। कुछ स्वार्थलोलुप व्यक्तियों ने इसको अपने स्वार्थ-साधन में बाधा समझकर—मिर्जापुर नगर के एक सेठ से कहा कि यदि आप आर्थिक सहायता करें, तो हम तन्त्रविद्या के द्वारा स्वामी दयानन्द को समाप्त कर सकते हैं। उस सेठ ने आर्थिक सहयोग दे दिया। विरोधियों ने तान्त्रिक पुरश्चरण स्वामी के वधहेतु आरम्भ कर दिया। इसी बीच एक विचित्र घटना घटित हो गई। अर्थसहयोग देने वाले सेठ की गरदन पर एक विषैली गांठ निकल आई और दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। कुछ दिन बाद वे तान्त्रिक उस सेठ के पास पहुँचे और बोले कि बस अब पुरश्चरण पूरा ही होने वाला है, यदि आप थोड़ा धन और देवें तो आप हमारी विद्या का चमत्कार देखेंगे, कि दयानन्द का सिर घड़ से अलग हो जायेगा। सेठ जो स्वयं ग्रीवा-ग्रन्थि की पीड़ा से दुःखमग्न था, सो बोला “पता नहीं दयानन्द का प्राणान्त होगा कि नहीं, मेरे तो प्राण अभी निकले जा रहे हैं, तुम अपना पुरश्चरण बन्द करो, मैं और धन नहीं दूँगा”। अन्ततः वह पुरश्चरण विफल हुआ।

ये तान्त्रिक लोग वशीकरण, मोहन, उच्चाटन आदि शब्दों का जाल रचते हैं और तथाकथित मन्त्रों (? मनघड़न्त वाक्यों) द्वारा शत्रुविनाश की बात करते हैं। इनके मन्त्रों द्वारा कुछ नहीं होता। ये लोग धोखे से अपने शत्रु को विष देकर अथवा गुप्त

शस्त्रप्रहार के द्वारा मरवा देते हैं और प्रसिद्ध करते हैं, कि हमारे तान्त्रिक प्रयोग से यह कार्य हुआ हैB।

सन् १८७८ में पुष्कर में कुछ तान्त्रिकों ने यह प्रचार कर रखा था कि हम मन्त्रद्वारा किसी को भी मार सकते हैं। जब स्वामी दयानन्द सरस्वती पुष्कर के कार्तिक मेले में प्रचारार्थ ७ नवंबर १८७८ को वहाँ गये, तो कुछ सज्जनों ने उन तान्त्रिकों की सिद्धि की बात स्वामीजी के समक्ष रखी। स्वामीजी ने उन्हें कहला भेजा, कि हम एक कांच के पात्र में एक जीवित मक्खी को डालते हैं। इस पात्र में थोड़ी सी हवा जाने का छिद्र भी रखते हैं, जिससे वह जीवित रहे। अब तुम अपने तन्त्र-मन्त्र से इसे मारकर बताओ। अथवा अपने तन्त्र-मन्त्र से हमें ही मार कर बताओ। बस उन तान्त्रिक साधुओं की तथाकथित मन्त्रशक्ति को मानो लकवा मार गया हो।

‘तन्त्र’ शब्द का अर्थ है एक विस्तृत आयोजन – एक विस्तृत संस्थान। जैसे – नाडीतन्त्र, वाक्तन्त्र, शासनतन्त्र आदि शब्दों में इनका प्रयोग हुआ है। पर तथाकथित तन्त्रमन्त्र-विद्या कपोलकल्पना पर आधारित है और उसका उद्देश्य भी अनिष्ट-प्रधान है।

लोग कितना ही पढ़ लिख जायँ, किताबी ज्ञान प्राप्त कर लें, बड़ी बड़ी डिग्रीयाँ पा लें और शैक्षणिक और साहित्यिक उच्च पद भी प्राप्त कर लें, किन्तु इस विवेकबुद्धि के अभाव में, वे बिना विचारे, किसी भी बात पर आंख मूंद कर विश्वास कर लेते हैं।

गणेशमूर्तिदुग्धपान-अविवेक

बीस सितम्बर १९९५ को मध्याह्न में मैं प्रचारप्रवास से लौटकर नोएडा स्थित अपने आवास पर पहुँचा। मुख्य द्वार के अन्दर का किंवाड खुला था। केवल बाहर का जाली वाला किंवाड बन्द था। घंटी बजाई। दो तीन बार बजाई। न तो कोई किंवाड

B “और मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि प्रयोग करते हैं। सो मन्त्र से तो कुछ भी नहीं होता, किन्तु क्रिया से सब कुछ करते हैं। जब किसी को मारने का प्रयोग करते हैं, तब इधर कराने वाले से धन लेके आटे वा मिट्टी का पुतला, जिसको मारना चाहते हैं, उसका बना लेते हैं। उसकी छाती, नाभि, कण्ठ में छुरे प्रवेश कर देते हैं। आंख, हाथ, पग में कीलें ठोकते हैं। उसके ऊपर भैरव या दुर्गा की मूर्ति बना हाथ में त्रिशूल दे उसके हृदय पर लगाते हैं। एक वेदी बनाकर उसमें मांस आदि का होम करने लगते हैं और उधर दूत आदि भेज के उसको विष आदि से मारने का उपाय करते हैं, जो पुरश्चरण के बीच में उसको मार डाला तो अपने को भैरव, देवी की सिद्धि वाले बताते हैं।” सत्यार्थ एका० समु०

खोलने आया और न ही कोई दिखाई दिया। ध्यान से देखा तो जाली वाले किंवाड़ में बाहर से ताला पाया। सोचा, क्या करें?। पड़ौस में किसी के यहाँ सामान रखकर, पता लगाऊँ, कि घर वाले कहाँ गये हैं?। १०-१५ मिनट बीते थे, कि अचानक बाहर से धर्मपत्नी आ गई। मैंने पूछा— 'कहाँ गई थी?' धर्मपत्नी— "आपको पता नहीं है क्या? आज एक बड़ा अन्धानुकरण हो रहा है। लोग गणेशजी की मूर्ति को दूध पिला रहे हैं और देखादेखी सब लोग गणेशमन्दिर में मूर्ति को दूध पिलाने जा रहे हैं। मैं नीचे वाले फ्लैट की बहिन को बताने—समझाने गई थी, कि तुम इस चक्कर में मत पड़ो। यह असम्भव है"।

वास्तव में उस दिन एक पूर्वतः निश्चित कुचक्र के अंतर्गत जानबूझकर यह प्रचारित किया गया, कि आज गणेश जी (= गणेशमूर्ति) दुग्धपान कर रहे हैं और भेड़चाल ऐसी चली कि "मैं भी गणेश को दूध पिलाऊँ, मैं भी। दूधवाले लोगों ने जमकर पैसा कमाया। एक चम्मच दूध का पांच पांच रुपये तक वसूला गया। जयपुर के मोतीढूंगरी स्थित गणेश-मन्दिर का पुजारी चिल्ला चिल्ला कर मना कर रहा है, कि मूर्ति दूध नहीं पी रही है, सारा दूध नीचे गिर रहा है' पर कौन माने?। किसी ने तुरी छोड़ दी थी, कि जिसका दूध गणेशजी ग्रहण नहीं करेंगे, वह पापी है"। बस! अब हर एक यही झूठा राग अलाप रहा था, "हाँ, मेरा दूध तो गणेश जी ने पी लिया"। अलवर के बजाजा बाजार में 'पाल एम्पोरियम' के अधिपति श्री धर्मपाल आर्य कह रहे हैं "भाई! तुम दौड़ दौड़ कर वहाँ के सफेद संगमरमर के बने गणेश की सूंड पर दूध चम्मच चम्मच डाल रहे हो, जो कि स्वयं सफेद होने के कारण तुरत नीचे गिरता दिखाई नहीं देता। कोई मेरे पड़ौस में स्थित सिन्दूर से पूरे लाल लाल बने गणेश जी को तो दूध पिलाओ, असलियत पता लग जायेगी"। पर उधर कोई नहीं गया। बीकानेर के मनसा वाचा कर्मणा तपस्वी डॉ॰ शिवनारायण आर्य अपने मित्र के कहने पर (तथ्य बताने के लिये) यह नाटक करने गये और दूध भरा चम्मच सूंड के लगा दिया, पर उंडेला नहीं और अपने मित्र से कहा, कि देख! सूंड दूध नहीं खींच रही है। एक बूंद दूध भी चम्मच में से कम नहीं हुआ है, इसलिये यह केवल अन्धविश्वास है"। पर किसी को सत्य सुनने समझने की फुरसत कहाँ?

विवेकरहित लोग भेड़चाल में सम्मिलित रहे। आगे वाली भेड़ गड्ढे में गिरेगी तो पीछे वाली भेड़ों को भी उसी में गिरना है। और तो और वाइसचांसलर जैसे पदों

पर आसीन कई प्रतिष्ठित लोग भी उसे सम्भव मान रहे थे। कोई कितनी ही किताबें रट ले, पर बुद्धि के विवेक गुण के अभाव में वह अन्धविश्वास से उबर नहीं सकता।

ये लोग विवेकबुद्धि से काम लेते, तो सीधी सी बात समझ में आ जाती, कि एक मनुष्य जीवितावस्था में रोटी-शाक-दाल-भात-फल आदि खाता है; गन्ने आदि चूसता है; चटनी आदि चाटता है और घी-दूध-रस-पानी आदि पीता है। किन्तु उसके मर जाने पर - उसमें से (= उसके शरीर में से) आत्मा के निकल जाने के बाद, उसके मुख में दूध आदि पेय डाला जायेगा, तो वह उसके अन्दर नहीं जायेगा, अपितु मुख में से बाहर बह जायेगा। जब कि कुछ समय पहले तक (= उसकी जीवितावस्था में) दूध आदि सब कुछ उसके गले के अन्दर उतर रहा था। अब यद्यपि उस में आत्मा नहीं है, पर उस शरीर में तो गला, गलनली, आमाशय, आंतें तथा सभी नस नाड़ियाँ आदि चैनल वैसे के वैसे ही हैं, फिर भी उसमें दूध आदि का एक चम्मच भी अन्दर नहीं जाता, तो गणेश-मूर्ति तो ठोस पत्थर आदि की बनी हुई है, अन्दर से पूरी ठोस है, उसमें गलनली, आमाशय आदि कुछ भी नहीं है; उसके अन्दर दूध कैसे और कहाँ उतर जायेगा? और न वह चेतन है, जो पीवेगी। वह तो इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान इन गुणों से रहित होने के कारण जड़ मात्र वस्तु है। इतना विवेक कर लेते, तो वे लोग, भ्रम फैलाने वाले विकर्मियों के बहकावे में न आते, मनो-टनों दूध खराब न करते और अपना समय बरबाद न करते।

‘गणेश’ एक अवैदिक एवं कल्पित देव

वेद में अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, सोम, सुपर्ण, यम, मातरिश्वा, सविता, पूषा, ब्रह्मणस्पति, ब्रह्म और रुद्र आदि देवों का वर्णन है। ये अग्नि, इन्द्र, सविता आदि शब्द प्रसङ्गानुसार जड़ देवों (= भौतिक पदार्थों) के भी नाम हैं। पर सृष्टिरचयिता-पालक-संहारक एवं आराध्य के रूप में एक ही परम सत्ता परमेश्वर के ही वे अनेक गुणनाम हैं। अतएव ऋग्वेद में “एक ही परम सत्तावान् तत्त्व (= परमेश्वर) को ज्ञानी लोग इन्द्र अग्नि आदि नामों से पुकारते हैं*। ऐसा लिखा है। कालान्तर में देखा देखी अविद्यावशात् इन वैदिक देवों में से कुछ के विग्रह या मूर्तियाँ बनने लगीं और फिर उन्हें पूजा जाने लगा। विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा और सूर्य आदि की मूर्तियों की पूजा पहले प्रारम्भ हुई। ऐतिहासिक पुरुषों

* ‘इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० १.१६४.४६

में श्रीराम, श्रीकृष्ण, हनुमान्, बलराम आदि की मूर्तियों की भी पूजा प्रचलित हो गई। पौराणिक प्रभाव से शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, वराह, भैरव की भी पूजा होने लगी।

जड़ पदार्थों, प्राकृतिक दृश्यों और निराकार शक्तियों के कल्पित विग्रहों के अतिरिक्त ऐसे देवों की भी पूजा होने लगी जो नितान्त काल्पनिक हैं। जिनकी सत्ता है ही नहीं। उनमें 'गणेश' नाम सबसे ऊपर है। 'गणेश' रूपी देव सर्वथा पौराणिक कल्पानाओं की देन हैं। जैसे कि इन विगत ४०-५० वर्षों में 'सन्तोषी' माता नामिका नई देवी हठात् अन्धश्रद्धालुजनों में प्रविष्ट कराई गई और उसकी मन्दिरों में मूर्ति स्थापित करवाके पुजवाया जाने लगा। इस 'सन्तोषी' माता का वेदादि शास्त्रों में तो क्या कहीं पुराणादि और तुलसीरामायण आदि में भी नामोनिशान नहीं है। वैसी ही प्रायः 'गणेश' की स्थिति है। जैसे आज 'सन्तोषी' माता का प्राचीन वेदादि पुस्तकों में नामोल्लेख न होने पर भी, उसके नाम की आरती, भजन और चलचित्र बन गये हैं, तो आश्चर्य नहीं, कि कालान्तर में उसकी महिमा के श्लोकादियुक्त माहात्म्यग्रन्थ (= पुराण) भी बन जायँ। वैसे ही वेदादि शास्त्रों में गणेश का उल्लेख नहीं था, किन्तु कालान्तर में इस कल्पित देव के माहात्म्य ग्रन्थ (= गणेश पुराण तथा अन्य पुराणों के गणेशखण्ड) बनाकर उसे महिमा-मण्डित पर दिया गया।

वेद में कहीं भी 'गणेश' शब्द नहीं है। विघ्नेश, हेरम्ब, एकदन्त, गजानन, लम्बोदर, शूर्पकर्ण आदि लोकप्रचलित गणेशनामों का भी वेद में कहीं भी उल्लेख नहीं है। 'गणपति' शब्द वेद में अवश्य आया है। मूल संहिताओं में कुल पांच छः बार यह शब्द आया है। पर वहाँ 'गणपति' कहीं इन्द्र का विशेषण है^Δ। कहीं ब्रह्मणस्पति परमात्मा का नाम है^Β यजुर्वेद में गणों (= समूहों) के अधिपति होने के कारण गणपतियों (= समूहों के अध्यक्षों) को प्रणाम करने और उन्हें अन्न आदि देने की बात कही गई है।^Γ वेदों में प्रयुक्त 'गणपति' का लम्बोदर, गजमुख गणेश से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। आजकल यजुर्वेद (२३.१९) के 'गणानां त्वा गणपतिं, हवामहे' मन्त्र से गणेशजी की पूजा की जाती है, पर यह ऐसा ही अज्ञान है जैसे 'शं नो देवीरभिष्टये' (यजु. ३६.१२) मन्त्र में आये 'शंनः' शब्द को देखकर इस मन्त्र से शनि की पूजा करना और 'उद्बुध्यस्वाने प्रतिजागृहि' (यजु. १५.५४) के 'बुध्यस्व' पद के कारण इस मन्त्र से बुध की पूजा करना।

वाल्मीकि - रामायण में शिव का विवरण है, पर गणेश या गणपति का कहीं नाम नहीं है। महाभारत में शिव का विस्तृत वर्णन है, परन्तु गणेश की कहीं चर्चा नहीं

Δ ऋ० १०.१२.९

Β ऋ० २.२३.१

* 'नमो गणेश्यो गणपतियश्च वो नमः' (यजु. १६. २५)

है। कुछ प्रतियों के आरम्भ में लिखा है कि 'व्यास बोलते जाते थे और गणेश लिखते जाते थे'। पर आगे सम्पूर्ण महाभारत में कहीं गणेश का उल्लेख नहीं है। श्री पाण्डुरंग वामन काणे ने अपने 'धर्मशास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में लिखा है— "महाभारत के कई संस्करणों में गणेश के लेखक होने का उल्लेख नहीं है"। इससे स्पष्ट है कि कुछ प्रतियों में पीछे से जोड़ दिया गया कि गणेश महाभारत के लिपिकर्त्ता थे। काव्यग्रन्थों में कालिदास के रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत आदि काव्यों में भी गणेश का नामोनिशान नहीं है, जब कि शिव उसके आराध्यदेव हैं।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'गणेश' नामक देवता वैदिक वाङ्मय के निर्माण के बहुत बाद के कल्पित देवता हैं। अतएव श्री काणे का "गणेशपूजा ईसा की पांचवी-छठी शताब्दी के बाद की है"।^{१०} यह कहना सत्य ही है।

इस अवैदिक देव 'गणेश' को इसलिये भी कल्पित समझना चाहिये कि इसके स्वरूप, गुण, नाम और जन्म आदि के विषय में पुराण तन्त्र आदि ग्रन्थों में नानाविध तथा परस्पर विरोधी कल्पनाएँ की गई हैं। इनका स्वरूप एक मुख वाला, सूंड वाला, लम्बे पेट वाला और चार भुजा वाला तो बहुत प्रचारित है ही, किन्तु मध्यप्रदेश में दो मुख वाली और पांच सूंड वाली मूर्ति भी गणेश की मिली है। कहीं ये लाल (= सिन्दूर वर्ण वाले^B), कहीं हल्दी के समान पीले (= हरिद्रागणेश^B), और कहीं सूर्यप्रकाश के समान कान्तिवाले^G बताये गये हैं। पुराण में लिखा है कि विष्णु ने गणेश के आठ नाम रखे— विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, एकदन्त, गजानन, लम्बोदर, शूर्पकर्ण और विनायक^H। पर गणेशपूजा में लोग इनके बारह नाम पढ़ते हैं^J।

कल्पित गणेश के इन कल्पित नामों में उसे विघ्ननाशक, कहा गया है। पुराणों में भी इसे विघ्नवारण कहा है^K। आधुनिक ज्योतिष वाले भी गणेश को

- ♦ भारतरत्न पाण्डुरंग वामन काणे कृत 'धर्मः इति' (पृ०)
- B सिन्दूरवर्ण द्विभुजं गणेशम् (ह० ज्यो० ध० पृ० ३४९)
- E हरिद्राखण्डप्रतिमम् (ह० ज्यो० ध० पृ० ३५१)
- G अनन्तकोटिसूर्योजा देवानामाखुवाहनः (वही पृ० ३४८ मुद्गल पुराण)
- H ब्रह्मवैवर्त्तं गणपतिखण्ड अध्याय - १२
- J सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः। लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः। धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ॥ (मु० वि० १.१., पी० धा० टीका)
- K ततः प्रत्यक्षतां यातो विघ्नेशो विघ्नवारणः ॥ (मुद्गलपुराण)

विघ्ननिवारक मानते हैं। मेरे सामने इस समय बम्बई से प्रकाशित 'श्री वेङ्कटेश्वर-शताब्दी-पञ्चाङ्ग' (२००१ से २१०० पर्यन्त) रखा हुआ है। इसमें प्रत्येक वर्ष के पञ्चाङ्ग के आरम्भ में ऋद्धि-सिद्धि-युत गजानन गणेश को विघ्नों के समूहों का वैसा ही विनाशक माना है, जैसा कि सूर्य अन्धकार समूहों का विनाशक होता है^M। यह बात इस पञ्चाङ्ग-ग्रन्थ में एक सौ बार लिखी है। फलित ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मुहूर्तचिन्तामणि' के कर्त्ता राम दैवज्ञ ने भी गजमुख गणेश से विघ्नहरण की प्रार्थना की है^N। इस ग्रन्थ के टीकाकार तथा राम दैवज्ञ के भतीजे गोविन्द दैवज्ञ ने भी वहीं गणेश को महाविघ्नों का विनाशक लिखा है^P।

किन्तु इन सबके विपरीत 'गणेश' को विघ्नकर्त्ता भी बताया गया है। कसहपुराण (अध्याय २३) में लिखा है, कि एक बार पृथिवी पर सब मनुष्य सदाचारी हो गये, तौ यमराज को कोई काम ही नहीं रह गया, क्योंकि नरक में कोई आता ही नहीं था। तब देवों के अनुरोध पर महादेव ने धर्मकार्यों में विघ्न डालने के लिये अपने शरीर से एक तेजस्वी कुमार उत्पन्न किया। उमा उसके सुन्दर रूप को एकटक होकर निहारने लगी। तब स्त्रीसुलभ चंचलता और उस बालक के मनमोहन रूप को देखकर ईर्ष्यावश शिव ने उसको लम्बोदर, गजमुख और अन्य अंगों से विकारयुक्त होने का शाप दे दिया^R।

स्कन्द पुराण (माहेश्वरखण्ड अध्याय ९) में लिखा है, कि समुद्रमन्थन से जब विष निकला तो विष्णु ब्रह्मा आदि देव व्याकुल हो गये और पूरा ब्रह्माण्ड जलने लगा। तब शिव ने गणेश से इसका कारण पूछा। तब गणेश ने बताया कि मेरा नाम विघ्नेश है। मेरी और आपकी पूजा न करने वालों के कार्य में इसी प्रकार मैं विघ्न डालता हूँ। यह मेरा विनोद है^S। लिङ्ग पुराण (१.१०४) में लेख है, कि देवों की प्रार्थना स्वीकार

M स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम्।

वासरमणिरिव तमसां राशिं नाशयति विघ्नानाम् ॥

N गौरीश्रवः-केतकपत्रभङ्गमाकृष्य हस्तेन दधन्मुखाग्रे।

विघ्नं मुहूर्त्तकलित-द्वितीयदन्तप्ररोहो हरतु द्विपास्यः ॥ (मुं विं १.१)

P गणेशः सर्वदेवानामादौ पूज्यः सदैव हि। सर्वैरपि महाविघ्ननाशकोऽन्यो न विद्यते (पी० धा० टी० १.१)

R विघ्नार्थमवशिष्टार्थं हसतः परमेष्ठिनः। परमेष्ठिगुणैर्युक्तः कुमारोऽभासयद् दिशः।

तं दृष्ट्वा परमं रूपं कुमारस्य महात्मनः। उमाऽनिमेषनेत्राभ्यां तमपश्यच्च भामिनी।

तं दृष्ट्वा कुपितो देवः स्त्रीभावं चञ्चलं तथा। मत्वा कुमाररूपं च शोभनं मोहनं दृशाम् ॥

ततः शशाप तं देवं गणेशं परमेश्वरः। कुमार! गजवक्त्रस्त्वं प्रलम्बजठरो भव॥

S मया विघ्नं विनोदेन कृतं तेषां सुदुर्जयम्। नार्चयन्ति च ये त्वां मां तेषां क्लेशोऽधिको भवेत्॥

बुद्धि के गुण

कर, दैत्यों के शुभ कार्यों में विघ्न डालने के लिये शिव ने स्वयं ही त्रिशूलधारी गजानन रूप धारण कर लिया^T। अब बताइये गणेश को विघ्ननिवारक मानें या विघ्नकर्ता?

ऐसे ही गणेश के जन्म के विषय में भी पुराणों में परस्पर विरोधी कथाएँ हैं। मत्स्यपुराण (अ० १५४) में कथन है, कि पार्वती ने एक बार अपने शरीर में सुगन्धित तैल और उबटन लगाकर उसके चूर्ण से विनोद में एक ऐसा बालक बनाया जिसका मुख हाथी के समान था। बाद में पार्वती ने उस जीवित पुत्र को बहती गङ्गा में फेंक दिया। तब उस बालक ने अपना शरीर इतना बढ़ाया, कि उससे तीनों लोक परिपूर्ण हो गये। तब पार्वती और गङ्गा दोनों उसे पुत्र पुत्र कहकर पुकारने लगीं। उसके बाद पितामह ने उसे भीषण विनायकों का स्वामी बना दिया^U। पुराण में इसका इस प्रकार भी वर्णन है, कि पार्वती ने जया-विजया नाम वाली स्वसखियों के अनुरोध से और स्व-स्नानसमय में द्वारपाल की आवश्यकता को ध्यान में रखकर, अपने शरीर के मैल से एक दीर्घकाय सुन्दर पुरुष बनाया और उसके हाथ में एक लाठी थमा दी। पार्वती के स्नानसमय में शिव अन्दर जाने लगे तो उन्हें उसने रोका। शिव के न मानने पर उस पुरुष (= गणेश) ने शिव को पीटा। शिव के गणों के भी हाथपांव तोड़ डाले। शिव की सहायता को पहुँचे ब्रह्मा की भी दाढ़ी-मूँछ नोच कर दुर्गति कर डाली। विष्णु आये तो गणेश उनसे भी जूझ पड़े। तभी मौका पाकर शिव ने गणेश का सिर काट डाला। पुत्र-शिरश्छेद से कुपित पार्वती ने शक्तिसेना उत्पन्न करके प्रलय मचा दिया। तब उससे घबरा कर शिव ने स्वगणों के द्वारा मंगवाकर हाथी के काटे हुए सिर को गणेश के धड़ पर लगा दिया^V।

इन दोनों कथाओं में बिना माता के गर्भ में रहे ही, पार्वती के उबटन के चूर्ण से या शरीर के मैल से गणेशजी के शरीर के बन जाने की (= जन्म की) कथा है।

T ततस्तदा पिनाकधृक् गणेश्वरं वपुर्दधार शङ्करः।

U कदाचिद् गन्धतैलेन गात्रमभ्यज्य शैलजा। चूणैरुद्धर्त्तयामास मलिनान्तरितां तनुम्।
तदुद्धर्त्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम्। ...

कायेनातिविशालेन जगदापूरयत्तदा। विनायकाधिपत्यं च ददावस्य पितामहः
(मं पु० १५४. ५०१-५०५)

V ताडितस्तेन यष्ट्या हि गणेशेन महेश्वरः। ... कृत्वा कोपं गणेशस्तु दण्डेनाताडयत्पुनः।
केषांचित् पाणयश्छिन्ना गणानां पृष्ठकानि च। ...

श्मश्रूण्यवाकिरत्तस्य गणेशं स तदाब्रवीत्। ...

एको बालोऽखिलं सैन्यं लोडयामास दुस्तरम् ॥

जो सृष्टिक्रम के विपरीत होने से असम्भव है। पर स्कन्दपुराण में यह लेख है, कि जब गणेश जी गर्भ में थे, तब सिन्दूर नाम के दानव ने उनकी माता के पेट में प्रविष्ट होकर उनका गला काट दिया और बाद में शिव ने गजासुर का सिर काटकर उस पर लगा दिया। शिव का नाम इसी कारण गजारि या गजान्तक है^W।

एक पुराण में लेख है कि गणेश जी का जन्म पलंग पर गिरे हुए शिव-शुक्र से (बिना गर्भाशय में जाकर रजःसंयोग के) ही हो गया और तुरन्त वे पूर्ण शिशु (बिना गर्भाशय में नवमास रहकर विकसित एवं पुष्ट हुए) के रूप में दृश्य हो गये।

ब्रह्मवैवर्तपुराण (गणपतिखण्ड अध्याय ४) में कहा है, कि पुत्राभाव से पार्वती खिन्न थी। शिव ने कहा — 'जैसे वारों में रविवार श्रेष्ठ है, वैसे ही व्रतों में कृष्णव्रत श्रेष्ठ है। तू कृष्णव्रत का अनुष्ठान कर। इस कृष्णव्रत से ही अदिति ने वामन को और इन्द्राणी ने जयन्त को पाया था। तू भी पुत्रलाभार्थ कृष्णव्रत कर'। शिव से पार्वती ने कृष्णव्रत की दीक्षा लेकर मंगलकलश में गोपियों से घिरे तथा राधा को वक्षःस्थल से चिपकाये हुए कृष्णविग्रह की स्थापना की। वर्षभर कृष्णव्रत करके अन्तिम दिन ब्रह्मभोज किया और रत्न आदि का दान दिया। रात्रि में शिवपार्वती गर्भाधानार्थ रतिगृह में गये। कुछ देर में ही द्वार पर एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धर के कृष्ण आये और भोजन की जोरदार पुकार करने लगे। तब शिवपार्वती को रतिगृह से बाहर आने को विवश होना पड़ा। इसी बीच पलंग पर महादेव का शुक्रपात हो गया। दोनों ने बाहर आकर उस ब्राह्मण को विविध मिष्टान्न-भोजन कराया ही था, कि वे ब्राह्मणरूप-धारी कृष्ण अन्तर्धान हो गये और पलंग पर गिरे हुए शिवशुक्र में घुस कर शिशु रूप हो गये। शिवपार्वती ने अन्दर आकर उस शिशु को देखा तो आनन्दविभोर हो गये। महोत्सव मनाया गया। सभी देवी-देवता वहाँ पधारे। विष्णु ने उस बालक के विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब आदि आठ नाम रखे। पृथ्वी देवी ने उसे चूहा रूपी वाहन दिया। शनि देव आये, पर उनकी आंखे बन्द थीं। पार्वती के पूछने पर शनि देव ने बताया, कि ऋतुस्नाता स्वपत्नी को न देखने पर उसने मुझे शाप दिया हुआ है, कि 'जिसे तुम देखोगे वह नष्ट हो जायेगा'। अतः मैं नेत्र बन्द रखता हूँ। पार्वती के अति आग्रह पर शनि ने नेत्रकोण से शिशु गणेश का मुख देखा, तो गणेश का सिर कटकर गोलोक में विराजमान कृष्ण

बुद्धि के गुण

के पास पहुँच गया। शिशु-रक्त-रंजिता पार्वती बेहोश हो गई। कैलाशपर्वत पर हाहाकार मच गया। तब कृष्ण के दास विष्णु ने पुष्पभद्रा नदी के तट पर सोये हुए एक हाथी का सिर काट कर गणेश के धड़ पर लगा दिया और उस हाथी के धड़ से नया सिर उगा दिया। इस प्रकार 'गणेश' जीवित हो उठे और गजानन (= हाथी के मुख वाले) हो गये Z।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के इस असम्भव लोख पर धर्मशास्त्रमर्मज्ञ एक ज्योतिषाचार्य की समीक्षा देखिये—

“(१) यहाँ लिखा है कि जैसे रविवार सर्वश्रेष्ठ वार हैं, उसी प्रकार कृष्णव्रत सर्वश्रेष्ठ व्रत है, परन्तु आजकल रविवार पापवार माना जाता है, तो क्या कृष्णव्रत भी वैसा ही है? (२) क्या कृष्ण सबसे बड़े देव हैं? (३) क्या कृष्ण के समय वार थे? क्या वार का वर्णन करने वाला यह ग्रन्थ पुराना है? (४) यह पुराण कहता है, कि शिव कृष्ण के भक्त हैं और उनकी गोपी बन गये हैं। गोसाईं जी कहते हैं कि राम अपने अंश से करोड़ों शिवों को बनाते हैं, सीता अपने अंश से करोड़ों उमाएँ बनाती है, शिव राम के दास हैं और राम उन्हें नचाते हैं। ‘उपजहिं जासु अंश ते नाना। विष्णु विरंचि शंभु भगवाना ॥ जग पेखन तुम देखन हारे। विधि हरि शंभु नचावन हारे। उपजहिं जासु अंश गुनखानी। अगनित उमा रमा ब्रह्मानी ॥

भागवत के मत में शिव विष्णु दासों के प्रधान हैं। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार शिव दुर्गा के पुत्र हैं, केवल उन्हीं की उपासना करते हैं तथा गणेश और मुद्गल पुराणों के अनुसार शिव गणेश के पुत्र और दास हैं, तो हम किस पुराण को सत्य कहें? (५)

Z व्रतं तं पुण्यकं नाम वर्षमेकं हरेः कुरु। आवाह्याभीष्टदेवं तं श्रीकृष्णं मंगले घटे। गोपांगनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोज्ज्वलम्। मनसा वरयामास पुत्रं सा च तथाविधम् ॥ व्रतं समाप्य सा दुर्गा दत्त्वा दानानि सस्मिता। रहसि स्वामिना साकं सुष्वाप परमेश्वरी ॥ रेतःप्रतनकाले ऽसौ विष्णू रूपं विधाय च। आ जुहाव महादेवमतिवृद्धोऽन्यायकः ॥ तस्य काकुस्वरं श्रुत्वा शिवस्योत्पिष्टतो मुने। पपात वीर्यं शय्यायां न योनौ प्रकृतेस्तदा ॥ आजगाम रतिद्वारं पार्वत्या सह शङ्करः। ... तल्पस्थे शिववीर्ये च मिश्रितः संबभूव सः। अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः। ... आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः। किं न पश्यसि मां साधो! बालकं वा ग्रहेश्वर। शशाप मामपश्यन्तं ऋतुनष्टा च कोपतः। त्वया दृष्टं च यद् वस्तु मूढ सर्वं विनश्यति ॥ ... सव्यलोचनकोणेन ददर्श स शिशोर्मुखम्। विच्छेद मस्तकं तस्य तस्थौ च नतमस्तकः ॥ विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम्। गजेन्द्रं निद्रितं विष्णुर्वदंशं सुरतश्रमात्। विच्छेद मस्तकं तस्य ... जीवयामास तं पुनः। रुचिरं तच्छिरः कृत्वा योजयामास बालके ॥

यहाँ लिखा है, कि कृष्णव्रत के प्रभाव से जयन्त, ध्रुव, वामन, चन्द्र, बृहस्पति, मनु और शुक्र आदि का जन्म हुआ है, तो क्या ये सब कृष्ण के बाद पैदा हुए हैं? (६) पार्वती ने एक वर्ष तक राधा के शरीर से चिपके कृष्ण का ध्यान किया तो भागवत, महाभारत और हरिवंश पुराण आदि में राधा का नाम एक बार भी क्यों नहीं लिखा? (७) कार्तिकेय सदृश पुत्र के रहते पार्वती पुत्र की भूखी क्यों थी? (८) महाभारत में लिखा है, कि कृष्ण ने शङ्कर पार्वती की उपासना से प्रद्युम्न पुत्र को पाया तो उपासक कौन है? (९) कृष्ण ने शिवसंभोग में बाधा क्यों डाली और उनका वीर्य भूमि पर क्यों गिरवाया? (१०) क्या कृष्ण ही गणेश हैं? (११) वेदों में अम्बिका और शिव की चर्चा है, पर सीता-राम और राधा-कृष्ण की नहीं, तो अम्बिका-शिव इनके पुत्र और दास कैसे हो गये? (१२) इन मिथ्यावादों से हिन्दुत्व का ह्रास होगा या विकास? (१३) यह समन्वय है कि समन्वय की हत्या? (१४) क्या वीर्यपात होते ही रजःसंयोग बिना उससे क्षणभर में बच्चे पैदा होने लगते हैं? (१५) शनि नेत्र बन्द किये रहते हैं, तो शिव के घर कैसे पहुँच गये? (१६) ज्योतिष ने उनकी १, २, ३, ४ पादों की दृष्टि का वर्णन क्यों किया है? (१७) शनि जब शिव के घर आये, तब क्या वे अपनी कक्षा में नहीं थे? (१८) क्या ग्रहों वा देवों का आवागमन किसी ने देखा है? (१९) क्या शनि ग्रहराज हैं? (२०) क्या उसको पत्नी का शाप लगता है? (२१) क्या कोई पत्नी अपने पति को ऐसा शाप दे सकती है? (२२) कृष्ण ने अपने ऐसे भक्त को शाप से बचाया क्यों नहीं? (२३) क्या लाभ हुआ कृष्ण के ध्यान से? (२४) पत्नी ने शाप दिया कि जिसे देखोगे उसका गला कट जायेगा। ऐसी नासमझ नारी के शाप में शक्ति कैसे आ गई? (२५) जिनके गले कट रहे हैं, उनके क्या अपराध हैं? (२६) इस शाप से शनि का क्या बिगड़ेगा? (२७) गणेश का सिर गोलोक में क्यों चला गया? (२८) क्या कृष्ण की आराधना का यही फल होता है? (२९) कृष्ण या विष्णु ने गजराज की भांति गणेश का नया सिर पैदा क्यों नहीं कर दिया? (३०) क्या मानव के गले पर हाथी का सिर लग सकता है? (३१) पृथ्वी देवी ने इतने भारी शरीर वाले लम्बोदर और गजानन गणेश को चढ़ने के लिये चूहा क्यों दिया? (३२) गजमुख गणेश जी वेदमन्त्र कैसे बोलते हैं? क्या हाथी के मुख से शुद्ध उच्चारण हो सकता है? (३३) गणेश जी अपनी दोनों पत्नियों और बच्चों से बात कैसे करते हैं, उन्हें प्यार कैसे करते हैं?"

(आचार्य हरिहर पाण्डेय: ह० ज्यो० ध० पृ० ३४५)

इस विस्तृत विश्लेषण से स्पष्ट हो गया, कि जब गणेश सर्वथा अवैदिक और नाना परस्पर विरोधी कल्पनाओं से कल्पित देवता हैं, तो उनकी मूर्ति का होना और उसके द्वारा दुग्धपान करना सर्वथा असम्भव है। बुद्धि में जब तर्क (ऊह) नहीं होता, तभी मनुष्य ऐसी मिथ्या बातों पर विश्वास करने लगता है।

जड़ में प्राणप्रतिष्ठा—अविवेक

एक महा विवेकहीनता का अन्धविश्वास है, जड़ मूर्ति में प्राणों की प्रतिष्ठा करने व मानने का। यह बुद्धिहीन विश्वास छोटों व बड़ों सबमें फैला हुआ है। कोई पन्द्रह वर्ष पूर्व विसनगर (गुजरात) के वेदभक्त श्री छगनलाल जी चौकसी के साथ मैं सिद्धपुर गया। सुना था कि वहाँ एक वृद्ध वेदज्ञाता शास्त्रीजी रहते हैं। उनके घर जाने पर ज्ञात हुआ, कि वे तो विदेश गये हुए हैं। वहाँ एक नये मन्दिर में भगवान् की मूर्ति की स्थापना होगी। सो प्राणप्रतिष्ठा—अनुष्ठान करवाने गये हैं।

हजारों लाखों मन्दिरों में जो मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं, उनकी स्थापना के समय प्राणप्रतिष्ठा—कार्यक्रम तो अवश्य ही किया गया होगा, किन्तु किसी भी मूर्ति में प्राणवत्ता के लक्षण नहीं दिखते। मनुष्य से लेकर हाथी, शेर, गाय, गधा, बिल्ली, चूहा, तोता, मच्छर और सांप, कछुआ, मछली आदि जो भी प्राणवान् हैं, प्राणी हैं, उनके शरीरों में क्रियाएँ (= हरकत) स्पष्ट दिखाई देती हैं। वे मुख से खाते हैं, पांवों से चलते हैं, मलमूत्र आदि का विसर्जन करते हैं आदि। वे सोते भी हैं, जागते भी हैं। किन्तु इन तथाकथित प्राणप्रतिष्ठा की गई मूर्तियों में आज तक किसी प्रकार की क्रिया दृष्टिगोचर नहीं हुई है। कहने को मन्दिरों में देवमूर्तियों को भोग लगाया जाता है, शयनजागरण आदि कराया जाता है। पर वह मात्र बाह्य दिखावा है। मूर्ति के सामने भोग के लिये रखे गये लड्डू आदि अथवा दूध आदि में से एक कण अथवा एक बिन्दु भी कम नहीं होता है, न मूर्ति का मुख आदि उस समय खुलता है। न मूर्ति सोती है और न ही जागती है। यदि खड़ी स्थापित की जाती है तो खड़ी की खड़ी ही रहती है। यदि बैठे रूप में स्थापित की जाती है, तो अन्त तक वैसी की वैसी ही रहती है। एक इंच भर भी इधर उधर सरकती नहीं है।

‘प्राणप्रतिष्ठा’ में कहते हैं कि हम पण्डित लोग अमुक अमुक मन्त्र बोलकर मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठित कर देते हैं। सो विचारने की बात है, कि प्राण का एक अर्थ है वायुविशेष। जिसके कि शरीर के अन्दर पांच विशेष भेद हैं— प्राण, अपान, व्यान

उदान और समान। सो इनकी स्थापना अर्थात् इनको प्रविष्ट कराना वहीं सम्भव है, जहाँ इनके लिये फेफड़े और नस नाड़ियाँ धमनियाँ आदि बनी हुई हैं। पर इन देवमूर्तियों के अन्दर तो ये सब नहीं हैं। यदि कदाचित् कोई शिल्पी किसी प्रकार गलनली, आमाशय, धमनियाँ आदि से युक्त कोई धातु आदि की मूर्ति बना भी ले, तो भी उनमें स्थूल वायु (= प्राण) भी केवल अमुक मन्त्रों के उच्चारण से प्रविष्ट नहीं कराई जा सकती। उदाहरणार्थ साइकिल आदि के पहिये की ट्यूब में और फुटबॉल आदि के ब्लेडर में मन्त्रोच्चारण से हवा का भरना सम्भव नहीं है, अपितु पम्प आदि से ही सम्भव है। प्रयत्नपूर्वक छिद्र एवं धमनी आदि से युक्त बनाई गई मूर्ति में भी पम्प अथवा यन्त्र से प्राण (= प्राणवायु) भरने पर भी उनमें चेतनता नहीं आ सकती।

क्योंकि चेतनता आती है प्राण = प्राणस्थित आत्मा के प्रविष्ट होने पर। प्राण का दूसरा अर्थ प्राण आदि में संस्थित आत्मा है। जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर सत्रह तत्त्वों वाला है— मन, बुद्धि, पांच तन्मात्राएँ, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच प्राण। इनमें से प्राणों की विशेष महत्ता के कारण ही आत्मा प्राण-प्रधान कह दिया जाता है। इसलिये जब कोई मर जाता है— जब किसी का आत्मा शरीर से निकल जाता है, तो मोटी भाषा में कह देते हैं— उसके प्राण निकल गये, उसके प्राण-पखेरु उड़ गये। वास्तव में जीवात्मा अपने सूक्ष्मशरीर में लिपटा हुआ ही किसी शरीर से निकलता है और सूक्ष्मशरीर से युक्त ही किसी अन्य नये स्थूल शरीर में प्रवेश करता है। मोक्षावस्था और जगत् की प्रलयावस्था को छोड़कर आत्मा को सदा अपने सूक्ष्म-शरीर के अन्दर ही रहना होता है।

और इस सूक्ष्म शरीर-संस्थित आत्मा को किसी स्थूल शरीर में प्रविष्ट कराने का कार्य एकमात्र परमेश्वर के ही बस का है। वह स्थूल शरीर भी नर का शरीरांश (= शुक्र) अथवा नरमादा के शरीरांशों (= शुक्र+शोणित) वाला होना चाहिये (आदिम ऐश्वरी सृष्टि को छोड़कर)। नरशरीरांश अथवा नरनारीशरीरांश रूप स्थूल शरीर को छोड़ कर अन्य अथवा पत्थर आदि के बने शरीर (= शरीर जैसे लगने वाली मूर्ति) में तो परमेश्वर भी प्राण = प्राणस्थित आत्मा = सूक्ष्मशरीर युक्त को प्रविष्ट नहीं कराता है = प्राणप्रतिष्ठा नहीं कराता है, तो एक मनुष्य के द्वारा एक ऐसी प्राण-प्रतिष्ठा कराने की बात मात्र कपोलकल्पना ही है।

यदि किन्हीं का आग्रह हो कि हम तो पत्थर आदि की मूर्ति में भी मन्त्रों द्वारा प्राणप्रतिष्ठा (= चेतनता) कर देते हैं, तो वे अपने प्रियजनों को मरने क्यों देते हैं? उनके

प्राण निकलते ही मन्त्रोच्चारण आरम्भ करके वापिस प्राणप्रतिष्ठा कर दें। सन् १९६८ के सम्भवतः अगस्त मास में ब्यावर के गीता-मन्दिर में चातुर्मास कर रहे, एक शङ्कराचार्य जी को, बैंक के नोहरे के सभास्थल से इन पक्तियों के लेखक ने सार्वजनिक रूप से प्रश्न पुछवाया था कि, 'भगवन्! यदि जड़ देवमूर्तियों में मन्त्रों द्वारा प्राणप्रतिष्ठा सम्भव है, तो लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व आपने गोरक्षार्थ आमरण आरम्भ किये गये अनशन को बीच में ही त्याग क्यों दिया?। यदि आपके प्राणपखेरू उड़ ही जाते, तो गोहत्या तो बन्द हो जाती और उधर भारत भर के प्रसिद्ध प्राणप्रतिष्ठापक पण्डित लोग मन्त्रों द्वारा पुनः आपके निर्जीव शरीर में प्राणप्रतिष्ठा करके आपको सजीव कर देते! इससे स्पष्ट है कि तथाकथित प्राणप्रतिष्ठा वाली बात मात्र कल्पना है और इसीलिये श्रीमान् को अनशन त्यागना पड़ा'। मेरे इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं आया।

यदि जड़मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा (= चेतनता लाने) की बात सत्य हो, तो संसार में एक महान् अभाव की पूर्ति हो जावे। लाखों लोग सन्तान-विहीनता का दुःख भोग रहे हैं। स्वसन्तान का मुख देखने को तरसते रहते हैं। वे जयपुर आदि के शिल्पियों द्वारा सुन्दर संगमरमर के छोटे छोटे शिशु बनवा लें, धनिक लोग चांदी के और धनकुबेर सोने के बनवा लें और पण्डितों को सहस्रों की नहीं लाखों की दक्षिणा देकर उन शिशुमूर्तियों में प्राणप्रतिष्ठा करवा लें। बस हो गया काम। उनके आंगन में शिशुक्रीड़ा आरम्भ हो जायेगी। बिना गर्धधारण और प्रसवपीड़ा के उनकी पत्नी की गोद भर जायेगी। पर क्या कभी यह सम्भव है?

यदि कोई कहे कि 'मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा सामान्य आत्मा की नहीं की जाती, अपितु देवों की आत्मा की अर्थात् श्रीराम की, श्रीकृष्ण की अथवा शिव आदि देवों की प्राणप्रतिष्ठा होती है'। तो ये महान् आत्मा तो स्वकर्त्तव्य करके मोक्षावस्था को प्राप्त हो गये, जिनकी कि वर्तमानता का ज्ञान प्राणप्रतिष्ठापकों को भी नहीं है। और "हठपूर्वक हम तो उन्हें मूर्ति में प्रतिष्ठित कर ही देते हैं। अपने मन्त्रों की शक्ति से" ऐसा कोई कहे तो सैंकड़ों वर्षों से और कहीं कहीं हजार वर्षों से मन्दिरों में श्री राम और श्रीकृष्ण की तथाकथित प्राणप्रतिष्ठा वाली मूर्तियाँ हैं। इन हजार वर्षों में लाखों म्लेच्छों ने गोहत्या, निरपराध जनहत्या, लाखों सती सावित्री सीताओं के सतीत्वहरण का जघन्य कार्य किया है, पर एक भी मूर्तिमान् श्रीराम ने अथवा मूर्तिमान् श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने अमोघ बाणों से अथवा सुदर्शन चक्र से एक भी पापी का नाश नहीं किया।

इस विवेचना से स्पष्ट है, कि जड़ मूर्तियाँ में प्राणप्रतिष्ठा वाली बात निरापाखण्ड है और ऊहापोह बुद्धि वाले लोग इस प्रकार के भ्रमचाल में कभी नहीं फँसते हैं। और प्राणप्रतिष्ठा असिद्ध होने से वे मूर्तियाँ चेतन नहीं अपितु मात्र जड़ वस्तु हैं। अतः उनका पूजना, उनको भेंट चढ़ाना, उनके आगे हाथ जोड़ना, उनसे प्रार्थना करना आदि सब सर्वथा व्यर्थ हैं।

इसी प्रकार किसी की समाधि (= गाड़े गये शव या अस्थिशेषों पर बनाये चबूतरे आदि) अथवा कब्रों, मजारों या मकबरों का पूजना अथवा इन पर कपड़े चढ़ाना, दिया जलाना, फूलों के हार पहनाना, फूल चढ़ाना, धूप, अगरबत्ती अथवा लोहबान जलाना, मिठाई चढ़ाना और बांटना किसी मस्जिद विशेष को खुदा का घर मानना और उधर ही मुंह करके इबादत करना, ताजिये रूपी बड़े-बड़े बुत बनाकर उनको पूजना और पुजवाना इन पर नारियल, किशमिश, बादाम, छुहारे, बताशे, सूतके धागे, इत्र आदि चढ़ाना; इन ताजियों पर अपने प्रार्थना पत्र बांधना, इनसे मनौती मानना पत्थर विशेष को 'पाप से मुक्ति हो जायेगी' इस भावना से चूमना; आदि सब कार्य जड़ पूजा है। तर्कबुद्धि से विहीन लोग ही ऐसे भ्रमगर्त में गिरकर स्वशक्ति-समय-धन का नाश करते हैं”

भूतप्रेत-अविवेक

ऊह (=तर्क बुद्धि) न होने पर मनुष्य जिन पदार्थों की कोई सत्ता नहीं, उनसे भी डरते रहते हैं। पशु-पक्षियों की अपेक्षा मनुष्य अच्छे पदार्थ खाता है। बहुत बढ़िया भवनों में रहता है। नानाविध साधनों से स्वयं को सुखी बनाने का प्रयास करता है। अनेक प्रकार से ज्ञानार्जन करके ज्ञानी विज्ञानी बनता है और शरीरबल और शस्त्रबल से सम्पन्न होकर शूरवीर कहलाता है। किन्तु तथाकथित भूत-प्रेत आदि से भयभीत रहता है। जंगली पशु प्रायः अंधेरे में विचरण करते हैं। गधा जैसा प्राणी बिना किसी भूतप्रेत के भय के अंधेरे में घास चरता है और तो और उल्लू तो निकलता ही अंधेरे में है। बाहर गधे और उल्लू को अंधेरे में भूत का भय नहीं सताता। पर वाह रे अपने आप को ज्ञानी समझने वाले मनुष्य! तुझे अंधेरे में भूत का भय सताता है।

और यह भूत-प्रेत डाकिनी-शाकिनी आदि का कल्पित भय अनपढ़ और पढ़े लिखे, इस देश के और उस देश के, इस धर्म के और उस धर्म के, गौरे और काले

बुद्धि के गुण

सभी सन्तुष्टों में कम या अधिक रूप में व्याप्त है। बस, जिनकी विवेकबुद्धि जागृत है, वही इस काल्पनिक भय से मुक्त हैं।

‘भूत’ शब्द का अर्थ है ‘सत्तावाले पदार्थ’। ईश्वर, जीव और प्रकृति (= परमाणु) रूप ये नित्य सत्ता वाले पदार्थ ‘भूत’ हैं^G। जिस पदार्थ को जितना बनना था, उतना जो बन चुका है; जिस पदार्थ को जितना बनाया जाना था, उतना जो बनाया जा चुका है, निश्चित किये गये अपने रूप में आ चुका है, निर्माणाधीन (= Under Construction) नहीं है, वह भी ‘भूत’ कहलाता है^H। अर्थात् संसार के सब जड़-चेतन पदार्थों का नाम ‘भूत’ है। इसीलिये महर्षि मनु ने कहा था— “भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं”^I। भूत अर्थात् सब जड़ चेतन पदार्थों में से प्राणी (= चेतन पदार्थ रूप भूत) श्रेष्ठ हैं। जड़ पदार्थ रूप जो ‘भूत’ हैं, वे चेतन प्राणी रूप भूत-पदार्थों से अति घटिया कोटि के हैं। इन जड़ पदार्थों के विषय में ‘भूत’ शब्द का प्रचुर प्रयोग होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांच ‘तन्मात्राओं’ को सूक्ष्म ‘भूत’ कहते हैं और पञ्चीकरण-प्रक्रिया के द्वारा इनके स्थूल रूप आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी को पांच ‘महाभूत’ कहते हैं^K।

तीन कालों में से एक काल का नाम भी ‘भूत’ है। जिस काल में अब कार्य हो रहे हैं, वह ‘वर्तमानकाल’, जिस काल में आगे कार्य होंगे, वह ‘भविष्यत् काल’ और जिस काल में पहले कार्य किये गये थे, वह ‘भूतकाल’ कहलाता है^L।

उस बीते हुए काल में = भूतकाल में जो एक विशेष रूप में रहा था और पश्चात् उस रूप में नहीं रहा, उसे ‘भूतपूर्व’ (= पूर्व भूतः = पहले उस रूप में था) कहते हैं। जैसे भूतपूर्व मेवाड़ राज्य, भूतपूर्व प्रधानमन्त्री, भूतपूर्व कश्मीर नरेश आदि।

G भू सत्तायाम्। ‘नपुंसके भावे क्तः’ भू+क्त = भूतम् = भवनम् = होना। भूतं भवनम् अस्तित्वमेव अस्तीति भूतानि। ‘अर्शआदिभ्य अच्’ इति आकृतिगणीयो मत्वर्थीयोऽच्। भूतानि = अस्तित्ववन्तः पदार्थाः।

H भू सत्तायाम्। ‘निष्ठा’ इति भूतकालद्योतकः क्तः।

J ‘भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः’ (मनु० १.१६)। भूतानि प्राणिनो जीवाः (वैज० ४.४.१)

K इमानि च पञ्च महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतीर्षीत्येतानि ऐतरेयो० अ० ३ ‘पञ्चेमानि भूतानि भवन्तीति ह स्माह बालिशिखायनिः पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतीर्षिः’॥ शांखा० ब्रा० ७.२२

L खादो जन्तौ च भूतं क्ली समातीतोचिते त्रिषु (वैज० ६.५.५९)

इस विवेचन से स्पष्ट हो गया, कि किसी भी सत्तावान् पदार्थ को 'भूत' कहते हैं, प्राणीमात्र को 'भूत' कहते हैं, बीते हुए काल को 'भूत' कहते हैं और बीते हुए काल में उस स्वरूप में रहे पदार्थ को भी 'भूत' कहते हैं।

समस्त चेतन प्राणी (= मनुष्य, पशु, पक्षी, जलचर आदि) रूप जो 'भूत' हैं, उनसे मित्रताप्राप्ति की प्रार्थना वेद में की गई है— तदर्थ एक संकल्प लिया गया है— "हे दुःखविदारक परमेश्वर ! मुझे दृढ़ बना । आपकी कृपा से मैं ऐसा सद्व्यवहारी और अन्यो का सहयोगी बनूँ कि सब 'भूत' (= समस्त चेतन प्राणी) मुझे मित्र की दृष्टि से देखें । मैं भी इतना सहनशील, दयालु, प्रेमालु बनूँ कि सब भूतों (= प्राणियों) को मित्र की दृष्टि से देखूँ । एवं च हम सब प्राणी (= हम सब भूत) एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखते रहें^M ।"

इस भूत-विवेचन में कहीं भी भय की गुंजाइश नहीं है । भूतभय का आरम्भ हुआ एक 'भूतयोनि' की कल्पना करने से । लोगों ने अपने अज्ञान से कल्पना कर ली, कि मरने के बाद कई मनुष्य या प्राणी 'भूत' योनि में जाते हैं । वे अदृश्य शरीर धारण करते हैं, उनके पग की एडी आगे की ओर होती है आदि आदि । पर यह कल्पना निरी गप है । विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थों (= वेदों) में कहीं भी तथाकथित भूतों का और उनसे डरने आदि का उल्लेख नहीं है । चारों वेदों में १३१ बार 'भूत' शब्द का प्रयोग हुआ है । पर कहीं तथाकथित भूत प्रेत का जिक्र नहीं है ।

विवेकबुद्धि के अभाव में लोग, जिस रोग आधि-व्याधि का प्रत्यक्ष कारण न दिख सके, बस उसे भूतबाधा समझ लेते हैं, जिस कार्य अथवा घटना का उस समय कोई कारण समझ में न आवे, तो उसे भूत जैसी किसी अदृश्य शक्ति का कार्य मान लेते हैं और भयाक्रान्त हो जाते हैं ।

गुरुकुल के मेरे एक बाल सहपाठी सोमनाथ के बड़े भाई श्री सत्यदेव झुंझुनू जिले में एक गांव से दूसरे गांव पैदल जा रहे थे । रास्ता कच्चा बालू भरा था । चलते चलते उन्हें लगा कि मेरी गर्दन पर कोई रेती (= बालू) फेंक रहा है । वे रुक गये । पीछे देखा । कोई न मिला । फिर चलने लगे, तो फिर से गर्दन पर रेती का प्रहार । कई बार रुककर फेंकने वाले का पता लगाने का प्रयास किया । पर विफल । अन्त में वही भूत का भय लगा ।

M दृते दृहं मा । मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ (यजु० ३६.१८)

बुद्धिनिधि:

बस, घबराकर चप्पलें हाथ में लेकर भागे। गर्दन पर बालूप्रहार बन्द हो गया। जान में जान आई। थोड़ा सुस्ताकर चप्पल पहनकर फिर आगे बढ़े। फिर गर्दन पर रेती आने लगी। थोड़ी विवेकबुद्धि जागृत हुई। चप्पल उतार कर थोड़ा चले। कार्यकारण भाव पर विचार किया “चप्पल पहनकर चलता हूँ, तो रेती पड़ती है, बिना पहने चलता हूँ तो नहीं आती”। समझ गये। चप्पलें थोड़े बड़े साइज की थीं। सो पीछे से बाहर निकली चप्पलों के कारण, रेती उछलती थी और सीधी गरदन पर पड़ती थी। बस, खूब हंसे अपने बहम पर, भूतभय पर और कालान्तर में हमें भी खूब हंसाया।

कभी-कभी वृक्ष आदि प्राकृतिक पदार्थों की हलचल अथवा मनुष्येतर प्राणियों की अज्ञात चेष्टा के कारण भी लोग किसी स्थानविशेष को भूतहा मान बैठते हैं।

इन पंक्तियों का लेखक राजस्थान लोक सेवा आयोग की संस्तुति पर राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग में वरिष्ठ अध्यापक के रूप में नियुक्त होकर १० जुलाई १९६४ को पुष्कर (अजमेर) पहुँचा। ५-७ दिन एक मित्र (श्री पद्मधर शास्त्री) के यहाँ निवास किया और स्थायी आवास के लिये एक साफ सुथरे हवादार मकान की तलाश शुरू हुई। अन्त में छोटी बस्ती में विश्वकर्मा (जांगिड़) मन्दिर के उत्तर में उससे लगी हुई एक हवेली में एक कमरा और रसोई लेने का निश्चय हुआ। यह हवेली अजमेर (धानमंडी) के मालू परिवार की थी और खाली पड़ी थी। पुष्कर के ही एक नापित भाई उसकी देखरेख करते थे। हवेली खूब खुली और हवादार थी।

जब मैं उस हवेली में जाकर कमरे और रसोई का निश्चय कर रहा था, तब मेरे साथ, पहले से पुष्कर में रह रहे, एक वरिष्ठ अध्यापक भी थे। जब वह स्थान मुझे पसन्द आ गया और मैंने उस नापित भाई से, उस मकान में किराये पर रहने की ‘हाँ’ कर दी, तो वे वरिष्ठ शिक्षक मुझ से बोले— “वेदवागीश जी! आप यहाँ कमरा तो ले रहे हो, पर यह हवेली भूतहा है”। मैं— “क्या मतलब?”। वरिष्ठ शिक्षक— “इसमें भूत रहता है। आप देख नहीं रहे, कि इसी कारण, इसमें न मालिक रहता है, न कोई नौकर चाकर। न कोई इसे किराये पर लेता है। इसीलिये इसमें बिजली और पानी का कनेक्शन भी नहीं है”। मैं— “मिश्राजी! भूत कौन से कमरे में रहता है? मैं तो यह कमरा और वह रसोई ली है। इनमें तो नहीं रहता?”। वरिष्ठ शिक्षक (हिरान होकर)— “भूत कोई कमरे में थोड़े ही रहता है”। मैं— “तो क्या वह इसकी छत पर रहता है?”। वरिष्ठ शिक्षक (आश्चर्यचकित से होकर)— “क्या, आप भूत की बात नहीं समझते?”

मैं (थोड़ा मुस्कराते हुए) — “अच्छा! वह भूत। अरे मैं तो जब से बचपन में गुरुकुल में पढ़ने गया, उसके बाद से उस भूत को ढूँढ़ता फिरता हूँ। अब तक कहीं नहीं मिला था। गिल्लंड (जिला चित्तौड़गढ़) की एक बावड़ी में उसका निवास बताया, तो सूचनानुसार जेठमास की भरी दुपहरी में, उसकी तलाश में उस बावड़ी में नहाया। लालसोट (जिला जयपुर) की घाटी पर एक पीपल में उसके ठिकाने का पता लगा तो मुँह अन्धेरे वहाँ तलाशा। पर वहाँ भी न मिला। अब यहाँ सहज ही मिल गया, तो बस, अब काम बन गया।” वरिष्ठ शिक्षक (चौकन्ने से होकर) — “आप भूत का क्या करेंगे?” मैं (हंसते हुए) — “भाई! बात यह है, कि अभी परिवार तो कई मास यहाँ आयेगा नहीं। सभी कार्य मुझे ही करने पड़ेंगे। कपड़े धोना, बरतन मांझना और भोजन पकाना आदि कार्यों में बड़ा समय जाता है, सो बस इस भूत से ये सब कार्य कराऊंगा। कहते हैं, भूत कभी थकता नहीं है। सो खाली समय में वह ऋग्वेद का पाठ करे, इसके लिये रहल पर ऋग्वेदसंहिता रख दूंगा और इस भूत को निर्देश कर दूंगा, कि इतने उच्च स्वर से मन्त्रोच्चारण करे, कि बड़ी बस्ती तक सुनाई देवे। देखिये बारह रुपये में एक आवास भी मिल रहा है और एक अथक सेवक भी! इससे अच्छी क्या बात होगी!”

मेरे कथन को सुनकर उन शिक्षक बन्धु ने अपने माथे पर हाथ पीटा और वे वहाँ से चले गये। मैंने पेशगी दे दी और उस आवास पर अपना कब्जा करके उस हवेली के नीचेवाले विशाल द्वार की कुंजी भी ले ली। पुष्कर नगर में और विद्यालय में शीघ्र यह बात फैल गई, कि ये नये जो संस्कृत-वरिष्ठ-शिक्षक आये हैं, वे दिमाग से क्रेक हैं, कि इन्होंने जानबूझकर भुतहा हवेली में आवास करने का निश्चय किया है। दूसरे दिन विद्यालय पहुँचा, तो अनेक नेत्र विस्फारित होकर मुझे देख रहे थे। कुछ ने “आप उसमें मत रहना। अमुक व्यक्ति वहाँ रहा था, उसका पग टूट गया। अमुक रहा था, वह रोगी हो गया” आदि कहकर मुझे सचेत किया। प्रभु कृपा से बचपन से प्राप्त आर्यसत्सङ्ग के कारण मुझमें तो भूत का कोई बहम था नहीं। उस मकान की सफाई-धुलाई करवाके प्रतिदिनवत् हवन-सन्ध्या का दैनिक कार्य वहाँ भी आरम्भ कर दिया। लोगों ने यह मानकर सन्तोष कर लिया, कि इन्होंने मन्त्रों से भूत भगा दिया। कोई होता तो भागता। वस्तुतः वहाँ कोई न भूत था न पलीत। लोगों को बहम खाता था। उस हवेली से सटे हुए (उत्तरपश्चिम) नोहरे में एक बड़ा खारिये (बिलायती नीम) का बड़ा पेड़ था। जिसकी कुछ शाखाएँ उस हवेली में भी पसरी हुई थी। तेज हवा चलने

पर उन शाखाओं की 'साँय, साँय' ध्वनि अवश्य आती थी। रात्रि के सन्नाटे में लोग इस आवाज से डर जाते होंगे। या फिर पुष्कर में बहुतायत से विचरने वाले लाल मुँह के बन्दरों की वहाँ दिन में यदा कदा धमा चौकड़ी लगती थी। इनके सिवाय वहाँ किसी तथाकथित भूतप्रेत का वास नहीं था। उसकी कहीं कोई सत्ता होती, तो वह वहाँ भी होता!

कभी कभी विरोधी लोग भी शत्रुतावश अथवा ईर्ष्यावश किसी मकान को भूत का डेरा प्रचारित कर देते हैं और अज्ञानी लोग उस बहम से भयभीत हो जाते हैं।

उत्तरप्रदेश के एक कस्बे में एक मालदार लालाजी के दो पुत्रों में बंटवारा हो गया। बड़े भाई ने मकान दुकान आदि अपने पास रखा और छोटे भाई को उनके मूल्य के बराबर के रुपये गिन दिये। छोटे भाई ने थोड़ी दूरी पर अलग से एक बड़ा मकान बनवाया। उसमें ऊपर नीचे बीस कमरे थे। बीच में सुन्दर दालान आदि भी। बड़े भाई के परिवार के कुछ सदस्यों को इससे डाह हो गया। उन्होंने उस मकान में भूत का भय प्रसिद्ध करने के लिये, चुपचाप कभी हड्डियाँ, कभी गंदगी, कभी लाल कपड़े में मरे हुए पशु की टांग आदि लिपटवाकर फिंकवाना शुरू कर दिया और चतुराई से यह अफवाह फैला दी, कि इस नये मकान पर तो किसी भूत ने कब्जा कर लिया है।

अब उस नये मकान में छोटे भाई का परिवार रहने को कैसे जावे? इतना पैसा भी लग गया और मकान खाली पड़ा है। कोई उसमें किराये पर भी रहने को तैयार नहीं। बिना किराये के मुफ्त में भी नहीं। मकानमालिक ने प्रयत्न किया, कि कोई उस मकान में रहने लगे, तो उल्टा मैं उसे कुछ रुपये और दे दूंगा। पर सब व्यर्थ। अन्धविश्वासों में आकण्ठ डूबे हुए लोगों में भूत का भय जो घुसा हुआ था।

शीत ऋतु आरम्भ हुई। लुधियाना से दो पुरुष रोशनलाल और रामलुभाया कम्बल लोही आदि ऊनी माल लेकर उस कस्बे में बेचने आये। दोनों मकान की तलाश में थे। लोगों से पता लगा, कि मकान तो एक बीस कमरे वाला बिल्कुल नया खाली पड़ा है और उसमें रहने का कोई किराया भी नहीं है, बल्कि मकानमालिक ऊपर से कुछ देगा ही। दोनों बड़े खुश हुए, कि क्या चंगी गल है, कैसा सोहणा कस्बा है, जहाँ मकान भी रहने को मिलदा है और ऊपर से रहने का पैसा भी मिलदा है, वाह! वाह! मौज हो गई। लोगों ने बताया कि "पर उस मकान में भूतों का डेरा है"। वे दोनों

पंजाबी कुछ विवेकबुद्धि वाले थे। कई बार सामाजिक सत्सङ्गों में उन्हें प्रवचन सुनने का अवसर मिला था। सो बोले — “वो फिक्र न हों जी! भूत ते साडे दोस्त होंदे हैं”। बस मकानमालिक से चाबी लेकर उस मकान में अपना माल रख दिया। दिन में फेरी लगाकर माल बेचते और रात्रि में वहीं पकाते खाते और विश्राम करते।

एक दिन रात्रि में दो काले तथाकथित भूत किसी प्रकार से उस मकान घुस आये और हू हू करने लगे। दोनों पंजाबियों ने उनसे पूछा कि “भाई! तुम हो कौण?”। वे काले चेहरे बोले— “हम भूत हैं, तुम्हें खाने आये हैं”। दोनों पंजाबी— “अरे! हम तुम्हें हलुआ, खीर, पुड़ी खिलायेंगे”। वे मान गये। दो तीन दिन उन्हें माल खिलाते रहे। वे चेहरे माल खाकर वहाँ से चले जाते। एक रात्रि में उनसे रोशनलाल ने पूछा— “भूतो! तुम दिन में कहाँ चले जाते हो”! वे काले लोग— “हम दिन में भगवान् के पास जाते हैं”। यह सुनकर रामलुभाया बोला— “भूतो! हमारी एक समस्या है। हम दोनों जिगरी दोस्त हैं। हम सदा संग रहते हैं। हम साथ ही जीना—मरना चाहते हैं। पर कठिनाई यह है, कि यह रोशनलाल मुझसे तीन साल बड़ा है और मैं इससे तीन साल छोटा। तुम भगवान् से हमारी समस्या कहना और सिफारिश करना, कि या तो इसकी तीन वर्ष आयु कम कर दी जाय अथवा मेरी तीन वर्ष बढ़ा दी जाय। जिससे हम मरें भी साथ—साथ”। काले लबादों ने हाँ कर दी।

अगली रात्रि में जब वे आये, तो रामलुभाया ने भगवान् से सिफारिश के विषय में उनसे पूछा। वे तथाकथित भूत बात बनाकर बोले— “भाई! भगवान् ने कहा कि आयु कम—अधिक करना हमारे बस की बात नहीं है। हम तो कर्मों के अनुसार आयु देते हैं। सो रोशनलाल की आयु उसके कर्मानुसार रहेगी और रामलुभाया की आयु उसके अपने कर्मानुसार होगी। एक दूसरे के कारण किसी की आयु में हम घटत बढ़त नहीं कर सकते। हाँ, अब उनके अच्छे बुरे कर्मों के अनुसार, आयु में घट—बढ़ हो सकती है। आयु का घटना—बढ़ना, जीना—मरना कर्मों पर आधारित है, भगवान की इच्छा पर नहीं”।

बस, इतना सुनना था, कि रोशनलाल और रामलुभाया ने हाथों में जूते ले लिये और लगे उन भूतों के सिर पर मारने। वे चिल्लाये— ‘हम तुम्हें खा जायेंगे, अभी मार देंगे’। रोशन० और राम० बोले— “जब भगवान् भी हमें कर्मफल के विपरीत मार नहीं सकता, तो तुम्हारी क्या बिसात है, कि तुम हमें मार सको”। यह कहकर उन

२५७
 * भारतीय

पर पूरे जोर से पिल पड़े। मार पड़ी तो भेद खुल गया। काले लबादे फट गये और मुँह पर लगे नकाब गिर पड़े। वास्तव में वे उसी कस्बे के दो बदमाश थे। लोगों से पैसे लेकर ऐसे डराने के स्वांग रचते थे। बस तब से उस मकान में से भूतों के डरे की बात समाप्त हो गई और शीतऋतु बीतने पर मकानमालिक आकर उस मकान में आनन्द से रहने लगा।

कभी कभी घर-परिवार का ही कोई सदस्य अपनी बात मनवाने के लिये चुपचाप ऐसी चेष्टा कर देता है, कि उस अज्ञात चेष्टा के करने वाले का तत्काल पता न लगने पर लोग उसे किसी भूत पलीत का कार्य समझ बैठते हैं। असली करतूती तो घर में होता है और उसकी तलाश आसपास पड़ौस में करने पर भी उसके न मिलने पर, भूत की चेष्टा समझकर परिवार वाले उचित अनुचित अनेक उपाय करने लगते हैं।

लगभग १९६५ ई. सन् की घटना है। अजमेर से १३ मील की दूरी पर 'कड़ैल' नामक ग्राम में एक आर्य स्वर्णकार का परिवार रहता था। चारों पुत्र अपने सत्कर्मों से अपने पिताश्री के यश में वृद्धि कर रहे थे। उनके एक भाई राजकीय सेवा में होने से अजमेर रहने लग गये थे। शेष तीनों भाई एक ही मकान में साथ साथ रहते थे। एक दिन अचानक आंगन में कंकड़-पत्थर आकर गिरे। कहाँ से आकर ये पत्थर गिरे? इसका पता न लग सका। प्रायः रात्रि में और कभी कभी दिन में भी यह घटना होने लगी।

यह परिवार सत्सङ्गी और विवेकबुद्धि वाला था। बहुत चौकसी रखी। पर, पत्थर कहां से आते हैं, इसका पता नहीं लग सका। मैं उन दिनों पुष्कर में ही था। पुष्कर से कड़ैल ७ माइल है। मुझे भी इस घटना का समाचार मिला। उनके छोटे भाई से मैंने कहा— "हो न हो, पत्थर फेंकने वाला कोई आपके घर का ही सदस्य है"। घर का कौन व्यक्ति हो सकता है? एक एक करके सबके विषय में विचार करके देख लिया। किसी पर सन्देह की सुई नहीं रुकती थी। घर के कुछ दुलमुल विचार वाले सदस्यों ने इसे तथाकथित भूतबाधा समझकर पौराणिकों से पाठपूजा भी चुपचाप करवा ली। पर कंकड़ पत्थर वर्षा बन्द न हुई। कुछ मास बाद रहस्य खुल गया। उस परिवार के ही एक १४-१५ वर्ष के भतीजे का ही यह कार्य था। वह कहीं अन्यत्र पढ़ना चाहता था। घर वाले उसे बाहर भेजने को तैयार न थे। उसने उन्हें मनाने के लिये ही यह लम्बा नाटक रचा था।

कभी कभी प्राकृतिक परिस्थितियों 'भौगोलिक असंतुलनों' भौतिक कारणों और विद्युत् आदि के प्रभाव के कारण भी कुछ ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं, जिन्हें साधारणतया लोग किसी भूत-प्रेत आदि की करतूत समझ बैठते हैं। उदाहरणार्थ अन्धमहासागर में उत्तरी अमेरिका के दक्षिणपूर्व में मुख्य भूमि से सटा हुआ फ्लोरिडा प्रायद्वीप है। इसके कुछ दूरी पर स्थित बहामा द्वीप समूह और बरमूडा द्वीप हैं। इन तीनों (फ्लोरिडा + प्यूर्टरिको + बरमूडा) का एक त्रिभुज बनता है, जो 'बरमूडा त्रिकोण' के नाम से कुख्यात है। इस त्रिभुज के अन्तर्गत जाने पर कोई भी जहाज या अन्य यान गायब हो जाता है।

पिछले दो सौ वर्षों में अब तक पचास से अधिक जलयान और बीस से अधिक वायुयान उस त्रिकोण-क्षेत्र में गायब हो चुके हैं। यह क्षेत्र २५ डिग्री से ४० डिग्री उत्तरी अक्षांश और ५५ डिग्री से ७५ डिग्री पश्चिमी देशान्तर रेखाओं के बीच में फैला हुआ है। इस रहस्यमय क्षेत्र का क्षेत्रफल १५ हजार वर्गमील है।

कहा जाता है कि समुद्र के इस भाग में जैसे ही कोई जहाज पहुँचता है, वैसे ही उससे आने वाले रेडियो संकेत टूट जाते हैं और उससे सम्पर्क समाप्त हो जाता है। सन् १९६० में अमरीका की परमाणु शक्ति से चलने वाली 'स्कॉरपियन' नाम की पनडुब्बी इस क्षेत्र से एकाएक गायब हो गई। इससे पूर्व दिसम्बर १९४५ में पांच बमवर्षक वायुयान उड़ते हुए इसमें डूब गये थे। उन्हें बचाने के प्रयत्न में जाने वाला जहाज भी इस क्षेत्र में खिंचकर समुद्र में विलीन हो गया। अब तक इस त्रिभुज क्षेत्र में एक हजार से अधिक जानें जा चुकी हैं।

साधारणतया लोग इसे भूतबाधा वाला क्षेत्र समझते हैं और अतएव वे इसे Devils Triangle (= भूतराक्षस का त्रिकोण) कहते हैं। किन्तु सत्यान्वेषी वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस क्षेत्र में वायु की विशाल तूफानी धाराएँ बहती हैं, जो किसी भी यान को समुद्र में धकेल देती हैं। तथा वहां विशाल महाचुंबकीय क्षेत्र है, जो रेडियो संकेतों को काट देता है। अथवा पराविद्युत् धाराएँ हर वस्तु को अपनी ओर खींच लेती हैं।*

इसी प्रकार अमेरिका के बेल हाउस (Bell House) की भी घटना है। वहाँ किन्हीं विशेष कमरों में जाने पर मनुष्य के मन में ऊटपटांग विचार आने लगते थे और विचित्र

* स्रोत - 'साम जुआन' बालरंग, दैनिक भास्कर २६.१२.१९९८

प्रकार के दृश्यों की कल्पना में वह खो जाता था। सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर पता लगा, कि बिजली की फिटिंग की गड़बड़ी के कारण उन कमरों में बिजली का तीव्र प्रवाह होता रहता था।

कई बार सन्निपात आदि ज्वर तथा उन्माद (Hysteria) की स्थिति में मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो जाता है। मनुष्य की चेतना-प्रतीति क्षीण हो जाती है। उस अर्ध-चेतनावस्था में मनुष्य अनापशनाप बोलने लगता है। अच्छे संस्कारों वाला व्यक्ति उस स्थिति में अपने स्तर से ऊँची बातें करने लगता है। सामान्य या निम्न कोटि के संस्कारों वाला मनुष्य निम्न स्तर की अथवा सुनी सुनाई व्यर्थ की बातें करने लगता है।

सन् १९५९ के लगभग की बात है। चित्तौड़गढ़ गुरुकुल में अवकाश के दिन थे। बड़े ब्रह्मचारी बाहर यात्रा पर गये हुए थे। लगभग २०-२५ छोटे छात्र पीछे रह गये। नित्य के नियमानुसार सायंकाल ५ बजे शौचार्थ पंक्ति बांधकर मेरे निरीक्षण में समीपस्थ जंगली पड़त भूमि में गये। एक वृक्ष के नीचे मैं उनके वापिस लौटने की प्रतीक्षा में बैठा था। दो छात्र निम्बाहेड़ा की ओर की रेललाइन की तरफ से हांफते हुए आये और बोले- “उपाध्यायजी! रेललाइन के उस ओर दो तीन आदमी लाठियों से एक स्त्री को पीट रहे हैं”। “अच्छा! तुम तो गुरुकुल में जाओ और वहाँ जो कोई भी बड़ा व्यक्ति हो, उसे इधर भेज देना”। यह कहकर मैं उस ओर चल दिया। ऊँचे रेल लाइन के मार्ग पर चढ़कर देखा, कि रेलमार्ग से कुछ दूरी पर एक खेत के किनारे एक २२-२४ वर्ष की ग्रामीण युवति भूमि पर उलटी लेटी हुई पाँव भूमि पर पटक रही है और सिर उठाते हुए कुछ बड़बड़ा रही है। उससे लगभग १० गज की दूरी पर दो तीन आदमी हाथ में लाठी लिये खड़े हुए उस स्त्री की ओर देख रहे हैं।

मैंने चिल्लाकर पूछा- “इसको किसने मारा है?”। उन लोगों ने हाथ से इशारा किया, कि इसे किसी ने मारा नहीं है। वे हाथ के सङ्केत से मुझे अपने पास बुलाने लगे। मैं निहत्थे, उनकी ओर जाने न जाने का विचार कर ही रहा था, कि (छात्रों की सूचना पर) उसी समय गुरुकुल के वैद्यराज श्री सत्यकाम जी ‘मुमुक्षु’ वहाँ आ गये। हम दोनों आगे बढ़े उन लोगों के समीप जाने पर, उन्होंने बताया कि इस स्त्री को किसी ने मारा नहीं है। यह हमारे परिवार की ही बहू है। प्रतिदिन लगभग इसी समय इसमें डाकण (= भूतनी) आ जाती है और बड़ा उत्पात मचाती है। अनेक उपाय कर लिये। गंडे ताबीर बंधवा लिये किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।

हमने देखा कि वह महिला उस समय भी "मैं इसे नहीं छोड़ूँगा। मैं इसे खा जाऊँगी"। आदि बड़बड़ा रही थी। वैद्यजी ने उन लोगों से एक लोटे में शुद्ध जल लाने को कहा। वे विश्वासु होकर तुरन्त जल ले आये। वैद्यजी ने जल आने पर मुझे उच्च स्वर से गायत्री मन्त्र का निरन्तर उच्चारण करने को कहा और स्वयं ने हाथ में जल लेकर उस महिला के मुख पर छपाक छपाक जल डालना आरम्भ किया। तीन चार बार जल के जोरदार छींटे पड़ते ही उस स्त्री का धुनता हुआ सिर शान्त हो गया। उसकी आंखें सामान्य हो गईं। उसने अपने वस्त्रों को ठीक किया। वैद्यजी ने उसके जूड़े (= केशपाश) को पकड़ कर झिंझोड़ा और फिर छींटे मारकर आगे से ऐसा नाटक न करने को खबरदार किया। उस स्त्री के वे घर वाले बड़े प्रसन्न हुए और वैद्यजी के प्रति कृतज्ञता के भाव दर्शाने लगे। वैद्यजी ने उनसे गुरुकुल में आकर औषध ले जाने को कहा और हम गुरुकुल की ओर जल दिये।

मार्ग में वैद्यजी ने बताया, कि लोगों को रोगों के विषय में सही जानकारी नहीं है। इसलिये डाकन-भूत-प्रेत समझकर अपना और रोगी का जीवन बेकार करते हैं और संडे मुसंडो के शिकार बनते हैं। इस महिला को उन्माद (Hysteria) का दौरा था। उसी के कारण इसके मस्तिष्क में भारी गर्मी छा गई। तब विक्षिप्तावस्था में वह स्यानों भोषों की सुनी सुनाई बातें दुहराने लगी। चेहरे पर बारबार शीतल जल डालने से और सिर को झटकने से वह दौरा बन्द हो गया और पूर्ण चेतना लौट आई। मैंने पूछा "फिर आपने मुझसे गायत्री मन्त्र का उच्चारण क्यों करवाया था?"। वैद्यजी- "वह तो मनोविज्ञान की बात है। इन सामान्य लोगों को "यह केवल जलप्रयोग से ठीक हो गई" इस बात पर विश्वास ही नहीं होता। इसलिये मन्त्रोच्चारण करवाया गया।

इस प्रकार के मस्तिष्क के रोगों के सही उपचार का ज्ञान न होने पर, लोग किसी स्याने आदि के चक्कर में फंस जाते हैं। ये स्याने आदि स्वार्थवश उनमें भूत-प्रेत आदि का बहम डालकर उन्हें अधिक भयभीत कर देते हैं और उनसे धन आदि लूटते रहते हैं।

बड़ौदा (गुजरात) निवासी श्री मुंशीराम शर्मा (जो मूलतः गुड़गांव-हरियाणा के निवासी हैं) का एक फौजी ऑफिसर मित्र एक बार दो मास की छुट्टी पर हरियाणा के अपने गाँव आया। उस गाँव में एक मियाँ भूत-प्रेत उतारने का धन्धा करता था और लोगों को गंडे, ताबीज बांधता, झाड़ फूंक करता और उनसे खूब पैसा, अन्न,

कपड़ा आदि वसूलता था। हिस्टीरिया (= उन्माद) रोग से ग्रस्त महिलाओं—युवतियों से, भूत-चुड़ैल-डाकण उतारने के बहाने एकान्त में कुचेष्टा भी करता था। पर अन्धविश्वासी गाँव वाले मजबूर थे।

एक दिन उस फौजी अफसर ने उस मियाँ से कहा कि “मियाँ! भूत-वृत्त कुछ नहीं होता, तुम बेकार लोगों को ठगते हो”। मियाँ— “अरे! भूत होता है, हम तुम्हें दिखा सकते हैं, पर उसने तुम्हें मार दिया, तो हमारा जिम्मा नहीं है”। फौजी— “ठीक है, जो होगा सो देखा जायेगा, पर हम देखें भूत कैसा होता है”। मियाँ— “अच्छा, तुम आने वाली अमावस की रात्रि में अमुक खेत में आ जाना। तुम्हें भूत दिखेगा”। फौजी अमावस की रात्रि में दस बजे अपने एक मित्र के साथ, बताये गये खेत पर पहुँच गया। किसी अनहोनी से निपटने के लिये पेंट की जेब में पिस्तोल रख ली थी। फसलें कटे हुए एक मास बीत चुका था। खेत खाली पड़े थे। रात्रि में सिवाय सन्नाटे के कुछ नहीं था वहाँ। थोड़ी देर में दो खेत की दूरी पर अगर्बतियाँ की सी चमक दिखाई दी। साथ ही मियाँ की कुछ अस्पष्ट सी गुनगुनाने की आवाज भी आई। एक मिनट बाद “सावधान! होशियार !! अब भी तुम यहाँ से भाग जाओ। नहीं तो, अभी भूत प्रकट होगा और तुम्हें खत्म कर देगा” यह आवाज आई। यह मियाँ की चेतावनी थी। फौजी और उसका साथी कुछ भयभीत तो हुए, पर डटे रहे। इतने में क्या देखते हैं, कि थोड़ी सी दूर पर खेत के एक किनारे लगी हुई छोटी सी कांटों की बाड़ के पीछे से कोई सफेद सी चीज ऊपर की ओर उठ रही है और वह उठते उठते दस बारह फुट ऊँची हो गई।

फौजी से न रहा गया। पिस्तौल निकाल कर उस सफेद वस्तु पर गोली दाग दी। गोली के धड़ाके के साथ ही एक आवाज आई— “हाय! मर गया। हाय! मियाँ ने मरवा दिया”। इस आवाज के साथ ही वह सफेद चीज भी दिखनी बन्द हो गई। फौजी समझ गया, कि यह सब नाटक किसी मनुष्य के द्वारा ही किया गया है। अपने मित्र के साथ संभलता हुआ आगे बढ़ा। देखता क्या है, कि बाड़ के पीछे एक लम्बी सी सफेद चीज पड़ी है और एक आदमी पड़ा हुआ छटपटा रहा है। फौजी ने डाँटकर पूछा— “तू कौन है? कैसे आया यहाँ? क्या कर रहा था?”। वह आदमी— “साहब! मैं गांव का ही सूरज कुम्हार हूँ। यह मियाँ मुझे हर बार पांच रुपये देता है और दो दसफुटे बांसों के बीच में तीन डंडे लगाकर उस पर एक कपड़े का सफेद खोल चढ़ाकर मैं

भूत का पुतला दिखाता हूँ। हाय! मैं मर गया”। फौजी ने डाँटकर उसे चुप किया और टटोल कर देखा। कहीं कोई घाव वाव नहीं दिखाई दिया। वास्तव में गोली उस कुम्हार के बिल्कुल पास से निकली थी, सो वह घबराहट और भय के मारे “स्वयं को गोली लगी है” ऐसा अनुभव कर रहा था। फौजी उसे पकड़कर गांव में ले गया और सबको उस मियाँ की करतूत से अवगत कराया। मियाँ तो गांव छोड़कर चला ही गया। भूत-पलीत का बहम भी गांव से कूच कर गया।

कभी-कभी भूत में विश्वास करने वाले अथवा बलात् भूत का भय बिठाने वाले लोग चालाकी से कोई न कोई रचना करके भूत की सत्ता पर विश्वास कराने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु लोगों को ऐसे चालाकी करने वालों से सावधान रहना चाहिये।

इंग्लैण्ड के एक नगर के कॉलेज के छात्रावास में रहने वाले छात्रों में से एक साहसी छात्र भूत (Ghost) में विश्वास नहीं करता था। कुछ छात्रों ने उसे भूत दिखाने का वायदा किया। तदनुसार अमुक रात्रि को उस छात्र को अपने कमरे का दरवाजा खुला रखना था। उस साहसी छात्र युवक ने चुपचाप स्वरक्षार्थ पिस्तौल की व्यवस्था कर ली और उसे भरकर अपने सिरहाने रख ली। भूत दिखाने वाले छात्रों को किसी प्रकार से पिस्तौल की भनक लग गई। जब उस साहसी छात्र को कुछ ऊँघ आ गई, तो चुपके से एक छात्र उसकी पिस्तौल उठा लाया और उसकी गोलियाँ निकाल लीं और चुपचाप उस पिस्तौल को उसके सिरहाने रखवा दिया गया। थोड़ी देर बाद एक काला-लबादा ओढ़ा हुआ और मुहँ पर नकाब लगाया हुआ एक तथाकथित भूत बना हुआ एक छात्र उस साहसी के कमरे में प्रविष्ट हुआ और हू SSS हू SSS करने लगा। वह युवक चौंक कर जागा। उसने झट से पिस्तौल उठाई और उस काले लबादे को ललकारा और पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया। पर बेकार। गोलियाँ तो उसमें से पहले ही निकाल ली गई थीं। दो-चार बार पिस्तौल चलाने का प्रयास किया, पर व्यर्थ। मारे भय के वह साहसी छात्र बिस्तर पर गिर पड़ा और हृदयगति रुक जाने से तत्काल मर गया।

उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी, कि कोई मेरी पिस्तौल के साथ छेड़छाड़ कर देगा। फिर उस अर्धजागृतावस्था में वह यह भी अनुमान नहीं लगा सका कि हो सकता है, किसी ने मेरी पिस्तौल में से गोली निकाल ली है। न उसे उस समय

उस पिस्तौल को ही उस काले लबादे वाले पर दे मारने की अथवा उस पर स्वयं ही टूट पड़ने की बात सूझी। सम्भव है साहससम्पन्न और अन्धविश्वासरहित होने पर भी उसके हृदय के किसी कोने में भूत सम्बन्धी थोड़ी सी शंका बनी रही होगी। किन्तु उन दुष्ट छात्रों ने झूठा बहम डालने के लिये कितना क्रूर मजाक उसके साथ किया! इसलिये ऐसे अवसर पर सदा सावधान और रक्षा-साधनयुक्त होकर ही ऐसे दुष्टों का सामना करना चाहिये।

ये तथाकथित भूत-प्रेत और इन भूतप्रेतों को उतारने वाले भी भय-शङ्काग्रस्त सामान्य जन-जीवन में ही अपनी रोटी सेकते हैं। सामूहिक हितकारी अथवा राष्ट्रोत्थान में अथवा राष्ट्र-संकट-निवारण जैसे कार्यों में इनका कोई उपादेय उपक्रम नहीं है।

सन् १९७१-७२ में जब पूर्वी पाकिस्तान (= पूर्वी बंगाल = अब बांग्लादेश) में वहाँ की मुक्तिवाहिनी और पाकिस्तानी जुंटा के बीच संघर्ष छिड़ा और फिर भारत की सेना ने अत्याचारी पाकिस्तानी सेना को ललकारा, तब की बात है।

इन पंक्तियों का लेखक उस समय लालसोट (जिला जयपुर) में सनातन धर्म संस्कृत कॉलेज में प्राचार्य पद पर कार्यरत था। मैंने अपने महाविद्यालय के अध्यापक महानुभावों को एक दिन बुलाकर पूछा— “क्या आप लोग भूत-प्रेत उतारने वालों को जानते हैं?” अध्यापक गण— “जी हाँ, कई हैं”। मैं— “क्या कोई ऐसे भी हैं, जो किसी में भूत प्रविष्ट करा सकें?” अध्यापक— “आप उनका क्या करेंगे?” मैं— “देखिये, हमें भूत प्रविष्ट कराने वाले दो व्यक्ति चाहियें। भारत का प्रतिदिन करोड़ों रुपये आजकल बंगाल-मुक्ति में खर्च हो रहा है और अनेक जीवन भी आहुत हो रहे हैं। सो भूतप्रयोग से इस व्यय और जवानों के व्यर्थ के बलिदान को रोकना है। भूत चढ़ाने वाले को प्रतिदिन का एक हजार रुपये पारिश्रमिक मिलेगा। वह व्यक्ति एक भूत को पाकिस्तानी प्राइम मिनिस्टर जुल्फिकार अली भुट्टो के शरीर में प्रविष्ट करायेगा और दूसरा व्यक्ति दूसरे भूत को पाकिस्तानी सेना के जनरल याह्या खां के शरीर में प्रविष्ट करायेगा। भुट्टो वाला भूत भुट्टो को भारत के साथ मैत्री सन्धि करने को बाधित करेगा और याह्या वाला भूत याह्या के द्वारा तुरत अपनी सेना से हथियार डलवाने की कार्यवाही करेगा। इससे भारत-पाकिस्तान के एकीकरण का मार्ग भी प्रशस्त होगा। सो ऐसे भूतप्रवेशक व्यक्ति का पता बताइये”।

मेरी बात सुनकर पहिले तो अध्यापक बन्धु एक दूसरे का मुख देखने लगे।

फिर बोले “हैं, ऐसा भी कभी सम्भव है?” मैं— “फिर क्या भूत रोगग्रस्त अबलाओं और निर्बल हृदय वाले अज्ञानी जनों को तंग करने का ही काम करता है? वास्तव में ही यदि कोई ‘भूत’ (जैसा कि आप लोगों की धारणा है—) नामक कोई शक्तिशाली एवं अदृश्य योनि है, तो उसका राष्ट्रोपकार में उपयोग क्यों नहीं किया जाना चाहिये”। तब सबने मौन मुद्रा धारण कर ली और बात समाप्त हो गई। असली बात यही है, कि तथाकथित भूत, प्रेत डाकिनी, शाकिनी आदि की कोई सत्ता नहीं है।

एक भेड़चाल और अविद्या के कारण लोग इनके भय से सदा ग्रस्त रहते हैं। बालकपन में बच्चों के मानस पर इन भूत-प्रेतों की निस्सारता के सुसंस्कार डाल देने चाहियें। अतएव साढ़े तीन दशक से भी अधिक समय तक भारत के विविध प्रान्तों के बीहड़ जङ्गलों, अगम्य नदीस्रोतों, पर्वतों, उपत्यकाओं, निर्जन स्थानों, गहरी गुफाओं, मठों, मन्दिरों आदि में योगानुसन्धान एवं योगाभ्यास करने वाले; तथा पश्चात् सहस्रों नगरों और ग्रामों में वेदोपदेश एवं धर्मप्रचार की दुन्दुभि बजाने वाले और नाना मत-मतान्तरों के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध ग्रन्थों की समीक्षा करने वाले अद्भुत वेदवेत्ता महातार्किक योगिराज स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इन भूत-प्रेत आदि के अस्तित्व को नकारते हुए, इनके भ्रमजाल से मानवजाति को बचाने के उद्देश्य से, प्रत्येक मातापिता का यह कर्त्तव्य बताया है, कि वे अपनी पुत्र-पुत्रियों को इस विषय में चेता दें। वे लिखते हैं—

“बालकों को माता (पिता) सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सम्य हों और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न करने पावें। जो जो विद्या धर्म विरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश कर दें, जिससे भूत-प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।

.... अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपातज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत-प्रेतादि धरते हैं। उनका औषधसेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी भङ्गी, चमार, शूद्र, स्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, घागा आदि मिथ्या मन्त्र-यन्त्र बंधवाते फिरते हैं। अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ाकर दुःख देते फिरते हैं”।

(सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास)

‘भाव’-अविवेक

सही दृष्टि से ‘भाव’ शब्द का अर्थ सत्ता, प्राप्ति, विचार, आशय आदि है किन्तु ग्रामीण अंचलों में एक विशेष अर्थ में भी ‘भाव’ शब्द का प्रयोग होता है। किशोर पुरुष अथवा स्त्री द्वारा असामान्य चेष्टा आदि करने को ‘भाव’ कहते हैं। ऐसे व्यक्ति अचानक पहले अचेत से हो जाते हैं, फिर सिर धुनने लगते हैं अथवा शिर या शरीर को दांये बांये घुमाने लगते हैं, कांपने लगते हैं अथवा नाचने लगते हैं। कोई कोई अपने शरीर को किसीवस्तु से पीटने भी लगते हैं। ऐसे व्यक्तियों के विषय में प्रचारित किया जाता है, कि इसमें अमुक देवता आता है। वस्तुतः इनमें से कई तो सन्निपात अथवा हिस्टीरिया आदि से ग्रस्त होने के कारण ऐसा करते हैं और कई मक्कार करके ढोंग करते हैं।

कितने ही तथाकथित देवस्थानों, मन्दिरों, समाधियों अथवा पूजास्थलों पर एक व्यक्ति विशेष को ही ऐसा तथाकथित ‘भाव’ आता है। उन्हें लोग ‘भोपा’ कहते हैं। ऐसे लोग उन स्थानों पर किसी तिथि विशेष को अथवा मेले आदि के दिनों में अपने ऊपर देवता का आना बताकर अथवा ‘भाव’ अवतरित करके नाचने लगते हैं। कोई कोई लोहे की सांकल अपनी पीठ पर पटकते हैं।

यह सब, विवेकबुद्धि से रहित प्रजा को आकर्षित और आतंकित करके स्वमानप्रतिष्ठा बढ़ाने और धन आदि हरने के लिये किया जाता है। ये भोपे ऐसा करने से पूर्व अफीम आदि मादकद्रव्य का सेवन कर लेते हैं, उसके नशे में उन्हें सांकल आदि के पीटने से उत्पन्न पीड़ा का अनुभव नहीं होता है। निरन्तर करने से उन्हें सहेला का कुछ अभ्यास भी हो जाता है। गुजरात प्रान्त में इस सदी के पांचवें तथा छठे दशक में धर्मप्रचार में रत श्री डाह्या भाई ने कई भोपाओं के साथ स्वयं भी अपनी पीठ पर सांकल पटक पटक कर उनके ‘भाव’ आने की पोल खोल दी थी।

‘भाव’ आदि पर बुद्धि के ऊह (विवेक) गुण से वञ्चित अविद्याग्रस्त लोग ही विश्वास करते हैं, बुद्धिशाली लोग नहीं।

‘ग्रहप्रभाव’-अविवेक

कुछ अपूर्ण विद्या वाले और स्वार्थमात्र में रत लोगों ने ‘ग्रहों’ का भारी चक्कर चला रखा है। सामान्य जनता तो क्या, पठित और बहुपठित लोग भी इस चक्कर से भयभीत रहते हैं। विवेकबुद्धि के अभाव में ये लोग, शरीर में कोई रोग पुराना हो गया

हो, व्यापार में हानि हो गई हो, मुकदमें में हार हो गई हो अथवा कोई अन्य क्लेश आ पड़ा हो, तो बस तुरत 'हमारी तो जी! ग्रहदशा ही खराब है, हमारे ऊपर ग्रहदोष लग रहा है' इत्यादि विचारने लगते हैं।

बुध, शुक्र, चन्द्र, मंगल, शनि आदि ग्रह अचेतन जड़ पिण्ड हैं और ये किसी व्यक्ति विशेष पर अलग से कोई प्रभाव पीड़ा अथवा शान्ति रूप में नहीं डालते। इनका गर्मी सर्दी आदि के रूप में प्रभाव होता है, तो पृथिवी के एक पूरे क्षेत्र पर होता है। उदाहरण के लिये— हमारे सौरमण्डल में सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने वाले ग्रहों का क्रम — बुध, शुक्र, पृथिवी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण (= यूरेनस), वरुण (= नेपच्यून) और यम (= प्लूटो) इस प्रकार है। इन ग्रहों के साथ कुछ उपग्रह भी हैं। पृथिवी का एक उपग्रह चन्द्रमा। मंगल के दो, बृहस्पति के सोलह, शनि के तेईस, अरुण (यूरेनस) के सोलह, वरुण (नेपच्यून) के पांच और प्लूटो का एक चन्द्रमा है*। इन मुख्य नौ ग्रहों में बृहस्पति सबसे बड़ा है। पृथिवी की अपेक्षा उसका आकार सवा ग्यारह गुना बड़ा है। कभी कभी ऐसी स्थिति होती है, कि सूर्य के एक ओर पृथिवी और उसी सीध में दूसरी और बृहस्पति होता है अर्थात् बुध, शुक्र और मङ्गल तथा क्षुद्रग्रह अपनी कक्षा में अन्यत्र होते हैं, सूर्य और पृथिवी की सीध में नहीं होते। उस अवस्था में बृहस्पति ग्रह पर पड़ने वाली सूर्य की तीव्र किरणें परावर्तित होकर पृथिवी पर पड़ती है। फलस्वरूप उस समय पृथिवी का जो भाग उस सीध में (= बृहस्पति की ओर) होगा, वहाँ गर्मी बढ़ जायेगी और उस क्षेत्र में रहने वालों को — सभी निवासियों को वह गर्मी प्रभावित करेगी। यदि शीत ऋतु में ऐसी स्थिति बनती है, तो निश्चय ही उस क्षेत्र के वासियों के लिये सर्दी का प्रकोप कम हो जायेगा और ग्रीष्म ऋतु में ऐसा होता है, तो सामान्य से अधिक गर्मी का सामना करना पड़ेगा। पर यह उस भाग के सभी निवासियों के लिये एक समान होगा। किसी पर न हो और किसी पर हो ऐसा नहीं होगा। बस इसी प्रकार का प्रभाव ग्रहों का पृथिवी पर—पृथिवी निवासियों पर होता है।

अतः "अमुक पुरुष, स्त्री या बालक—बालिका पर सूर्य ग्रह अथवा शनिग्रह कुपित है" इत्यादि धारणाएँ कपोलकल्पित और अविवेकजनित हैं। अतएव ग्रहशान्ति हेतु पाठ करवाना, नवग्रह पूजा करवाना, लाल—पीला—काला आदि दान करना अथवा भिन्न भिन्न रंगों के नग (वाली अंगूठियाँ) धारण करना आदि मात्र भ्रान्ति के और कुछ

बुद्धि के गुण

नहीं है। जब ग्रहों का व्यक्ति विशेष पर क्रूर होना ही सम्भव नहीं है, तो उनको शान्त करने की बात व्यर्थ ही है। अतएव मानव समाज को सही दिशा प्रदान करने वाले एक मनीषी ने लिखा है—

“और जब किसी ग्रहग्रस्त ग्रहरूप ज्योतिर्विदाभास के पास जा के वे कहते हैं— ‘हे महाराज! इसको क्या है?’ तब वे कहते हैं, कि ‘इस पर सूर्य आदि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ, तो इसको सुख हो जाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं’।

(उत्तर) कहिये ज्योतिर्वित्! जैसी यह पृथिवी जड़ है, वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं, जो क्रोधि हो के दुःख और शान्त हो के सुख दे सकें?

(प्रश्न) क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुःखी हो रहे हैं, यह ग्रहों का फल नहीं है?

(उत्तर) नहीं, ये सब पाप-पुण्यों के फल हैं।

(प्रश्न) तो क्या ज्योतिष शास्त्र झूठा है?

(उत्तर) नहीं, जो उसमें अङ्क, बीज, रेखागणित, विद्या है, वह सब सच्ची, जो फल की लीला है, वह सब झूठी है” ॥

“(प्रश्न) ग्रहों का फल होता है वा नहीं?

(उत्तर) जैसा पोपलीला का है, वैसा नहीं, किन्तु जैसा सूर्य चन्द्रमा की किरण द्वारा उष्णता, शीतलता अथवा ऋतुवत् कालचक्र के सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रतिकूल सुखदुःख के निमित्त होते हैं। परन्तु जो पोपलीला वाले कहते हैं, सुनो “महाराज! सेठ जी! यजमानो! तुम्हारे आज आठवाँ चन्द्र सूर्यादि क्रूर घर में आये हैं। अढ़ाई वर्ष का शनैश्चर पग में आया है। तुमको बड़ा विघ्न होगा। घर द्वार छुड़ाकर परदेस में घुमावेगा। परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे”।

इनसे कहना चाहिये कि सुनो पोपजी! तुम्हारा और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है? ग्रह क्या वस्तु हैं?

(पोपजी) — दैवाधीनं जगत् सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।

Δ स्वामीदयानन्द सरस्वती कृत सत्यार्थप्रकाश (द्वितीय समुल्लास)

ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम् ॥

देखो! कैसा प्रमाण है— देवताओं के आधीन सब जगत्, मन्त्रों के आधीन सब देवता और वे मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन है, इसलिये ब्राह्मण देवता कहाते हैं। क्योंकि चाहें उस देवता को मन्त्र के बल से बुलाके, प्रसन्नकर, काम सिद्ध कराने का हमारा ही अधिकार है। जो हममें मन्त्रशक्ति न होती, तो तुम्हारे से नास्तिक हमको संसार में रहने ही न देते।

(सत्यवादी) — जो चोर, डाकू, कुकर्मी लोग हैं, वे भी तुम्हारे देवताओं के आधीन होंगे? देवता ही उनसे दुष्ट काम कराते होंगे? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसों में कुछ भेद न रहेगा। जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं, उनसे तुम चाहो सो करा सकते हो, तो उन मन्त्रों से देवताओं को वश कर, राजाओं के कोष उठवाकर अपने घर में भरकर बैठ के आनन्द क्यों नहीं भोगते? घर घर में शनैश्चर आदि के तैल आदि का छायादान लेने को मारे मारे क्यों फिरते हो? जिसको तुम कुबेर मानते हो उसको वश में करके चाहो जितना धन लिया करो। बिचारे गरीबों को क्यों लूटते हों?

तुमको दान देने से ग्रह प्रसन्न और न देने से अप्रसन्न होते हों, तो हमको सूर्यादि ग्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिसको ५ वाँ सूर्य चन्द्र और दूसरे को तीसरा हो उन दोनों को ज्येष्ठ महीने में बिना जूते पहिने तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिस पर प्रसन्न हैं उसके पग शरीर न जलने और जिस पर क्रोधित हैं उसके जल जाने चाहियें तथा पौष मास में दोनों को नंगे कर पौर्णमासी की रात्रिभर मैदान में रखें। एक को शीत लगे दूसरे को नहीं, तो जानो कि ग्रह क्रूर और सोम्य दृष्टि वाले होते हैं।

और क्या तुम्हारे ग्रह सम्बन्धी हैं? और तुम्हारी डाक वा तार उनके पास आता जाता है? अथवा तुम उनके वा वे तुम्हारे पास आते जाते हैं? जो तुममें मन्त्रशक्ति हो, तो तुम स्वयं राजा वा धनाढ्य क्यों नहीं बन जाओ? वा शत्रुओं को अपने वश में क्यों नहीं कर लेते हो?

नास्तिक वह होता है जो वेद ईश्वर की आज्ञा वेदविरुद्ध पोष-लीला चलावे। जब तुमको ग्रहदान न देवे, जिस पर ग्रह है वही ग्रहदान को भोगे तो क्या चिन्ता है? जो तुम कहो कि नहीं हम ही को देने से वे प्रसन्न होते हैं, अन्य को देने से नहीं, तो

क्या तुमने ग्रहों का ठेका ले लिया है? जो ठेका लिया हो तो सूर्यादि को अपने घर में बुलाके जल मरो।

सच तो यह है कि सूर्यादि लोक जड़ हैं। वे किसी को दुःख और न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं, किन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो, वे सब तुम ग्रहों की मूर्तियां हो। क्योंकि 'ग्रह' शब्द का अर्थ भी तुममें ही घटित होता है। 'ये गृहणन्ति ते ग्रहाः' जो ग्रहण करते हैं उनका नाम ग्रह है। जब तक तुम्हारे चरण राजा रईस सेठ साहूकार और दरिद्रों के पास नहीं पहुँचते, तब तक किसी को नव ग्रह का स्मरण भी नहीं होता। जब तुम साक्षात् सूर्य शनैश्चरादि मूर्तिमान् कूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो, तब बिना ग्रहण किये उनको कभी नहीं छोड़ते और जो कोई तुम्हारे पास में न आवे उनकी निन्दा नास्तिकादि शब्दों से करते फिरते हो।"

"जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा, राजा, रंक होते हैं, वे अपने कर्मों से होते हैं, ग्रहों से नहीं। बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़के लड़की का विवाह ग्रहों की गणितविद्या के अनुसार करते हैं, पुनः उनमें विरोध या विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता? इसलिये कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख दुःख भोग में कारण नहीं।

भला ग्रह आकाश में और पृथिवी भी आकाश में बहुत दूर पर हैं, इनका सम्बन्ध कर्त्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं। कर्म और कर्म के फल का कर्त्ता भोक्ता जीव और कर्मों के फल भोगानेहारा परमात्मा है।

जो तुम ग्रहों का फल मानो तो इसका उत्तर देओ, कि जिस क्षण में एक मनुष्य का जन्म होता है जिसको तुम ध्रुवा त्रुटि मानकर जन्मपत्र बनाते हो, उसी समय में भूगोल पर दूसरे का जन्म होता है वा नहीं? जो कहों 'नहीं' तो झूठ और जो कहो 'होता है', तो एक चक्रवर्ती के सदृश भूगोल में दूसरा चक्रवर्ती राजा क्यों नहीं होता? हां! इतना तुम कह सकते हो कि यह लीला हमारे उदर भरने की है तो कोई मान भी लेवे"।

(सत्यार्थ० एकादशसमु)

राशि-फल-अविवेक

राशि और राशिफल का भी हमारे जीवन में भारी दखल है। चाहे बालक का नाम रखना हो, विवाह करना हो अथवा अन्य कोई कार्य करना हो, राशि का विचार आवश्यक माना जाता है। किन्तु बुद्धिपूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है, कि यह राशि-

विचार मात्र कल्पना है। अल्पबुद्धि लोगों द्वारा मध्यकाल में जिनकी स्थापना की गई, वे राशियाँ अब हमारे ऊपर हावी हो गई हैं। इनका वास्तविक ज्योतिष से कोई सम्बन्ध नहीं है। आश्चर्य की बात यह है, कि वेदों की चारों संहिताओं में तथाकथित राशियों का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। 'राशि' यह शब्द वेद में केवल ५ बार आया है। वहाँ इसका सर्वत्र संघ या समूह अर्थ ही है। ऋ० ८.९६.८ में 'संचीभूता मरुतः। अ० ६.१४२.३ में धान्यसमूहाः। ऋ० ६.५५.३ और ऋ० ४.२०.८ में 'धनसमूह। ऋ० ९.८७.९ में 'गोसमूह'। लगध महर्षि प्रोक्त वेदाङ्ग ज्योतिष में राशियों का विवरण नहीं है। वहाँ केवल नक्षत्रों का विचार किया गया है।

“ 'महाभारत' में मेष, वृष आदि राशियों का उल्लेख कहीं नहीं है। वहाँ का सारा कालनिर्देश नक्षत्रों पर है, लिखा है कि जब चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र पर था, उस समय अभिजित् मुहूर्त में युधिष्ठिर का जन्म हुआ— 'ऐन्द्रे चन्द्रसमारोहे मुहूर्तेऽभिजिदष्टमे। दिवा मध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेऽतिपूजिते'। 'गौतम बुद्ध की मृत्यु ई० पू० ४०५ में हुई। बौद्ध ग्रन्थ उसके बाद अशोक के समय तक बने। बौद्धों के त्रिपिटक में राशियों, लग्नों और संक्रान्तियों का उल्लेख कहीं भी नहीं है। उनमें कालनिर्देशन के लिये सर्वत्र नक्षत्रों का ही प्रयोग किया गया है, अतः राशियों के प्रचार का समय महाभारत और अशोक के बाद का है” “सारांश यह है कि भारत में राशियों का प्रचारकाल ई० पू० २००—१४५ वर्ष पूर्व है। राशियों के भारतीय नाम और आकार ग्रीकों के समान है”*।

“आजकल मेष आदि बारह राशियों का सम्बन्ध अश्विनी आदि नक्षत्रों से है। अतः निश्चित है, कि भारत में वैदिक कृत्तिकादि गणना का परित्याग कर अश्विन्यादि गणना का प्रारम्भ हो जाने के बहुत दिनों बाद मेष आदि राशियाँ विदेशों से आई हैं। प्राचीन होती तो कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र मेष राशि में रहते। वेदाङ्ग ज्योतिष और महाभारत आदि में इन राशियों का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इनकी आकृतियाँ आजकल मेष, वृष आदि सरीखी नहीं हैं और प्राचीन काल में रहीं होंगी, यह भी सिद्ध नहीं हो पाता है।”

“इस समय हमारे ज्योतिष के विशाल भवन के आधार हैं विदेशी वार, राशियाँ और उन दोनों से सम्बन्धित लाखों काल्पनिक योग। उनका सम्बन्ध ज्योतिष की

* चिन्तामणि विनायक वैद्य कृत 'महाभारतमीमांसा' पृ.)

♦ आचार्य हरिहर पाण्डेय कृत 'हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र' पृष्ठ २८४

जातक, मूहूर्त, स्वर, शकुन, गणित आदि प्रत्येक शाखा से है। वारों का आकाश कोई सम्बन्ध नहीं है और राशियों की आकृतियाँ आकाश में कभी दिखाई नहीं देती। यदि चार तारों से आकाश में एक चतुष्कोण बनता है और आप उसे मेष कहते हैं तो उसी को वृष और सिंह भी कहा जा सकता है। जिन तारों से सिंह बनता है, उनसे बिल्ली, लोमड़ी, सियार और गधे भी बन सकते हैं, जिनसे नर बनता है, उनसे नारंग भी बन सकती है। अतः तारासमूहों द्वारा बनी मछली, भेंडा, बैल, नर, केकड़ा, बिच्छू आदि आकृतियों द्वारा गुणों की कल्पना हास्यास्पद है"०।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है, कि ये तथाकथित राशियाँ न केवल विदेशी हैं, अपितु ये काल्पनिक भी हैं। फिर एक बात और है। इन राशियों पर विश्वास करने वालों को भी इनके विषय में थोड़ा सा भी चिन्तन नहीं है। प्रायः लग्न निकालने वालों को और उसे मानने वालों को, लग्न के और राशियों के सम्बन्ध में सतही ज्ञान भी नहीं है।

कूछ वर्ष पूर्व जयपुर निवासी श्री ब्रह्मप्रकाश जी गुप्त के पुत्र के विवाहोत्सव में वरपक्ष की ओर से विवाहसंस्कार करवाने का उत्तरदायित्व मुझ पर था। पोलो विकट छविग्रह के सामने की गली में पार्क के पास लड़की वालों के घर पर मैं अपराह्न में पहुँच गया। मैंने लड़की के पिता आदि से पूछा—“संस्कार का समय रात को ११.३० बजे का क्यों रखा है? उस समय सब थके हुए होते हैं। संस्कार में किसी का ध्यान नहीं रहता। कई लोग पुरोहित पर दबाव डालते हैं। ‘पण्डितजी! बस जल्दी करवा देना। Short and Sweet’”। लड़की के पिता उत्तर दे ही रहे थे, कि पीछे से घर की महिलाओं का स्वर गूँज उठा—“अजी! हमारे पण्डित जी ने वही मुहूर्त निकाला है, उसी समय विवाह संस्कार होगा, बस”। मुझे थोड़ी दूर पर एक कमरे में ठहरा दिया गया। मेरे साथ श्री यज्ञप्रिय जी भी थे।

कुछ समय पश्चात् वधू पक्ष के पुरोहित जी पधार गये। शिष्टाचार के अन्तर्गत मैंने संस्कृत भाषा में उनका कुशलक्षेम पूछा। उनके द्वारा हिन्दी भाषा में दिये गये उत्तर से उनके शास्त्रीय ज्ञान का तो अनुमान हो ही गया था। फिर मैंने उनसे रात्रि को ११.३० बजे फेरों का समय रखने का कारण पूछा। पुरोहित जी—“अजी! वृष लग्न उस समय ही है”। मैं—“आपका मतलब वृष राशि से है न? तो इन मेष, वृष आदि को ‘राशि’ क्यों कहते हैं?”। पुरो—“यह तो पता नहीं”। मैं—“इन राशियों के मेष, वृष आदि नाम

० वही, पृ. २८८ - २८९

ही क्यों हैं? हस्ती, व्याघ्र, उष्ट्र आदि नाम क्यों नहीं?" पुरो- "यह भी पता नहीं है"। मैं- "इनमें से कितनों के नाम प्राणियों पर और कितनों के जड़ वस्तुओं पर है?"। पुरो- "मैंने इस पर विचार नहीं किया है"। मैं- "ये बारह राशियाँ अपने सौर-मण्डल (Solar System) के अन्तर्गत हैं अथवा बाहर। और बाहर हैं तो अपनी आकाश गङ्गा - मन्दाकिनी (= Milky Way = galaxy) के अन्दर ही हैं, अथवा उससे बहिर्भूत?"। पुरोहित जी के द्वारा इसके ज्ञान से भी इन्कार करने पर मैं बोला- "पुरोहित जी महाराज! आप जीवन भर लोगों को राशियों से और उनके शुभाशुभ फल से भयभीत करते रहे, पर आपने कभी इन राशियों के अस्तित्व, स्थान आदि के विषय में जानकारी करने का प्रयास नहीं किया" ऐसा कहकर मैंने राशियों के तथाकथित अस्तित्व और नाम आदि पर संक्षेप से प्रकाश डाला। तब पुरोहित जी ने- "छोड़िये आप इस चलझन को, अपने १०.३० बजे ही संस्कार आरम्भ कर देंगे" ऐसा कहकर उस प्रकरण पर पटाक्षेप कर दिया।

राशिअनुसार नामकरण-अविवेक

राशि के इस चक्कर में बालक के जन्मसमय के राशि-नक्षत्र के आधार पर अमुक-अमुक अक्षर (= आद्यक्षर) पर नाम रखने की बात भी विवेकगम्य नहीं है। गृह्यसूत्रादि में राशि के अनुसार किसी अक्षर से नाम रखने का कहीं भी विधान नहीं है।

मनुस्मृति में भी नामकरण प्रसंग में इस राशि-आधार की गन्ध भी नहीं है। जब राशियाँ हैं ही काल्पनिक, तो किसी बात के लिये उनको आधार बनाना व्यर्थ ही है। जब कमठी-स्तनों की सत्ता ही नहीं है, तो उनसे सम्भाव्य दूध को किसी रोगनिवारण का आधार बनाना निरी अविद्या ही है। राशियों के आधार पर जो अक्षर-चक्र प्रचलित है उसे अवकड़ा-चक्र या होड़ाचक्र कहते हैं, पर यह काल्पनिक है और विदेशी (= ग्रीक) भाषा के वर्णमाला के क्रम के आधार पर है। इसलिये राशियों के समान ही यह अवकड़ा चक्र (= होड़ा चक्र) भी विदेशी और कल्पनाप्रसूत है और अतएव अग्राह्य है।

"प्राचीन काल में बच्चा जिस नक्षत्र में पैदा होता था, उसी के देव के नाम से उसका नाम रखा जाता था तथा कुछ अन्य विधियाँ भी थीं। यज्ञ करते समय यजमान का भी उसी नक्षत्रदेव वाला नाम रखा जाता था, किन्तु राशियों के आगमन के बाद ग्रीक

बुद्धि के गुण

भाषानुसारी अवैज्ञानिक अवकड़ाचक्र ने उसका सिंहासन छीन लिया। आजकल इसे होड़ाचक्र भी कहते हैं, पर है यह अवकड़ाचक्र। यद्यपि इसके आगमन के समय भारत में प्रथम नक्षत्र अश्विनी माना जाता था, फिर भी इसका आरम्भकृतिका से होता है। इसमें अभिजित् सहित २८ नक्षत्र माने गये हैं। इसका नाम शतपदचक्र रखा गया है और इसकी रचना में दोघड़िया-चौघड़िया की भांति शिव को भी घसीटा गया है। लिखा है कि यह चक्र शिव-कथित स्वरशास्त्र के अन्तर्गत है, जब कि यह पूर्व-पश्चिम की खिचड़ी है। इसका आरम्भ ग्रीक-वर्णमाला से होता है। ग्रीक-वर्णमाला को 'अल्फाबेट' कहते हैं। उसके प्रारम्भ के चार वर्ण अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा हैं। ये इंग्लिश में ए, बी, सी, डी कहे जाते हैं और उर्दू के अलिफ, बे का भी इनसे सम्बन्ध है। इंग्लिश में सी C से क का काम लिया जाता है। इसमें भी ऐसा ही किया गया है। पाणिनि व्याकरण के १४ प्रारंभिक सूत्र 'अ इ उ ण्' आदि शिवोपदिष्ट माने जाते हैं। चूंकि इस शतपद चक्र में वर्णक्रम इनके विपरीत है, अतः इसका विदेशी होना निश्चित है।"

'संस्कृत साहित्य और ज्योतिष में नक्षत्रों का मुख्य नाम 'ऋक्ष' है*। किन्तु इस चक्र में 'ऋ' स्वर है ही नहीं अर्थात् ऋक्ष शब्द की न कोई राशि होगी न नक्षत्र होगा। इसी प्रकार इस चक्र से ऋ सम्बन्धी ऋषि, ऋत्विक्, कृष्ण, कृशानु, बृहस्पति, भृगु और मृत्युञ्जय आदि नामों की कोई राशि नहीं बन पाती। ग्रीक और इंग्लिश में हमारे महाप्राण वाले अक्षर ख, छ, ठ, थ, फ, घ, झ, ढ, ध, तथा ङ, ज, ण, ष नहीं हैं। इस चक्र में भी ख के अतिरिक्त ये सब एक कोणे में फेंक दिये गये हैं। उनमें स्वर चाहे कितने लगें, नक्षत्र एक रहेगा। जो नक्षत्र प का है, वही पो का। सबसे बड़ा दोष यह है, कि संस्कृत भाषा के स्वभाव के विपरीत इसमें श-स और व-ब को समान मान लिया गया है। संस्कृत में स्वजन-श्वजन, सकल-शकल और वध्यतां-बध्यतां में आकाश पाताल का अन्तर है। इसमें ट और ड को जो महत्त्व प्राप्त है, वह घ, छ, ष, फ को नहीं, अतः इसकी विदेशीयता स्पष्ट है"।

इससे सुस्पष्ट है, कि राशि के आधार पर किसी अक्षर विशेष से नाम रखना अविवेक-जनित है। ऐसे ही बालकों के नाम समाक्षर (= २, ४, ६ अक्षरों वाले) और बालिकाओं के नाम विषमाक्षर (१, ३, ५ अक्षरों वाले) होने चाहियें, यह बात भी पश्चात्कालीन है। मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में ऐसा कोई निर्देश नहीं है। पुराकालीन व्यवहार में भी ऐसा प्रचलन नहीं था। आदित्य, अङ्गिरा, भरत, लक्ष्मण, इक्ष्वाकु, अंशुमान्,

* 'अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं वदृश्रे कुहचिद् दिव्यैः' ऋ. १.२४.१०.

Δ आचार्य हरिहर पाण्डेय कृत 'हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र' पृ. २८९-२९०

गयाति, नाभाग, दिलीप, अर्जुन, नकुल, विक्रमादित्य आदि नामों से यह बात प्रमाणित हो जाती है। सीता, लक्ष्मी, मदालसा, श्रुतिकीर्ति, सरस्वती, गार्गी, वाचकनवी, अरुन्धती आदि नाम भी यही प्रमाणित करते हैं। वास्तविक बात यह है, कि अपने बालकों को जैसा बनाना है, वैसा ही सार्थक नाम रखें ८।

नक्षत्र-अशुभत्व-अविवेक

संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष आदि के समान नक्षत्र भी कालमान हैं। नक्षत्र २८ हैं—कृतिका, रोहिणी, मृगशिराः, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफल्गुनी, उत्तराफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण, श्रविष्ठा (= धनिष्ठा), शतभिषक्, प्रोष्ठपदा (= पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा), रेवती, अश्वयुक् (अश्विनी), भरणी^७। आधुनिक ज्योतिष में 'अभिजित्' नक्षत्र नहीं हि, अतः २७ नक्षत्र माने जाते हैं। वर्तमान में नक्षत्र चक्र का आरम्भ ज्योतिषी अश्विनी नक्षत्र से मानते हैं।

वैदिक वाङ्मय में सब नक्षत्रों को शुभ माना गया है। यजुर्वेद में सब नक्षत्रों को आह्लाद-दायक कहा है^A। ऋग्वेद और अथर्ववेद में उल्लेख है कि नक्षत्रों में प्रेरक तत्त्व (= सोम) विद्यमान है^B। संयमी मनुष्य नक्षत्रों के [ज्ञान के] माध्यम से मोक्ष सदृश सुख को प्राप्त होता है^C। तैत्तिरीय ब्राह्मण में नक्षत्रों को दिव्य तत्त्वों का घर बताया है^D। किन्तु आधुनिक ज्योतिष के स्वार्थी एवं अविद्याग्रस्त ठेकेदारों ने कई नक्षत्रों को तथा नक्षत्रांशों को अशुभ बताकर सामान्य जनता को भ्रमा रखा है। उदाहरणार्थ वे 'ज्येष्ठा' नक्षत्र को अशुभ बताते हुए कहते हैं—“ज्येष्ठा नक्षत्र की प्रारम्भ की छः घटियों में पैदा हुआ पुत्र नानी का घातक होता है तथा आगे के नौ भागों में उत्पन्न शिशु क्रमशः नाना का, मामा का, माता का, अपना, पूरे गोत्र का, कुल का, ज्येष्ठ भ्राता का, ससुर का और सर्वस्व का सर्वनाश कर देता है^E।”

८ नामकरण संस्कार तथा अनेक प्रकार के सार्थक सुन्दर प्राञ्जल नामों के लिये लेखक की 'नामनिधि' पुस्तक से सहयोग लिया जा सकता है।

७ अथर्व १९.७. २-५; ८.१.२।

A समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दः। यं १४.१९

B अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आर्हितः ॥ ऋ० १०.८५.२; अं १४.१.२

C पिपेश नाकुं स्तुभिर्दमूनाः। ऋ० १.६८.५

D देवगृहा वै नक्षत्राणि। तै० ब्रा० १.५.२

E ज्येष्ठादौ मातृजननीं मातृतातं द्वितीयके। तृतीये मातुलं हन्ति मातरं च चतुर्थके ॥
आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत्। सप्तमे कुलनाशः स्यादष्टमे ज्येष्ठसोदरम् ॥
नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वस्वं दशमे तथा ॥ मुं वि० २.५७ पी० धा०

मुहूर्त चिन्तामणि नामक जालग्रन्थ का रचयिता एवं टीकाकर्ता वशिष्ठ और नारद का नाम लेकर लिखता है, कि ज्येष्ठा नक्षत्र में तो अभिचार कर्म अर्थात् मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, ताडन और पशुदमन, किसी को बांधना, आग लगाना, शस्त्रप्रहार करना, विष देना, मदिरा बनाना और झूठ बोलना आदि अशुभ कर्म किये जा सकते हैं, पर शुभ कर्म कभी नहीं G।

कितना अन्याय है ज्येष्ठा के साथ। आश्चर्य यह है कि इससे पूर्व सटे हुए 'अनुराधा' नक्षत्र को तो परम शुभ बताया गया है, और तुरन्त उसके बाद के ज्येष्ठा नक्षत्र पर पूरी गाज गिरा दी।

यह सब क्या है? विवेकहीन प्रजा में आतङ्क फैला कर निज स्वार्थ सिद्ध करना ही इस भ्रान्ति-प्रचार का असली कारण है। यह बात सिद्ध हो जाती है 'ज्येष्ठा' नक्षत्र के अशुभत्व की शान्ति के लिये किये जाने वाले दान-प्रपञ्च से।

मुहूर्त चिन्तामणि (२.५७) में (पीयूष धारा टीका) में ज्येष्ठाशान्ति के लिये लिखा है— "इसकी शान्ति का उपाय यह है, कि कृपणता का परित्याग कर, उदारतापूर्वक वज्र-अंकुशधारी, ऐरावत हाथी पर बैठे इन्द्र की और आठ लोक पालों की सोने की मूर्तियाँ बनवावे। उनकी विधिवत् पूजा करे, सबको दो दो वस्त्र पहनावे, कलशों में सोना आदि छोड़े। जपहोम करावे और इसके बाद आचार्य को ऊपर वाले सब सामान और सुशीला, दुधारू, लाल, सींग, खुर आदि के अलंकारों से भूषिता, दो सुन्दर वस्त्रों से आच्छादिता गौ दे। १०८ ब्राह्मणों को खिलावे, दक्षिणा दे, प्रणाम करे और क्षमा मांगे तो ज्येष्ठा की सब घटियों के दोष समाप्त हो जाते हैं" M।

अब बताइये यदि ज्येष्ठा नक्षत्र अशुभ है, घोर है, तो ब्राह्मणों को सुवर्ण-गों-दक्षिणा देने और भोजन कराने से ज्येष्ठा की क्रूरता कैसे समाप्त हो जायेगी? क्या ब्राह्मण लोग ज्येष्ठा नक्षत्र के सम्बन्धी या एजेंट हैं, जो उसे समझा देंगे? क्या ज्येष्ठा कोई चेतन तत्त्व है, जो ब्राह्मणों को दिये दान आदि को देखकर-समझकर शान्त हो जायेगा?

G तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम्।

बन्धनं दहनं शस्त्रं विषपानासवानृतम् ॥ मु० वि० भाष्य २.८ ॥

M वज्रांकुशधरं शक्रमैरावत-गजान्वितम्। प्रकुर्वीत सुवर्णेन वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥

विधिना पूजयेत्तत्र लोकपालान् गणान्वितान्। आचार्याय गां दद्यात् शुभशीलां पयस्विनीम्। रक्तवर्णां वत्सयुतां सर्वालङ्कारभूषिताम्। वस्त्रयुग्मापिधानामप्यष्टोत्तर-शतान् द्विजान्। तेभ्यश्च दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥

मनुष्यों को चाहिये कि ऊह (= तर्क) बुद्धि से विचारा करे और ऐसे काल्पनिक

श्रान्तिजाल में न फँसे।

मूल नक्षत्र-अशुभत्व-अविवेक

ज्येष्ठा के साथ के मूल को (वास्तव में मूलपञ्चक को) भी आधुनिक ज्योतिषियों ने भीषण नक्षत्र करार दे दिया है। उनका कहना है कि - मूल नक्षत्र की स्थिति में यदि दिन में बालक जन्मे तो उसका पिता मर जायेगा, रात्रि में जन्म लेवे तो उसकी माता मरेगी और यदि प्रातः अथवा सायं सन्धि वेला में जन्मे तो बालक स्वयं मरेगा। इस प्रकार मूल नक्षत्र के चारों चरण अशुभ है Q।" आधुनिक ज्योतिष-ग्रन्थों में मूल नक्षत्र की शुभाऽशुभता के भिन्न-भिन्न उल्लेख हैं। जैसा ज्येष्ठा के विषय में ऊपर बताया गया है, वैसा ही 'मूल' की भीषणता के निवारणार्थ भी लोभी लोगों ने द्रव्य-दान-प्रपञ्च रचा हुआ है।

"रुद्र और नक्षत्रदेवता की एक निष्क (= ४ भर) की सोने की मूर्तियाँ बनवावे, शक्ति कम हो, तो आधा या चौथाई कर दे और शीघ्रता हो, तो कलश पर सोने का मूल्य रख दे। सुवर्ण के स्थान पर चांदी न रखे। ऐसा करने से चांदी सदृश अश्रुबिन्दु गिराने पड़ेंगे। दूसरी धातु की भी मूर्ति न बनावे। सोने में और ब्राह्मण में सब देव बसते हैं, अतः इनके सान्निध्य से सब कष्ट दूर हो जाते हैं। प्रतिमापूजन में दो वस्त्र आवश्यक हैं। कलश, सोना, चांदी, मिट्टी, तीनों के हो सकते हैं। लोकपालों, दिक्पालों, नक्षत्र-देवों और अधिदेवादिकों की पूजा करे, हवन करे, अभिषेक करे। यजमान अब्राह्मण हो तो मेघ-शृङ्ग का धूप दे और सुरा मांसादि नैवेद्य दे। ब्राह्मण हो तो सुरा के स्थान में नमक मिश्रित दूध दे और मांस के स्थान में लवणयुक्त खीर दे। इसके बाद सौ ब्राह्मणों को पायस आदिका भोजन करावे। ... उन्हें दक्षिणा से सन्तुष्ट करे। आचार्य को बछवा के साथ दुधारू गाय, सोने की मूर्तियाँ, वस्त्र, सोना और कलश आदि दे। रुद्रमन्त्र के जापक को रुद्रमूर्ति, कलश, वस्त्र और काला बैल दे R।"

Q दिवा जातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा।

आत्मानं सन्धयोर्हन्ति नास्ति गण्डो निरामयः (मु० चि० २.४४ पी० टी०)

R निष्कमानेन चार्धेन पादेनापि स्वशक्तितः। सुवर्णं सर्वदेवतयं सर्वदेवात्मको द्विजः॥

सुरापैलिकमांसाद्यैर्नैवेद्यैर्भोजनादिभिः। सुरास्थाने द्विजैर्दयं क्षीरं सैन्धवमिश्रितम्॥

पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत्। धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम्॥

निर्ऋतिप्रतिमां वस्त्रकुम्भहेमादि दापयेत्। श्रीरुद्रजापिने दद्यात् कृष्णानडवान् घटादिकम्।

(मुहूर्तचिन्तामणि २.५७ पी० धा०)

बुद्धिनिधिः

कितनी क्रूरता है और ठकुरसुहाती व्यवस्था है! सुरामांसभोजी यजमानों से धन दुहने के हेतु उन्हें खुश करने के लिये शराब-मांस का भी नैवेद्य बता दिया!!

कभी-कभी लोभ-लीला तो पीछे आरम्भ होती है, पहले अज्ञान अथवा अल्पज्ञान के कारण भी अन्धविश्वास आरम्भ हो जाते हैं। ऐसा ही कुछ बेचारे मूल नक्षत्र के साथ हुआ है।

सन् १९५९ की घटना है। इन पंक्तियों का लेखक चित्तौड़गढ़-गुरुकुल में प्रधानाध्यापक था और साथ ही आश्रम (= छात्रावास) का कार्य भी देखता था। उन्हीं दिनों बाहरी दिल्ली के रसूलपुर के एक सज्जन अपने पुत्र को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने लाये। प्रपत्र-पूर्ति आदि सब विधि पूरी हो जाने पर वे सज्जन बोले- "उपाध्याय जी! इस बच्चे का विशेष ध्यान रखना"। मैं- "हमारे गुरुकुल में सब छात्रों को एकसमान खानपान वस्त्रादि दिये जाते हैं, अतः हम किसी एक छात्र के साथ विशेषता का वर्त्ताव नहीं कर सकते"। श्री हरि सिंह- "फिर भी इसका विशेष ध्यान एक दृष्टि से रखना है"। मैं- "वह दृष्टि कौन सी है?" श्री हरिसिंह- "अजी! बात यह है, कि वह बालक 'मूलिया' है अर्थात् इसका जन्म मूल नक्षत्र में हुआ है। हमारे यहाँ मूल नक्षत्र में जन्मे को अशुभ मानते हैं। मूल में जन्मे बालक के कारण परिवार में भारी अनिष्ट हो जाता है। अतः पारिवारिक लोग इससे छुटकारा चाहते हैं। अतः आप इसके लिये कोई मिष्टान्न आदि लावे, तो मत देना और इसे किसी के साथ बाहर मत भेजना" आदि।

संरक्षक जी की बात सुनकर उस बालक की रक्षा के लिये सचेत रहने के संकल्प के साथ ही मेरे मन में यह विचार भी आया, कि मूल नक्षत्र के विषय में लोगों के मन में ऐसी धारणा क्यों है, इसका कोई कारण होना चाहिये। उस समय तो यह बात आई गई हो गई। पर ईशकृपा से इसका समाधान हो ही गया।

अथर्ववेद-संहिता का पारायण करते हुए उसके उन्नीसवें काण्ड के सप्तम सूक्त का पाठ कर रहा था, तो सहसा मैं रुक गया उसके 'अरिष्ट मूलम्' वाक्य पर। भूखे को ढूँढ़ने पर जैसे भोजन मिल जाने से और प्यासे को जैसे पानी मिलने पर प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता उस समय हो रही थी। सारा दारोमदार 'अरिष्ट' इस शब्द पर था। किसी शब्द के प्रकरणानुसार अर्थ न करने और प्रसंग विपरीत अर्थ करने से कैसा अनिष्ट हो जाता है, इसका यह जीता-जागता उदाहरण है। एक ही

शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। संस्कृत में 'हरि' शब्द बारह पदार्थों का वाचक है। हिन्दी में 'सारङ्ग' शब्द से ३६ पदार्थों का बोध होता है। 'धूप' सूर्य की किरणावली को भी कहते हैं और सुगन्धित धूम देने वाली मोटी बत्ती या चूर्ण को भी। 'सैन्धव' का अर्थ घोड़ा भी है और नमक भी। परन्तु इन शब्दों का कहाँ क्या अर्थ होगा यह प्रसंग और प्रकरण पर निर्भर है। कुछ सज्जनों के मध्य भोजन-द्रव्यों के विषय में वार्त्तालाप हो रहा था। एक प्रसंग से एक ने कहा "मैं तो बीस वर्ष से 'सैन्धव' ही खाता हूँ" उसकी बात सुनकर समीप बैठा एक कमसमझ व्यक्ति बोल उठा "अरे राम! आप मांसाहारी हो क्या? घोड़ा भी खा जाते हो?" ऐसे व्यक्तियों की नासमझी पर रोयें या हसैं?

कभी-कभी एक ही शब्द का शास्त्र-भेद अथवा विषयभेद से अर्थ अलग-अलग हो जाता है। 'योग' शब्द का पातञ्जल-योगशास्त्र में अर्थ है 'चित्तवृत्तियों का निरोध', आयुर्वेद में अर्थ है 'नुस्खा' और गणितशास्त्र में अर्थ है 'जोड़'। 'व्यवाय' शब्द से पाणिनीय व्याकरण में व्यवधान का बोध होता है, जब कि आयुर्वेद में यह मैथुन का वाचक है। ठीक यही स्थिति 'अरिष्ट' शब्द की है। 'रिष्ट' शब्द का अर्थ है, हिंसित, क्षतिग्रस्त, चुटिल, परेशान, क्षुब्ध आदि। उसके निषेध में बना 'अरिष्ट' (न + रिष्ट - अरिष्ट)। इस प्रकार 'अरिष्ट' का अर्थ हुआ अहिंसित, अक्षय, पूर्ण, शान्त, शान्तियुक्त आदि। इसीलिये आपटे ने भी अपने कोश में 'अरिष्ट' का अर्थ 'Unhurt, perfect, Complete, Imperishable, Undecaying, Secure, Safe' किया है।

वेदेतरसाहित्य में भी इस अर्थ में 'अरिष्ट' का प्रयोग हुआ है।

यथा 'अरिष्टं' गच्छ पन्थानम् (वाल्मी० रा० १.२४.३)

बस, अथर्ववेद के (१९.७) उपर्युक्त नक्षत्र-सूक्त में अरिष्ट का ऐसा ही अर्थ है- 'शान्तिमय'। मूल नक्षत्र भी हमारे लिये शान्तिमय हो। इस नक्षत्र सूक्त में प्रत्येक नक्षत्र के विषय में ईश्वर से शान्ति की प्रार्थना और कामना की गई है और संकल्प किया गया है, कि हम इन नक्षत्रों के समय को स्वपुरुषार्थ से शान्तिमय, सुखकारक, पुण्यमय बना सकें। यह नक्षत्रविषयक प्रार्थना तथा संकल्प ठीक वैसा ही है, जैसा कि नक्षत्रसूक्त से एक के बाद के (१९.९) सूक्त में 'शान्ता पृथिवी शान्तमन्तरिक्षं शान्ता द्यौः' अथवा यजुर्वेद (३६.१७) में 'द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः' आदि में पृथिवीलोक, अन्तरिक्ष लोक और द्यूलोक के शान्तिमय रहने के लिये प्रभु से प्रार्थना की गई है और इनसे शान्ति, सुख प्राप्त करने का संकल्प किया गया है।

बुद्धि के गुण

नक्षत्रसूक्त में २८ नक्षत्रों की शान्तिमयता—सुखावहता के लिये कुल २३ शब्दों का प्रयोग किया गया है। तो, जैसे अन्य नक्षत्रों की शान्तियुक्तता के लिये सुहव, भद्र, शम्, चारु, पुण्य, सुख आदि शब्द काम में लाये गये हैं, वैसे ही 'मूल' नक्षत्र के लिये 'अरिष्ट' शब्द का प्रयोग किया गया है और जैसा कि ऊपर बताया गया है, परमार्थ में 'अरिष्ट' शब्द का वही भाव है, जो भद्र, शम्, चारु और सुख आदि का है। अब गड़बड़ कहाँ से हुई, सो उसकी जड़ है 'अरिष्ट' शब्द के एक अन्यशास्त्रीय रूढ़ अर्थ को इस सूक्त के 'अरिष्ट' के साथ लगाने से। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक—संहिता के इन्द्रियस्थान (२.१) में कुछ शारीरिक लक्षण दिये गये हैं, जिनके द्वारा मनुष्य कब तक जीवित रहेगा, इसका ज्ञान हो जाता है। दूसरे शब्दों में कितने समय बाद मृत्यु होगी, इस बात का पता लग जाता है। इन लक्षणों (= लिङ्गों) को अर्थात् चिह्नों को वहाँ 'अरिष्ट' कहा गया है। जैसा कि वहाँ स्पष्ट लेख है—

पुण्यं यथा पूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः।

तथा लिङ्गमरिष्टाख्यं पूर्वरूपं मरिष्यतः॥

— जैसे पश्चात्काल में होने वाले (शुभ) फल का पूर्व चिह्न पुण्य होता है, वैसे ही भविष्य में मरने वाले के (शारीरिक) चिह्न को 'अरिष्ट' कहते हैं।

यहाँ गत्यर्थक ऋ धातु से औणादिक इष्टन् प्रत्यय (बहुल—क्रम में) होने पर 'अरिष्ट' बना है। ऋच्छति गच्छति जानाति [वैद्यः] मृत्युकालं येन तत् लिङ्गं लक्षणं चिह्नं वा 'अरिष्टम्'।

अब इस 'अरिष्ट' का चक्कर देखिये। किसी वेदश्रद्धालु आयुर्वेद के जानकार किन्तु व्याकरण और वेदार्थ में गति न रखने वाले व्यक्ति ने श्रद्धावश वेदपाठ करते हुए अथर्ववेद के इस नक्षत्रसूक्त में 'मूल' नक्षत्र के साथ 'अरिष्ट' शब्द को देखा, तो उसने इसे अपना आयुर्वेद का 'अरिष्ट' (= मृत्युसूचक चिह्न) समझ लिया। और बस चल पड़ी अन्धपरम्परा। स्वयं भी अन्ध-विश्वास का शिकार हुआ और लाखों [विवेकबुद्धि-शून्य] लोगों को अन्धविश्वास के सागर में डुबो गया। इसीलिये कहा है "एक ही शास्त्र को पढ़ने वाला शास्त्रीय निश्चय को नहीं जान सकता" A। तथा 'अल्पपठित मनुष्य से वेद भयभीत रहता है, कि यह मुझ पर प्रहार करेगा अर्थात् मेरा अनर्थ करेगा' B।

A एकशास्त्रमधीयानो न गच्छेच्छास्त्र-निश्चयम्। सुश्रुत० ४.७

B बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥ महाभार० १.१.२०४

ऊहापीह (विवेकशक्ति) 'मूल'—अशुभत्व—अविवेक

इस प्रकार स्पष्ट हो गया, कि लोगों की अल्पज्ञता के कारण 'मूल' नक्षत्र को भीषण अथवा अशुभ माना गया है, वस्तुतः अन्य नक्षत्रों के समान वह भी शुभ है और ऐसा ही वेद में संकल्प है।

यद्यपि नक्षत्र—विषयक तथाकथित अशुभता का विषय लम्बा हो गया है, तथापि इस पर प्रकाश डालना आवश्यक हो गया था। अल्पज्ञ, स्वार्थी लोगों द्वारा फैलाये गये इस विषय की भ्रान्ति के कारण समाज ने बड़े-बड़े दुःख पाये हैं और लोगों ने बड़े कष्ट उठाये हैं। इतिहास साक्षी है, कि 'रामचरितमानस' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास का जन्म मूल नक्षत्र में हुआ। प्रचलित अन्धविश्वास और उसके फलादेश के अनुसार^१ उनके पिता आत्माराम दूबे ने अपने इस बालक का मुख नहीं देखा और शैशवावस्था में ही उसे त्याग दिया। तब शिशु तुलसीदास ने जो जो कष्ट सहे, उन्हें उन्हीं के शब्दों (कवितावली—उत्तर—काण्ड) में पढ़िये—

‘पातकी पीन कुदारिद दीन मलीन धरै कथरी करवा है।

लोक कहै विधिहू न लिख्यो सपनेहुं नहीं अपन बरबा है” ॥

‘मातु पिता जग जाई तज्यो विधिहू न लिखी कुछ भाल भलाई।

नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकस लागि ललाई ॥ ५४ ॥

“जायो कुल मंगल बधायो न बजायो मन भयो परितापु पापु जननी जनक को।

बारैत ललात विललात द्वार द्वार दीन, जानत हों चारि फल चारि चनक को” ॥ ७३ ॥

‘जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस खाये टूक सबके विदित बाति दुनीसौ ॥ ७२ ॥

द्वार—द्वार दीनता कही काढ़ि रद परी पांय कियो न सभाषण काहू

दुखहु दुःखित मोहि हेरे। तनु जन्यो तज्यो कुटिल कीट ज्यों माता पिता हू।

मेरो अभाग सकुचत सत्र छुइ छाहूँ।

पुत्र को त्याग देने के बाद तो आत्माराम दूबे का परिवार या वंश [मुहुर्त विन्तामणि कार के अनुसार] सुरक्षित रहना चाहिये था, किन्तु वह तो फिर भी नष्ट हो गया। इससे ज्ञात हुआ कि मूलनक्षत्र में अथवा किसी अन्य नक्षत्र में जन्म लेने या

‘अभुक्तमूलभेभवं परित्यजेतु बालकम्।

समाष्टकं पिताथवा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥ (मु० वि० २. ५४ पी० धा०)

कुछ लोगों के मतानुसार तुलसीदास ज्येष्ठा अन्त में जन्मे। आत्माराम दूबे को तब भी ‘ज्येष्ठा’ के फलादेश — ‘अभुक्तमूलजं पुत्रं पुत्रीमपि परित्यजेत्। अथवाष्टकं तातस्तन्मुखं न विलोकयेत्” (मु० वि० २.६५ भाष्य) के अनुसार स्वपुत्र को त्यागना पड़ा।

बुद्धि के गुण

न लेने से वंश या किसी पारिवारिक जन के नष्ट होने या न होने का कोई सम्बन्ध नहीं है।

ज्येष्ठा और मूल के समान ही अन्य भी कुछ नक्षत्रों को वर्तमान ज्योतिषी तीक्ष्ण, दारुण, क्रूर और उग्र कहते हैं। वे हैं— कृत्तिका, विशाखा, आश्लेषा, मघा, भरणी और आर्द्रा।

यदि सब ज्योतिषियों के विचारों को मिलावें तो उनकी दृष्टि में “लगभग आधे नक्षत्र स्वभावतः अशुभ हैं और जो शुभ हैं, वे भी कुछ वारों और तिथियों से मिलने पर भीषण हो जाते हैं। अशुभ वारों का ही नहीं, शुभ वारों का योग भी उन्हें दारुण बना देता है। गुरुवार शुभ है और फल्गुनी शुभ है, पर दोनों के योग से दग्ध योग बनता है। शुक्रवार और रोहिणी शुभ है। पर उनके योग से भीषण यमघण्ट बन जाता है। १, २, ३, ७, ११ और १३ तिथियाँ शुभ हैं तथा उत्तराषाढा, अनुराधा, उत्तरा, हस्त, रोहिणी और स्वाति नक्षत्र शुभ हैं, पर शुभ-शुभ के योग से वह मृत्युयोग बन जाता है, जो कार्यारम्भ करने वालों को छः मास के भीतर मार डालता है^X।

किन्तु वैदिक वाङ्मय में सब नक्षत्रों को शुभ बताया गया है। अतः विवेकबुद्धि का विकास करके इस प्रकार के भ्रमजाल से बचना चाहिये।

वार-अशुभत्व-अविवेक

आजकल सात वारों का प्रचलन है— सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, शनिवार, रविवार। 'भारत में इस समय वारों का महत्त्व प्रत्येक कालमान से अधिक है और ज्योतिष ने उनके आधार पर शुभाशुभत्व का एक सागर तैयार कर दिया है। संसार में किसी भी अस्तित्व-विहीन काल्पनिक पदार्थ को इतना सम्मान नहीं मिला है, जितना भारतीय के घर में और उसके ज्योतिष में वारों को'। क्षौर-तैलमर्दन-ऋतुस्नान-वीर्यदान करना हो, नूतनवर्ष का फलाऽफल देखना हो अथवा अन्य कोई कार्य हो सबमें 'वारों' का विचार छाया हुआ है। और इस विषय में संस्कृत में तथा हिन्दी में भी सहस्रों श्लोकों और छन्दों वाले अनेक ग्रन्थ लिख दिये गये हैं। मुहूर्त चिन्तामणि, वनमाला (जीवनाथशर्माकृत) आदि संस्कृत में और भड्डरी और भडली आदि संस्कृत तथा हिन्दी में प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थों के अनुसार लोक में अनेक कार्यों के करने के वार और उनके फल निश्चित माने जाने लगे। उदाहरणार्थ —

^X ह° ज्यो° ध° पृष्ठ १४८

कार्य वार→ ↓	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
तैलमर्दन	ज्वर	कान्ति	मृत्यु	लाभ	दरिद्रता	विपत्	लाभ
वस्त्रधारण	जीर्णता	आर्द्रता	शोक	लाभ	ज्ञान	मान	कष्ट
क्षौर	आयुहानि	वृद्धि	हानि	वृद्धि	वृद्धि	वृद्धि	हानि
रजोदर्शन	विधवा	पुत्रहानि	आत्महत्या	कन्याप्राप्ति	पुत्रप्राप्ति	सौभाग्य	पुंश्चली
पुंसवन	पुत्रवती	मृत्यु	पुत्रलाभ	पुत्रनाश	पुत्रलाभ	काकवंध्या	मृत्यु
विद्यारम्भ	सम	जड़ता	मृत्यु	शुभ	शुभ	शुभ	मृत्यु
ऋतुस्नान	रुग्णा	पतिप्रिया	दीना	पुत्रवती	सुखी	पतिप्रिया	क्लेश
वस्त्र का रंग	नीला	चित्र	लाल	पीला	श्वेत	श्वेत	काला

*

इन उपरिलिखित कर्मों के वारों के अनुसार जो फल लिखे हैं, वे मनघडन्त हैं। स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती (पूर्वाश्रम के आचार्य भगवान्देव) कम से कम साठ वर्षों से निरन्तर बिना नागा प्रतिदिन तैलमर्दन करते हैं और अतएव रवि, मंगल, गुरु और शुक्र को भी तैलमर्दन होता है, पर इस कारण न तो उन्हें ज्वर और विपत्ति हुई। दरिद्रता का तो प्रश्न ही नहीं है। धनवान् संन्यासियों में वे प्रमुख हैं। मृत्यु भी उनसे डरती है। आज की तारीख में वे ९० से अधिक की आयु के हैं। रवि, मंगल और शनि को भी लाखों लोग क्षौर करते हैं, उनकी न तो आयुहानि और न किसी प्रकार की अन्य हानि हुई है। लालबुझक्कड़ों ने रजोदर्शन जैसी स्वाभाविक शरीर-प्रवृत्ति को भी वारों में जकड़ दिया है। गुरु और शुक्र को छोड़ के अन्य पांचों वारों में रजस्वला होने के दुष्परिणाम बताये हैं। लाखों स्त्रियों को रविवार को रजःप्रवृत्ति होती है, पर वे विधवा नहीं हुई। शनिवार को रजस्वला होने वाली को व्यभिचारिणी (= पुंश्चली) बताकर तो महा अन्याय ही कर डाला!!

ऐसे ही यात्रा के विषय में भी वारों के आतंक ने आतंकित कर रखा है लोगों को। वशिष्ठ आदि के नाम से 'शकुन' के भी ग्रन्थ रचे हुए हैं। "वसिष्ठ और राजमार्तण्ड का कथन है कि रवि, मंगल, शनि और कृष्णपक्ष का सोम ये चार पापवार हैं। इनमें किसी भी दिशा में पैर न रखें। इनके फल हैं— मार्ग में विनाश, शक्तिक्षय, धननाश,

* स्रोत— हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र (पृ. ८४)

बुद्धिनिधि:

अग्निभय, रक्तविकार, पित्तविकार, दरिद्रता, वध और बन्धन (कारागार) आदि। इनके बाद सोम, गुरु, शुक्र और बुध पूर्वादि चार दिशाओं के दिक्शूल हैं। इस प्रकार हर दिशा में यात्रा के लिये केवल दो वार बच रहते हैं। उनके बाद हैं काल और पाश। उत्तर दिशा से आरम्भ कर वायव्य, पश्चिम आदि में रवि आदि सात वार—काल आते हैं, उनके सामने पाश (= बेड़ी) रहता है और सूर्यास्त होते ही वे उलट जाते हैं। यात्रा और युद्ध में इनका सामने रहना भयंकर है। सामने ही नहीं काल बांये भी अशुभ होता है और पाश दांये भी अशुभ होता है। निश्चित है कि केवल इतने का विचार करने पर आपको यात्रा के लिये एक भी शुभ वार नहीं मिलेगा। कुछ लोग ईशान, आग्नेय आदि चार कोणों में जाते समय दांये बांये वाली दोनों दिशाओं के दिक्शूल से डरते हैं। इसके बाद हैं घातवार और योगिनियाँ। यात्राप्रकरण (११.३४) में तीन प्रकार की भीषण योगिनियों का वर्णन है। तिथि, वार और प्रहरार्ध की तीनों योगिनियाँ दांये और पीछे रहने पर शुभ अन्यथा अशुभ होती है। ... काल और पाश के साथ खण्डराहु, अर्धयामराहु और मुहूर्तराहु भी हैं। ये तीनों भिन्न भिन्न समयों में सब दिशाओं में घूमा करते हैं और यात्रियों को खाते रहते हैं। इन सबों को मानने पर प्रत्येक दिशा और विदिशा यात्रा के लिये भीषण हो जाती है। और कुछ में दो—तीन दोष आ जाते हैं।^G

कैसा कुचक्र चलाया है! ऐसी मिथ्या बातों पर विश्वास करने से ही हमारा देश हजारों वर्षों तक पराधीन रहा है। शक्ति, धन, शस्त्र, सेना होते हुए भी इन अन्धविश्वासों के कारण हम विजय—यात्रा न कर सके और विदेशी आक्रमणकारी हमें पराजित करते रहे, लाखों की संख्या में हमें तलवार के घाट उतारते रहे, हमारी बहू-बेटियों को चीनते रहे, हमें बलपूर्वक विधर्मी बनाते रहे और हमारी संस्कृति को नष्ट करते रहे।

असली बात यह है, कि ये वार हैं ही काल्पनिक। इनका कालमान की दृष्टि से कोई अस्तित्व नहीं है। इन वारों का आकाश से कोई सम्बन्ध नहीं है। आकाश को देखकर अयन, गोल, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि और नक्षत्र बताये जा सकते हैं, पर वार नहीं^W। अयन आदि का सूर्य, चन्द्रमा और आकाश से सम्बन्ध है, किन्तु वारों का किसी से नहीं। ग्रहों के जिस कक्षाक्रम के आधार पर वारक्रम निश्चित किया गया है, वह अवैज्ञानिक अतएव मिथ्या है।

G ह° ज्यो० ध० ४०२ पृष्ठ

W एक अपठित किसान (प्रतिदिन चन्द्रमा को देखने वाला) भी रात्रि में चन्द्रमा को देखकर बता देता है, कि आज अष्टमी, द्वितीया, अमावास्या या पूर्णिमा है। पर अतिसुपठित ज्योतिषी भी मात्र आकाश या आकाशस्थ किसी पिण्ड को देखकर भी वार का निश्चय नहीं कर सकता।

रविवार का सूर्य से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है, इसलिये वह अन्य वारों की

अपेक्षा अधिक गर्म नहीं होता और सोमवार अन्य वारों से अधिक ठंडा नहीं होता, क्योंकि उसका चन्द्रमा से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सात वारों के नाम ग्रहों के आधार पर रखकर इनका बलात् उन ग्रहों से सम्बन्ध जोड़ दिया गया है, जो सर्वथा निराधार है। ये वार जहाँ (= यूरोप में) अस्तित्व में आये हैं, वहाँ सब वारों को ग्रहों के नाम नहीं दिये गये हैं। ट्यूज्डे का मंगल ग्रह से कोई नाता नहीं है। अंग्रजों के युद्ध के देव का नाम टायर था। उसके पास एक भेड़िया था। वह पृथिवी पर सदा आक्रमण किया करता था, उसी की स्मृति में ट्यूज्डे (Tuesday) नाम पड़ा है। वेडन सोने के घर में रहता था। वेन्सडे (Wednesday) उसी के नाम पर है। उत्तर यूरोप वासियों का सबसे बलवान् देव थर्स था। वह हाथ में हथोड़ा रखता था। उसी के कारण थर्सडे (Thursday) नाम पड़ा। सौन्दर्य की देवी फ्रेया वार्डन की पत्नी थी, उसी की स्मृति में फ्राईडे (Friday) नाम रखा गया। इससे स्पष्ट है कि ट्यूज्डे, वेन्सडे, थर्सडे और फ्राईडे का मंगल, बुध, गुरु और शुक्र ग्रहों से कोई नाता नहीं है, किन्तु हमारे यहाँ ग्रहों से वार बलपूर्वक जोड़ दिये गये हैं और पूरे वर्ष का भविष्य उन्हीं से बताया जाता है।

प्राचीन भारतीय तिथि और नक्षत्र (= चन्द्रमा का अमुक अमुक नक्षत्र की सीध में होना) आदि सभी कालमान वास्तविक प्राकृतिक आधारों (= चन्द्रकला-क्षयवृद्धि तथा चन्द्रगति) पर अवस्थित थे। कोई काल्पनिक कालमान नहीं था। अतएव राशियों के समान इन वारों का भी प्राचीन वैदिक साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं है। रविवार, सोमवार आदि के सप्ताह का भी कहीं नामोनिशान नहीं है। वेद में दिन के लिये 'वासर' शब्द का प्रयोग तो हुआ है^M। पर कहीं 'वार' शब्द का नहीं। वेद में जहाँ भी वार शब्द आया है, वह वरणीय अन्न, प्रदेश, धन, तेज आदि अर्थों में अथवा अन्धकार आदि अर्थों में आया है^N। पर कहीं भी इन सप्ताह वाले वारों के लिये नहीं आया। रामायण (वाल्मीकीय) तथा महाभारत आदि इतिहास के ग्रन्थों में भी इन वारों का उल्लेख नहीं है। यूरोप आदि पश्चिम देशों में भी ईसा की दूसरी शताब्दी के बाद सप्ताह (Week) का प्रचलन हुआ। मिस्र में इसका आरम्भ हुआ और यूनान में ईसवीय प्रथम शताब्दी में इसको जानने लगे। अतएव 'ओल्डटेस्टामेंट और न्यू टेस्टामेंट' (= बाइबल) में भी

^M आदित्यलस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम्। परो यदिध्यते दिवा ॥ ऋ० ८.६.३०

^N वरणीय अन्न ऋ० १.१२८.६; वरणीय प्रदेश ऋ० १.१५१.५; वरणीय धन ऋ० ५.१६.२

वरणीय तेज ऋ० १०.७४.२; आवरक अन्धकार ऋ० ९.११०.६

इन वारों के नाम नहीं हैं। भारत में इन वारों का आगमन पर्याप्त पश्चात् काल में हुआ। वारों के फल बताने वाले ज्योतिष ग्रन्थों में तो इन वारों का उल्लेख सातवीं शताब्दी के बाद हुआ है। अतएव उनमें मोहरम के आरंभ का फल वारों से जोड़ा गया है। जैसा कि भडली के पदों में—

जो मोहरम रविवारे होय दूध दही बहु घर में होय।

जो मोहरम शशिवारे होय बहुत रोग नर नारिहि होय।

भौमवार जो मोहरम होय बहुत अकाल जगत में होय।

इस विवेचन से स्पष्ट हो गया, कि ये साप्ताहिक वार अवैज्ञानिक और अप्राकृतिक तो हैं ही, साथ ही अभारतीय अर्थात् विदेशी हैं और अपनी मूर्खता से हमने इनको अपने गले चिपटा रखा है और इनका भारी दुर्गम जाल ज्योतिष के नाम पर रच रखा है।

कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो हर उस वस्तु को भी अपनी (= भारतीय = वैदिक) सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, जो चाहे कितनी ही काल्पनिक और अग्राह्य हो। उदाहरणार्थ स्वामी करपात्री जी लिखते हैं—

“कुछ लोग कहते हैं, कि वेदों में और महाभारत में वारों और राशियों के नाम नहीं है, पर बात ऐसी नहीं है। ऋग्वेद में लिखा है कि एक अश्व के सात नाम हैं—‘एको अश्वो वहति सप्तनामा’। इस मन्त्र में सात वारों का निर्देश है। ‘देव्यथर्व शीर्ष’ में भौमाश्विनी शब्द आया है। इससे स्पष्ट हो जाता है ऋग्वेद में मंगलवार है। इसी प्रकार महाभारत में अयन, बिषुव, षडशीति नामक पर्वों का उल्लेख है। वह १२ संक्रान्तियों का सूचक है। वृद्धवशिष्ठ स्मृति में भी ये नाम हैं। हेमाद्रि नामक ग्रन्थ के दानखण्ड में महाभारत का एक श्लोक उद्धृत है। उसमें लिखा है, कि सोमवार या भौमवार या गुरुवार से युक्त अमावस्या पुष्करपर्व होता है”S।

“शंकायें—(१) एक अश्व के सात नाम हैं, तो हम सात अश्व क्यों मान लें? ईश्वर के अनेक नाम हैं, तो क्या हम अनेक ईश्वर मान लें? कामदेव के २० नाम हैं, तो क्या २० कामदेव हैं? (२) सात अश्व सात वार कैसे हो गये? (३) वेदों को सात वार और नव ग्रह मान्य थे, तो उन्होंने सात वारों के स्पष्ट नाम और नव ग्रहों के नव मन्त्र लिख क्यों नहीं दिये? (४) ग्रह नव हैं तो वार सात ही क्यों? (५) सात शब्द के

S

कितने अर्थ होंगे? सात अश्व, या सात वार, या सात छन्द, या सात होता, या सात ऋषि, या सात स्वर, या सात पुरियाँ, या सात चक्र, या सात लोक? सत्य यह है कि 'सप्तनाम' शब्द सूर्यरश्मि के सात रंगों का द्योतक है। (६) महाभारत का वारों सम्बन्धी जो श्लोक हेमाद्रि ग्रन्थ में लिखा है, उसे क्या आप महाभारत में दिखा सकते हैं? (७) आप 'देव्यथर्वशीर्ष' में भौमवार दिखाते हैं, पर ये नये ग्रन्थ हैं। हमारे देश में उपनिषदों और अथर्वशीर्षों की बाढ़ आई है। प्राचीन दस उपनिषदों को देख कर अब लगभग ३०० बन गई हैं। कण्ठी, माला, भस्म, रुद्राक्ष, सीता, राधा की ही नहीं, अल्ला की भी उपनिषद् बन गई है। अथर्वशीर्षों की भी यही स्थिति है। क्या देव्यथर्वशीर्ष अथर्ववेद से सम्बन्धित है? (८) क्या अथर्ववेद में भौमाश्विनी या भौमवार का कहीं वर्णन है? सत्य यह है, कि वारों का सम्बन्ध न वेद से है, न महाभारत से, न आकाश से, न शुभाशुभत्व से। वह एक अभारतीय कल्पना है^T।

इन काल्पनिक वारों का प्रचलन हमारे व्यवहार में इतना अधिक हो गया है, कि बड़े बड़े महातार्किक मनीषियों के ग्रन्थों में भी इन्होंने अपना स्थान बना लिया है^O।

इस लम्बे विवेचन का तात्पर्य यही है, कि इन अप्राकृतिक अवैज्ञानिक अतएव काल्पनिक और विदेशीय सप्ताह वारों और उनके फलों के भ्रमजाल में वे ही व्यक्ति नहीं पड़ते जो विवेकशील ऊहाबुद्धि सम्पन्न हैं।

मुहूर्त-शुभाशुभत्व-अविवेक

परमार्थ में तो 'मुहूर्त' शब्द एक कालमान का वाचक है। जैसे एक अहोरात्र में ६० घटी होती हैं, वैसे ही ३० मुहूर्त होते हैं। तदनुसार एक मुहूर्त ४८ मिनट का होता है। वेद में दो स्थानों पर मुहूर्त शब्द आया है और दोनों स्थलों पर वह कालखण्ड का ही वाचक है^P। पर फलित ज्योतिष के प्रभाव से आजकल सामान्य व्यवहार में किसी कार्य के लिये जिज्ञास्य शुभ समय को 'मुहूर्त' शब्द से जाना जाता है।

^T हं ज्यो० ध० (आचार्य हरिहर पाण्डेय) पृ० २९१.

^O चक्षुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले।

अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥१०॥

बिन्दुवेदाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले।

त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम् ॥ ११ ॥ संस्कार० आरम्भिक श्लोक

^P 'रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ॥ ऋ० ३.३३.५

'त्रिर्यद् दिवः पति मुहूर्तमागोत्' ॥ ऋ० ३.५३.८

इस समय मुहूर्त नाम से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ मिलते हैं— जैसे 'मुहूर्त चिन्तामणि' मुहूर्त मार्तण्ड, मुहूर्तगणपति, मुहूर्तकल्पद्रुम और मुहूर्तसिन्धु। पर इनका वैदिक मुहूर्तों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

किसी संस्कार अथवा कार्यविशेष को करने के लिये 'मुहूर्त' देखना दिखवाना निस्सार है और विवेकबुद्धि से रहित लोगों को भ्रमा कर उन्हें आतंकित करके स्वार्थ-साधन की लीला मात्र है। किसी आगामी कार्य को करने के लिये वर्षा, सरदी, गर्मी, स्थान, परिस्थिति तथा स्व-पर-स्वास्थ्य आदि को देखकर समय निश्चित करना तो बुद्धिग्राह्य होने से उचित है। किन्तु इनको न देखकर पञ्चाङ्ग पत्री आदि के अनुसार तथाकथित ग्रहगति के आधार पर किसी कार्य का मुहूर्त (=शुभ समय, निर्दोष समय) निकालना अन्धपम्परा है। मुहूर्त-सम्बन्धी जाल इतना विस्तृत है, कि तदनुसार तथाकथित शुभ मुहूर्त निकलना तो असम्भव सा है।

"ज्योतिष शास्त्र में मुहूर्त सम्बन्धी, अपशकुन सम्बन्धी और जन्मकुण्डली से सम्बन्धित दोष कई सहस्र हैं और उनके शान्तियाग भी अगणित हैं। उनमें से कुछ बहुप्रचलित दोष ये हैं— हरिशयन, जलशयन, भूमिशयन, अग्नि का अभाव, स्त्री ऋतु, क्षय संवत्सर, खलमास, मलमास, क्षयमास, विभिन्न कर्मों में वर्जित मास, कृष्णपक्ष, क्षयतिथि, वृद्धतिथि, रिक्ता तिथि, अमावस्या, क्षीणचन्द्र, पूर्णिमा, दग्धतिथि, शून्यतिथि, कुछ स्वजनों की मृत्युतिथि, मन्वादि युगादि तिथियाँ, पितृपक्ष, होलाष्टक, शुक्र गुरु बुध भौम का अस्त, वक्रत्व, अतिचार, तिथिगण्डान्त, नक्षत्रगण्डान्त, लग्नगण्डान्त, भद्रा, अन्य अशुभ करण, विषतिथि, अधमतिथि, विषघटियाँ, अशुभ वार, वारों से उत्पन्न अनेक अशुभ योग, शूल, व्याघात, गण्ड, अतिगण्ड, व्यतीपात, वैधृति, विष्कम्भ, मृत्यु, मृता, यमघण्ट, कालदण्ड, राक्षस, परिघ, मुसल, उत्पात, वज्र, ध्वांक्ष, धूम, क्रकच, दग्ध, हुताशन, विष, अशुभ मुहूर्त 'दोघड़िया' चौघड़िया, संमुख शुक्र बुध भौमादि, खण्डराहु, मुहूर्तराहु, राहु के अनेक दोष, प्रश्न दोष, सैकड़ों वैधव्य योग, वार शूल, तिथि-शूल, स्वरदोष, मृतपक्ष, महाडल, भ्रमण, हिम्बर, घबाड़, घातचन्द्र, घाततिथि, घातलग्न, घातवार, घातयोग, घातगृह, योगिनी, कालपाश, वेध, पारिघ दण्ड, लत्तापात, महापात, जामित्र, कर्तरी, खार्जूर, उपग्रह, कालवेला, कुलिक, कण्टक, गणनादोष, लग्नादिदोष, गोचरदोष, संक्रान्तिदोष, दशयोग, विंशोपका, पंगु-अन्धकाण-बधिरलग्न, शून्यराशि, शून्य लग्न, दग्ध लग्न, रजोदर्शन के दोष,

त्रीतरदोष, सिंहस्थ गुरु, मकरस्थ गुरु, गुर्वादित्य, १३ दिन का पक्ष, अशुभ दन्तोत्पत्ति, चन्द्रादिग्रहचारभय, धूमकेतु, उल्का, इन्द्रधनुष, इन्द्रध्वज, परिवेष, खंजन, गन्धर्वनगर, अगस्त्य और सप्तर्षिचार आदि के पचासों भय, अंगस्फुरण, पल्लीपलन, अशुभ छींक, अगणित अपशकुन और सामुद्रिक शास्त्र में बताये कुलक्षण आदि' W ।

जैसे मुहूर्तवाद काल्पनिक है, वैसे उसके सहस्रों दोष भी काल्पनिक हैं, महाभ्रमजाल हैं। मुहूर्तवाद ने इतना अनर्थ किया है, कि उससे हुई हानियों को गिना नहीं जा सकता। सोमनाथ जैसे अतिभव्य एवं अतिसम्पन्न मन्दिर का विध्वंस इसलिये हुआ, कि महमूद गजनवी का प्रतिरोध करने में सुसमर्थ योद्धा, ज्योतिषियों के द्वारा बताये जाने वाले मुहूर्त की प्रतीक्षा में बैठे रहे और समय पर संगठित न हो सके। वे महमूद से न हारते पर मुहूर्तवाद ने हरा दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ठीक ही लिखा है—

“प्रश्न — देखो! सोमनाथ जो पृथिवी के ऊपर रहता था और बड़ा चमत्कार था। क्या यह भी मिथ्या है?

उत्तर — हाँ मिथ्या है। सुनो! उपर नीचे चुम्बक पाषाण लगा रखे थे। उसके आकर्षण से वह मूर्ति अधर खड़ी थी। जब 'महमूद गजनवी' आकार लड़ा, तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तोड़ा गया और पुजारी भक्तों की दुर्दशा हो गई और लाखों फौज दस सहस्र फौज से भाग गई। जो पोप, पुजारी; पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि 'हे महादेव! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर' और वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे, कि आप निश्चिन्त रहिये। महादेवजी भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। वे विचारे भोले राजा और क्षत्रिय, पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे। कितने ज्योतिषी पोपों ने कहा, कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त नहीं है। एक ने आठवाँ चन्द्रमा बतलाया, दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई। इत्यादि बहकावट में रहे। जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया, तब दुर्दशा से भागे। कितने ही पोप पुजारी और उनके चेले पकड़े गये। पुजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कर कहा, कि तीन करोड़ रुपया ले लो, मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा हम 'बुतपरस्त' नहीं 'बुतशिकन्' अर्थात् मूर्तिपूजक नहीं किन्तु मूर्तिभंजक हैं। जा के झट मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की

W ह० ज्यो० ध० (आचार्य हरिहर पाण्डेय) प्राक्कथन पृष्ठ १२

बुद्धिनिधि:

छत टूटी, तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी तब सुनते हैं, कि अठारह करोड़ के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तो रोने लगे। कहा कि कोष बतलाओ। मार के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट मार कूट कर पोप और उनके चेलों को 'गुलाम' बिगारी बना पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल मूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये। हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए? क्यों परमेश्वर की भक्ति न की? जो म्लेच्छों के दांत तोड़ डालते और अपना विजय करते। देखो! जितनी मूर्तियाँ हैं, उतनी शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती? पुजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की, किन्तु मूर्ति एक भी उनके सिर पर उड़ के न लगी"X।

इस मुहूर्तवाद के प्रचारक प्राचीन एवं नवीन ग्रन्थों ने हजारों विजयप्रद योगों (= मुहूर्तों) का वर्णन किया है। पर वे सब योग—मुहूर्त झूठे निकले हम इन विजययात्रा मुहूर्तों को पोथियों में देखते रहे, घर बैठे उनकी गणना करते रहे और अपने सर्वस्व का नाश करवा बैठे।

“मुहूर्त ग्रन्थों (नरपतिजयचर्या और समरसार आदि) में कई सहस्र विजयप्रद योगों का वर्णन है। 'मुहूर्त चिन्तामणि' का कथन है कि [१] स जयत्यरीन् प्रचलितः (११.५८), [२] प्रयातो महीशो जयत्येव शत्रून् (११.६०), [३] जेता शत्रून् गरुड इवाहीन् (११.६२), [४] स्युः शलभा इव सर्वे (११.६३), [५] रिपुवाहिनी वशमेति (११.६४), [६] वसुचयलाभदयोगः (११.७०), [७] क्षेमयशोऽवनीर्लभते (११.७६)॥ अर्थात् इन योगों में (विजय) यात्रा करने वाला शत्रुओं को झट जीत लेता है। ऐसे जीतता है, जैसे सर्पों को गरुड़। शत्रु पतंगों की भांति जल जाते हैं। शत्रुसेना वशीभूत हो जाती है और अपार धन, यश, धन राज्य मिलता है। किन्तु इन योगों (= मुहूर्तयोगों), मन्त्रों, बलियों, होमों और देवादिकों के रहते [और इन पर विश्वास करते रहते] हमने अगणित कष्ट झेले हैं।—

ई० पू० ३२६ में सिकन्दर ने तक्षशिला पर आक्रमण कर आंभी को पराजित किया। आंभी ने बाध्य होकर अनेक बहुमूल्य पदार्थों के साथ उसे ५००० पांच हजार सैनिक दिये और वे भारतविजय में सिकन्दर के सहायक बने। पोरस गणेश रूपी हाथियों के कारण हार गया, पंजाब—सिन्ध आदि पर यूनानी राज्य स्थापित हो गया

X सत्यार्थ • एकादश समुल्लास।

और यूनानी ज्योतिष यहाँ आ गया। उसके बाद डिमेट्रियस ने पंजाब-सिन्ध और मिलिन्द ने काठियावाड़ मथुरा जीता और कुषाणों का राज्य काशी तक आ गया। मुहम्मद बिन कासिम ने १७ वर्ष के वय में ७१२ ई० में सिन्ध पर आक्रमण किया और धीरे धीरे देवल, निरून, सेहवान, राबर और ब्राह्मणाबाद आदि को जीत लिया। देवल पर आक्रमण के समय उसने एक मन्दिर की पताका गिरवा दी और अपशकुन के भय से हिन्दू सेना भाग गई। सिन्ध के ब्राह्मण राजा दाहिर का सिर काट दिया गया, उसके पुत्र जय को मुसलमान बनाया गया और वह ७१७ ई० में मार डाला गया। कासिम ने अगणित हिन्दुओं को काटा और मुसलमान बनाया। कासिम को मन्दिर के गुप्त कोष से ६००० (छः हजार) ठोस मूर्तियाँ मिलीं, जिनमें एक तीस मन की थी। हीरा, पन्ना, माणिक, मोती, सोना आदि के ढेर के साथ वह ७०० सुन्दरियां ले गया। ब्राह्मणाबाद की विजय के समय कासिम ने दाहिर की दो पुत्रियों सूरजदेवी और परमल देवी को पकड़ लिया, बाद में उन्होंने आत्महत्या कर ली और दाहिर के वध के बाद अनेक नारियाँ सती हो गईं। कासिम ने विजय के उल्लास में चाचा को पत्र लिखा, कि दाहिर और उसके स्वजनों को दोजख भेज दिया गया है, तमाम काफ़िरों को मुसलमान बना दिया गया और उनके मन्दिरों पर मसजिदें खड़ी हैं। उसने अनेक गांव लूटे और अनेक को मुसलमान बनाया।

गजनवी सुबुक्तगीन ने जयपाल को हराया, लूटा और उसके पुत्र महमूद ने १००० ई० में उसे बन्दी बनाया। वह छः लाख दीनार और लाखों गुलाम देकर छूटा, पर बाद में आग में जल मरा। महमूद ने जयपाल के पौत्र सुखपाल को मुसलमान बनाया और उसका नाम नवासाशाह रखा। जयपाल के पुत्र आनन्दपाल की हार का भी कारण वही हाथी बना जो गणेश है, इन्द्र का वाहन है और राजलक्ष्मी को नहलाता है। आनन्दपाल के २०००० सैनिक मारे गये। महमूद ने पिता पुत्र दोनों से दो लाख दीनार का हार और अपार धन लिया। १००९ में नगरकोट पर आक्रमण किया, तो वहाँ के राजा ने आत्मसमर्पण कर दिया। महमूद ने सब मन्दिरों की सम्पत्ति लूटी, गांवों को लूटा, अगणित का वध किया और बहुतों को मुसलमान एवं गुलाम बनाया। उसे जितने कंट मिल सके सब पर मन्दिरों और राजकोष का धन लादा गया। वह ७४० मन सोना, २००० मन चांदी, २० मन से अधिक रत्न और सहस्रों स्वर्णसिलें तथा मूर्तियां ले गया। मुसलमान इतिहासकारों ने लिखा है, कि गजनी शहर हिन्दूनगर सा दिखाई दे रहा था और वहाँ हिन्दू गुलाओं को दो रुपये में खरीदने वाले नहीं मिल रहे थे। कई ने उनकी संख्या दो लाख बताई है।

बुद्धि के गुण

महमूद ने १०१९ में कन्नौज के सातों दुर्ग एक दिन में जीत लिये । १०१८ में मथुरा के राजा कुलचन्द्र पर आक्रमण किया, तो उसके ५००० वीर मरे और राजा ने पत्नी के साथ आत्महत्या कर ली । बरन के राजा हरदत्त ने १०,००० हिन्दुओं के साथ इस्लाम स्वीकार किया । महमूद ने १०१८ में बुलन्दशहर, महावन, मथुरा और उसके आसपास के गांवों को लूटते हुए १०१९ में कन्नौज में प्रवेश किया । राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली और उसने सहस्रों समृद्ध मन्दिरों को यथेच्छ लूटा । वहाँ से तीस लाख दिरहम, ५५००० गुलाम, बहुत हाथी और बहुमूल्य सामग्रियाँ गजनी ले गया । उसने कालिंजर के गंड को हराया और वहाँ से भी अपार धन-जन ले गया । १०२५ की सोमनाथ की लूट में मन्दिर की रक्षा में क्षत्रियों के कई वंश समाप्त हो गये । [सोमनाथ] मन्दिर के पूजाव्यय में १०००० गांव सहायक थे । ५६ खंभों में अगणित रत्न जड़े थे और ४० मन सोने की जंजीरें थीं । महमूद ने मूर्ति तोड़ी । उसके टुकड़ों को मसजिदों की सीढ़ियों में लगवाया, ५०,००० से अधिक हिन्दुओं को मारा और रत्नों, सोना, चांदी, दासों और दासियों की विशाल राशि ले गया । भूमि के भीतर की हड्डी बताने वाले ज्योतिषियों ने उस समय साधुवेश में घूमते मुसलमान गुप्तचरों को नहीं पहचाना ! महमूद ने ३० वर्षों में १७ आक्रमण किये ।

मुहम्मद गोरी ने उछ, पेशावर और स्यालकोट जीतने के बाद ११९२ में पृथ्वीराज को जीता, उसकी आंखे फोड़ी, हत्या की और हांसी, समाना, अजमेर (पुष्करक्षेत्र) जीता तथा तराइन के द्वितीय युद्ध में लाखों राजपूत हारे और मरे । गोरी ने कन्नौज और काशी को जीता, मन्दिरों को तोड़ा लूटा । नगरकोट की विजय में २०,००० मारे और सात लाख स्वर्णदीनार, ७०० मन सोने चांदी के पत्र, २०० मन सोने के पासे, २००० मन चांदी और २० मन हीरा, पन्ना, मूंगा, मोती आदि पाया । गोरी ने भारत में एक सहस्र मन्दिर तोड़े, कई लाख को मारा, कई लाख हिन्दुओं को दास दासी बनाया और ४००० ऊंटों पर लादकर रत्न आदि ले गया ।

बख्तियार खिलजी ने ११९७ में बिहार के पाल वंश को परास्त कर पूरा बिहार जीता । १२००० बौद्ध भिक्षुओं की हत्या की, अनेक पुस्तकालय जलाये, विद्यापीठ ध्वस्त किये और बौद्ध धर्म को उसकी जन्मभूमि से भगा दिया । उसने राजा लक्ष्मणसेन को भगाया तथा सारा रनिवास और सारा राज्य ले लिया । उसने बंगाल के साथ ही कलिंजर, कालपी और बदायूँ को जीता तथा अल्तमश ने ग्वालियर, मालवा और उज्जैन जीता ।

ऊहापोह (विवेकशक्ति) 'मूहूर्त' अशुभत्व-अविवेक

अलाउद्दीन ने देवगिरि के राजा को हराया, उसका धन लूटा और दूसरी बार दिल्ली भेजकर उसकी हत्या की और तीसरी बार उसके पुत्र शङ्करदेव को मार डाला। १२९६ में गुजरात पर आक्रमण कर कर्णदेव को हराया, उसकी पत्नी कमला को बीबी बनाया और रणथंभोर को जीतकर राजा सहित पूरे राजवंश को मार डाला। अलाउद्दीन से राजा का युद्ध ११ मास चलता रहा। राजपूत केसरिया बाना पहनकर रण में मरे और पतिव्रताएँ पद्मिनी के साथ सती हो गई। मलाबार का राजा हारकर भाग गया। लूट कर मदुरा को दरिद्र बना दिया गया और वारंगल एवं द्वार-समुद्र में भी यही हुआ। अलाउद्दीन के राज्य में हिन्दू जजिया कर देते थे, दुधारू पशुओं का कर देते थे, कर में आधा अन्न देते थे, घोड़े पर नहीं चढ़ते थे, शस्त्रास्त्र नहीं रखते थे, अच्छा वस्त्र नहीं पहनते थे और कोई पद नहीं पाते थे। उसने अन्हिलवाड़ के राजा कर्ण की पुत्री देवलदेवी से अपने लड़के खिजिरखाँ का विवाह किया।

कुतुबुद्दीन एबक ने तेजपाल का सिर काटकर लटका दिया, दिल्ली के पास के २७ भव्य मन्दिरों को तोड़ा, तोमरों के मन्दिर पर जामा मस्जिद बनवाई और खम्भों पर बनी सुन्दर मूर्तियों के नाक कान तोड़ दिये। चौहान राजा विग्रहराज का बनवाया सरस्वती मन्दिर तथा अजमेर और मेरठ के सारे मन्दिर मसजिदों में परिणत हो गये। महीपाल देव तोमर के बनवाये शिवमन्दिर के शिव स्थान पर कब्र बन गई और तैमूर ने पांच लाख लोगों का वध किया।

कर्नल कनिंघम ने लखनऊ के गजेटियर में लिखा है, कि बाबर के वजीर मीरबांकी द्वारा अयोध्या का राममन्दिर गिराने में १७६००० हिन्दू मारे गये और वहाँ मसजिद बनाने में गारे में पानी के स्थान में हिन्दूरक्त डाला गया। बाबर अयोध्या को मक्का बनाना चाहता था। उसने १५२८ में राणा सांगा से युद्ध किया और विजयी होने पर रामजन्मभूमि पर मसजिद बनाई। फतेहपुर सीकरी के राजभवन, अनूपझील और मन्दिर आदि राजपूतों द्वारा निर्मित थे। उनकी शिल्पकला भारतीय है, पर वे सब मसजिद और कब्रिस्तान बन गये। बाबर ने धामदेव से सीकरी ले ली और उनके बहनोई अजीतसेन को गोमांस खिलाकर मुसलमान बना दिया। बाबर ने सीकरी की पहाड़ी पर राजपूतों के कटे सिरों का विजयस्तूप बनवाया। सकरवार क्षत्रिय वहाँ से भाग गये। यमुनास्तम्भ कुतुबमीनार हो गया, शिवमन्दिर ताजमहल बन गया, अयोध्या फैजाबाद कही जाने लगी, प्रयाग इलाहाबाद हो गया और सब छोटे नगरों के नाम अरबी हो गये।

बुद्धि के गुण

अकबर ने १५६१ में गोंडवाना में महारानी दुर्गावती और उनके पुत्र को मार डाला, चित्तौड़ का दुर्ग जीता, राजपूत कन्याएँ ब्याहीं और वीर राजपूतों को मरने तथा उनकी पत्नियों को जलने पर बाध्य किया। मुसलिम इतिहासकार अल बदायूनी फिरिश्ता और निजामुद्दीन अहमद ने अपनी कलम से लिखा है कि अकबर ने चित्तौड़ के मन्दिरों को ध्वस्त करने की आज्ञा दी तो उनकी रक्षा में १०००० राजपूत वीर मारे गये। राणा प्रताप ने घास की रोटी खाई, रणथंभौर के सुरजनसिंह और कालिंजर के रामचन्द्रसिंह परास्त हुए। १५६२ में जयपुर के राजा बिहारीमल की कन्या से अकबर का विवाह हुआ। उसे अम्बर के राजा भारमल की कन्या प्राप्त हुई। अकबर ने मीना बाजार लगाया।

जहाँगीर ने मेवाड़ पर चार आक्रमण किये, रणकपुर का मन्दिर तोड़ा। उसकी रक्षा में मुकुन्ददास मारा गया। जहाँगीर की आज्ञा से खुर्रम ने मेवाड़ पर पुनः आक्रमण किया। मन्दिर तोड़े, खेत जलाये, हिन्दू स्त्रियों और बच्चों को नीलाम किया और सलीम का मानबाई सदृश अनेक हिन्दू कन्याओं से विवाह हुआ। उसने मानबाई के पुत्र के नेत्र फोड़े और जेल में डाल दिया, क्योंकि उसकी गुरु अर्जुनदेव पर श्रद्धा थी। बाद में शाहजहाँ ने उसे कटवा दिया। शाहजहाँ की माता मारवाड़नरेश उदयसिंह की कन्या थी। जहाँगीर ने गुरु अर्जुनदेव को जलते कड़ाहे में बैठाकर, जलती रेत में भूनकर और गाय की खाल में बन्द कर रावी नदी में डुबो दिया। फिर भी अकबर और जहाँगीर के दरबारी पण्डित शास्त्रार्थ में पण्डितों को जीतते रहे, दिग्विजय के सहस्रों मुहूर्त लिखते रहे और बादशाह का गुण गाते रहे।

गुरु अर्जुन देव पांचवें, हरगोविन्द छठे और श्री तेगबहादुर सिखों के सातवें गुरु थे। वे पांच वीरों के साथ दिल्ली गये। औरगंजेव ने मतिदास को आरे से चिरवाया, दयालु को कड़ाहे में उबलवाया, सतोदास को रूई में लपेट कर जलाया, ऊधा तथा गुरुदत्ता को कटवाया। गुरु तेग बहादुर का सिर चांदनी चौक में कटवाया और उसे गुरु गोविन्ददास के पास भिजवा दिया। उनके पुत्रों की भीषण मृत्यु सुप्रसिद्ध है। गोविन्द वाणी में लिखा है कि औरगंजेब (हिन्दुओं के) शिखासहित सिर को मूत्र से मुंडवाता था, उसका जलूस निकालता था और उस पर ईंट, जूता आदि रखवाता था। 'मूत डारि तिन सीस मुंडाये। मूंड मूंड कर सहर फिराये।

मथुरा का केशवदेव कटरा श्रीकृष्ण जन्मभूमि है। उस पर भिन्न भिन्न समयों में जो अनेक विशाल और भव्य मन्दिर बने, वे सब मुसलमानों द्वारा तोड़े

ऊहापोह (विवेकशक्ति) 'मूहूर्त' अशुभत्व-अविवेक

डाले गये। ४०० ईसवी के आसपास यहाँ विक्रमादित्य ने एक भव्य मन्दिर बनवाया था। उसके पास ही जैनों और बौद्धों के मन्दिर और विहार थे। १०१७ में महमूद गजनवी ने उस सबों को तोड़ा और लूटा। महमूद के मुंशी अलुतनवी ने स्वयं लिखा है, कि ऐसा मन्दिर २०० से कम वर्षों में और दस करोड़ से कम स्वर्णमुद्रा में नहीं बन सकता। ११५० ई० में यहाँ दूसरा मन्दिर बना और उसे सिकन्दर लोदी ने ध्वस्त किया। उसके सवा सौ वर्षों बाद ओरछानरेश श्री वीरसिंह जू देव ने तैंतीस लाख की लागत से २५० फीट ऊँचा आठ मंजिल का मन्दिर बनवाया। वह आगरा से दिखाई देता था। १६६९ में उसे तोड़कर उसी की सामग्री से उसी की कुर्सी पर औरंगजेब ने जो ईदगाह बनवाई, वह अभी खड़ी है। उसने जुझारसिंह की हत्या की, स्त्रियों को अपने महल में रख लिया और गुरु तेग बहादुर और शम्भा जी की हत्या की उसने काशी के विश्वनाथ-मन्दिर के साथ लगभग १००० मन्दिर तोड़े, उन पर मसजिदें बनवाईं। काशी का नाम मुहम्मदाबाद रखा और नब्बे वर्ष जीवित रहा। परन्तु उसके दरबार में भी कई ज्योतिषी पण्डितराज विराजमान थे और उसका तथा उसके पूर्वजों का यशोगान कर रहे थे²।

‘अयि दलदरविन्द स्यन्दमानं मरन्दं’ जैसी ललित पदावली में काव्यरचना-विदग्ध और पण्डितराज नाम से विख्यात पं० जगन्नाथ ने कामवशात् लवंगी नामक यवनी को तो अर्धाङ्गिनी बनाया³ ही दिल्ली के सुल्तान को ईश्वर जैसा स्थान देते हुआ लिखा था - ‘मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति दो ही कर सकते हैं। दिल्ली का सुल्तान अथवा भगवान्। दूसरे बेचारे जो देंगे वह तो केवल शाक या नमक भर को होगा*। हिन्दी साहित्य में महाकवि नाम से प्रसिद्ध केशव (= केसोदास) ने गुरु अर्जुनदेव की हत्या (१६०६ में) करवाने वाले जहाँगीर की (सन् १६१२) प्रशंसा में जहाँगीरजसचन्द्रिका लिखकर अपनी परम चाटुकारिता का परिचय दिया। इसमें केसोदास ने मीना बाजारी अकबर को शीलसुमेरु तथा सत्यसागर और हिन्दू हत्यारे शराबी सलीम (= जहाँगीर)

² हमाका ज्योतिष और धर्मशास्त्र (पृ० ४०४-४०७)

³ न याचे गजालिं न वा वाजिराजिं न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।

इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा लवंगी कुरंगीदृगंगीकरोतु॥

* दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः।

अन्यैर्वराकैः खलु दीयमानं शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात्॥ अन्योक्ति० भू० ७.८

बुद्धि के गुण

को रामतुल्य और उसके पूर्वजों को देवतुल्य कहते हुए उसकी विजय के लिये गनेस-महेस को मनाया^७।

मुसलमानों ने हमारी आंखें निकलवाई, सिर में लोहे की कीलें ठोकीं, खालें खिंचवाई, हाथी से कुचलवाया और अनेक दुर्दशाएँ कीं। अंग्रेजों और पुर्तगालियों आदि ने भी हम पर नाना अत्याचार किये। पर हम इन पर विजय न पा सके। क्यों?

“क्योंकि हमें इन दो सहस्र वर्षों में विजययात्रा का एक भी प्रबल मुहूर्त नहीं मिला, जब कि उनकी संख्या सहस्रों में बताई गई है, तो हम इन्हें सत्य कैसे मानें और वे सत्य नहीं हैं, तो वे कई सहस्र भीषण गोग कैसे सत्य हो सकते हैं, जो कन्या की विवाह पांच वर्ष तक रोक देते हैं, कई वर्षों को विवाहमुहूर्त से विहीन बना देते हैं, व्यवहार में सैकड़ों अड़ंगे डालते हैं और जिन्होंने हमारे मनोबल को समाप्त कर दिया है”^X।

इस ‘मुहूर्त’ लग्न के चक्कर में कई प्रसंगों में ऐसे कार्य हो जाते हैं, जो अवाञ्छनीय और स्वास्थ्य आदि को हानि पहुँचाने वाले होते हैं। विशेषकर ‘विवाह’ के मुहूर्त के सम्बन्ध में पंचाङ्गों के अनुसार वर्ष में कुछ तिथियाँ विवाह-संस्कार के लिये निश्चित की जाती हैं। जैसे (वि० सं० २०५४) वर्ष में कुल १९ तिथियाँ नियत की गईं (वैशाख शुक्लपक्ष ३, ८, ११, १३। ज्येष्ठ कृष्णपक्ष २, ४, ९; ज्येष्ठ शुक्लपक्ष ६, १३। आषाढ़ कृष्णपक्ष २, ८, ७। मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष ७, १०, ११; शुक्लपक्ष ९। माघ कृष्णपक्ष १०; शुक्लपक्ष ४, ९)। अब इन तिथियों में विवाहसंस्कार में बैठी बहुत सी युवतियाँ तो रजोधर्मवाली (= रजः प्रवृत्ति के आरम्भ के चार दिनों वाली) होंगी ही। पर विवेकबुद्धिहीन लोगों को इसकी परवाह नहीं। उनको मुहूर्त महाराज को देखना है। चाहे उस अवस्था में वर-पाणिग्रहण में बद्ध होने, स्पर्श होने और होमाग्नि के समीप बैठने आदि से भले ही उनके तन आदि पर विपरीत प्रभाव पड़े। इसीलिये मनीषी विचारकों ने रजोधर्मवस्था (= रजोदर्शन से चौथे दिवस तक) के लिये लिखा है-

- ७ समसदीन अल्लाबदीन सुलतान सिकन्दर कुतुबदीन गोरी गयासु अल्लाहउदीन अरु। रुकमदीन जलालुदीन साहब दीनमनि महंमाद फीरोजशाह सौं कुतुबसाहमनि ॥
 गुनहु गनेस दिनेश प्रभु ... जग जहाँगीर एक सांहि को पल पल ही रच्छा करहु।
 जाकी घोर दुन्दुभि घनाघननि घूमत ही ब्यालन ज्यों दिक्पाल धीर न धरत हैं।
 केसोदास जाके मुखचंद के प्रकाश सब जाको संक लंकनाथ संकिबो करत हैं॥
 दरसैं सुरेस सौं नरेस नित नावैं सिर नाइका अनेकन को नायक लाइयतु हैं।
 परम अखण्ड तेज पूरी रह्यो नखण्ड दस हू दियानि जहाँगीर गाइयतु हैं।
- X ह० ज्यो० घ० (पृ० ४०७)

“प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि (= अहोरात्र) में रजस्वला स्त्री का पुरुष स्पर्श भी न करे उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे। न वह स्त्री कुछ काम करे, परन्तु एकान्त में बैठी रहे”*।

वास्तव में रजोऽवस्था में युवति को विवाहसंस्कार में बिठाना, स्वास्थ्य, शुचिता और सुविधा की दृष्टि से अनुचित है। अतः ऐसे मुहूर्त अमान्य हैं।

सन् १९७७ के ग्रीष्मकाल में एक विवाह संस्कार के सम्पादन के लिये मुझे नाथद्वारा के राठी परिवार में जाना था। सोजत के एक आर्यमाहेश्वरी परिवार (= वरपक्ष) की ओर से मैं पुरोहित था। ग्रीष्मावकाश के कारण मैंने बच्चों का उधर का भ्रमण का कार्यक्रम भी बना लिया। विवाह की निश्चित तिथि से एक मास पूर्व लड़की की दादी का देहावसान हो गया। अतः वह विवाहसंस्कार स्थगित कर दिया गया। किन्तु मैं अपने पूर्वनिर्धारित कार्यक्रमानुसार उदयपुर-दर्शन के बाद नाथद्वारा भी सपरिवार गया। शिष्टाचार वश वधूपक्ष के घर भी शोकसमवेदनार्थ जाना मैंने उचित समझा। उस परिवार के पुरोहित एक वेदान्ताचार्य भी उस दिन वहाँ गरुड़-पुराण-कथा-प्रसङ्ग में उपस्थित थे। लड़की के दादा ने विवाह के लिये कोई अगली शुभ तिथि (= शुभ मुहूर्त) सुझाने को मुझे कहा। मैं— “सभी तिथियाँ शुभ होती हैं। बस, जिस मास में आप विवाह करना चाहें, उस मास में; लड़की की माता से पुछवाकर लड़की की रजःशुद्धि के तीन बाद का समय रख लीजिये। रजोधर्मावस्था में विवाह संस्कार करना अनुचित है”। मेरी बात पूरी होते ही, उनके पुरोहित जी बोले— “नहीं, नहीं, उस मास में जो मुहूर्त विवाह का लिखा हो, उसी में विवाह रखिये, उस दिन लड़की रजोधर्मा हो, तो कोई बात नहीं, हम उसके प्रायश्चित्तार्थ एक ‘कूष्माण्ड-याग’ कर लेते हैं”। मैं— “पुरोहित जी! आपके उस कूष्माण्डहवन से रजःप्रवृत्ति रुक जाती है क्या?”। पुरोहित— “रजःप्रवृत्ति तो बन्द नहीं होती, पर “बाबावाक्यं प्रमाणम्” हम तो ऐसा ही करते हैं। अब बताइये बिना बुद्धि के विवेक से काम लिये, मुहूर्त के चक्कर में अकार्य करना कहाँ तक उचित है?

लड़की का विवाह अमुक वर्ष में या अमुक मास में करना है, इसका निश्चय भले ही पुरुषवर्ग कर ले, किस तिथि या तारीख को विवाह हो, इसका निश्चय करने के लिये लड़की की माता आदि स्त्रियाँ निर्णायिका होनी चाहियें। उनसे ज्ञात हो सकता है, पुत्री के रजःचक्र का काल। उसी के अनुसार तिथि-तारीख का निश्चय करें।

संस्कारविधि (स्वामी दयानन्द सरस्वती) गर्भाधान प्रकरण।

बुद्धि के गुण

इसका निश्चय दो तीन मास पूर्व भी हो सकता है। स्वस्थ शरीर में रजः चक्र प्रायः २८ दिन के बाद आता है। मान लीजिये यह जुलाई मास है और सितंबर में लड़की का विवाह करना है। लड़की के रजःचक्र का आरम्भ इस मास में १० तारीख को हुआ है, तो अगस्त मास में इसका आरम्भ ७ या ८ तारीख को होगा और सितंबर में यह आरम्भ होगा ५ या ६ तारीख को। तो उसकी निवृत्ति के चार दिवस छोड़कर १२ या १३ सितंबर को विवाहसंस्कार रखा जा सकता है।

बस यही विवेकबुद्धि—गम्य मुहूर्त (= काल) है।

मेरे इस कथन पर राठीजी के पुरोहित जी का कहना था कि “शुद्धि के पश्चात् के दिनों में भी तो कई बार पुनः रजःप्रवृत्ति हो जाती है”। किन्तु यह बात सर्वाश सत्य नहीं है। कभी—कभी किसी किसी को रजःचक्र के नियमित दिनों से पूर्व रजोदर्शन हो जाता है। इसका कारण अधिक गरम वस्तुओं का सेवन, अत्युष्णता, अतिक्लेश या अतिश्रम आदि है। पर यह भी शुद्धि के १५—१६ दिन बाद ही सम्भव है। रजोरोग से निवृत्त होने के (= शुद्ध होने के) तुरत बाद के ४—५ दिनों में तो सर्वथा नहीं। क्योंकि तब तक डिम्बों का अतिरेक हुआ ही नहीं है, तो स्राव किसका होगा? अतः विवेकबुद्धि से काम लेकर विवाह की तिथि—तारीख निश्चित करने में उपर्युक्त विधि ही अपनानी चाहिये।

प्राचीनकाल में यह मुहूर्तवाद का चक्कर नहीं था। राजा भोज के दरबार में एक ज्योतिषी आये और लगे कार्यों में शुभ—मुहूर्त देखने का यशोगान करने लगे तब राजा भोज के राजकवि ने उस ज्योतिषी से पूछा— ‘ज्योतिषी जी! राम तो त्रिलोकी के नाथ माने जाते हैं और उनके गुरु वसिष्ठ साक्षात् ब्रह्मा के पुत्र थे तो जब राम को राज्याभिषेक की आयोजना हुई, तो शुभमुहूर्त देखा ही गया होगा!’ ज्योतिषी— ‘अवश्य’। राजकवि— ‘ज्योतिषी’ महोदय! ऐसा क्या मुहूर्त निकाला, कि उससे राम को युवराज बनके पृथिवी का राज्य तो नहीं मिला, अपितु वनवास मिला। फलतः राजा दशरथ की मृत्यु हुई और सीता का हरण हो गया। यदि कहें कि गणना में त्रुटि हो गई होगी। तो जब वसिष्ठ से भी गणना में त्रुटि सम्भव है, तो अन्य ज्योतिषियों की तो गणना में सर्वथा अशुद्धि ही रहेगी और

* त्रैलोक्यनाथो रामोऽभूद् वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः। यौवराज्याभिषेके तु मुहूर्तः कथितो भवेत्॥
रामस्तेन मुहूर्तेन वनं यातोऽवनिं विना। राज्ञस्तु मरणं तत्र सीताया हरणं ततः॥ (भोज प्रबन्ध २०.२१)

यदि कहें की प्राचीनकाल में मुहूर्त देखने की परिपाटी नहीं थी, तो अब इस कल्पना का सहारा लेकर क्यों जनमानस को निर्बल बनाया जा रहा है।

‘देवशयन’—अविवेक

हिन्दू-समाज में एक महा-अविवेक-जन्य विश्वास है कि जब देव सोते हैं, तब कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिये। आषाढ़-शुक्लपक्ष-एकादशी को ‘देवशयनी’ एकादशी कहा जाता है और कार्तिक-शुक्लपक्ष-एकादशी ‘देवोत्थायिनी’ एकादशी कहलाती है। ये चार मास देवशयन के कहलाते हैं। इस काल में विवाह, उपनयन, गृहप्रवेश आदि सब शुभ कार्य वर्जित कर रखे हैं।

यहाँ प्रश्न यह है कि, कौन से देव सो जाते हैं? पौराणिक दृष्टि से देखें तो यदि इन्द्रदेव सो जाते हैं, तो तदनुसार वर्षा कौन करेगा अथवा उस पर नियन्त्रण कौन रखेगा? फिर तो वर्षा ऋतु में वर्षा होनी ही नहीं चाहिये। यदि वरुणदेव सो जाते हैं, तो समुद्र-व्यवस्था कौन करता है? यदि अग्निदेव शयन करते हैं, तो अग्नि में उष्णता और प्रकाश नहीं रहना चाहिये। कुछ लोग देवशयन को हरिशयन बताते हैं अर्थात् तब विष्णु भगवान् सो जाते हैं। यदि ऐसा है तो जगत् का पालन कौन करता होगा, इन चार महीनों में? यदि कहें कि देव तो सो जाते हैं, पर उनकी शक्ति से अथवा शयन से पूर्व किये गये निर्देश से उनके सब कार्य होते रहते हैं। तो फिर उनके सोते रहने के समय यदि मनुष्य कोई शुभ कार्य करें, तो क्या उन देवों की शक्ति मनुष्यों के शुभ कर्म में सहयोगिनी नहीं होगी?

वास्तव में देवशयन (= हरिशयन) की यह धारणा ही भ्रान्तधारणा है और अविचारित रमणीया है। जिस जाति, राष्ट्र या धर्म वालों के देव चार चार मास तक सोते रहते हैं, उस जाति, धर्म या राष्ट्र की क्या दशा होगी? यह सहज ही समझ में आने वाली बात है।

शयन करना तो शरीरधारियों का कर्म है। शरीर और मन के थक जाने पर मनुष्य-प्राणी निद्रा के वशीभूत होते हैं। देवाधिदेव परमात्मा (देवत्रा देव) शरीर-रहित है। अतः शरीर से सम्बद्ध-विकारों एवं वृत्तियों से भी रहित है। निद्रावृत्ति के भी निरोध के योग की प्राथमिकताओं में माना गया है। दूसरे शब्दों में समाधिप्रवण योगी मनुष्य के लिये भी जब निद्रावृत्ति (= शयन) को एक बाधा माना गाय है, तब निर्विकार परमदेव

स पर्यगाच्छुक्रमकायमर्त्रमस्नाविरम् ॥ (यजु० ४०.८)

बुद्धिनिधि:

बुद्धि के गुण

परमेश्वर के लिये चार मास शयन करने की बात, भ्रान्त कपोल-कल्पना ही है। मुक्तात्मा भी देव कहलाते हैं। वे भी शरीरों (= स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों) के बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो गये होते हैं। अतः उनके विषय में भी चार मास शयन की बात नहीं घटती है। अन्य चेतन देवों में सदाचारी विद्वान् जन^४, माता, पिता, आचार्य, अतिथि-आदि आते हैं। उनमें भी चार मास लगातार शयन करना नहीं घटता है।

अचेतन (= जड़) देवों में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि आते हैं^५। उनमें भी चार मास तक शयन (= निष्क्रिय) रहने की बात सम्भव नहीं है। चन्द्रमा निरन्तर स्व-अक्ष पर घूमता हुआ पृथिवी की परिक्रमा करता है। सूर्य भी अपने अक्ष पर घूर्णन करता हुआ आकाशगंगा के मध्य केन्द्र से पैंतीस हजार प्रकाश वर्षों की दूरी पर^२ रहता हुआ स्व-कक्षा में उस मध्य केन्द्र की परिक्रमा में प्रतिपल २०० किलोमीटर के वेग से गतिशील है। यही सत्य अन्य खरबों सूर्यों, चन्द्रों और नक्षत्रों के विषय में है। इस प्रकार चार मास के देवशयन की बात न चेतन देवों में सम्भव है न जड़ देवों में और न ही देवों के देव परमेश्वर में। अतः इस कल्पित धारणा पर विश्वास करके इन चार महीनों में शुभ-कार्य न करना निरी बुद्धिहीनता है।

हिन्दू जाति में ही कई लोग इस देवशयन में शुभ-कार्य न करने की बात को नकारते भी हैं और इन दिनों में विवाह आदि कार्य निःसङ्कोच भाव से करते हैं, जैसे पंजाबी, सिन्धी और प्रबुद्ध आर्यसमाजी आदि। और इस अन्तराल में उनके द्वारा किये गये शुभारम्भों के कोई दुष्परिमाण दृष्टिगोचर नहीं होते, जब कि तथाकथित देवोत्थान के बाद किये गये शुभकार्यों की भी परिणति दुःखदायिनी देखी जाती है।

सुजानगढ़ (जि० चूरु-राजस्थान) निवासी मेरे श्वशुर स्व० श्री पं० गणपति जी शर्मा आर्य के द्वितीय जामाता का एक भूखण्ड उसी नगर में था। बहुत समय से उस पर मकान बना लेने का उपक्रम टलता जा रहा था। एक दिन पं० गणपति जी जामाता महोदय के पास पहुँचे और बोले "भूखण्ड पर लोग कूड़ा-कचरा-गन्दगी डालते हैं, उस पर लगाई हुई घेराबन्दी को भी तोड़ते रहते हैं, अतः वहाँ अब मकान बना लो"। जामाता- "पर अभी तो देव सोये हुए हैं, सो भवननिर्माण का शुभारम्भ कैसे करें?"।

△ विद्वांसो हि देवाः (शत० ३.७.३.१०)

⊕ मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव (तैत्ति० शिक्षोप० ११ अनु०)

५ सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता, (यजु० १४.२०)

Σ हमारे सूर्य के विषय में यह बात है।

गणपतिजी - "अच्छा है कि देव सोये हुए हैं। देखो! जब तक बच्चा सोया रहता है, उसकी मां झटपट घर के सारे कार्य निपटा लेती है। लोगों के देव सोये हुए हैं, इसलिये मकान-निर्माण आदि उनके कार्य बन्द हैं और इसीलिये इस समय मिस्त्री, बेलदार, मजदूर आदि सुलभ हैं; चूना, पत्थर आदि भी सस्ते हैं। इधर अपनी विवेकबुद्धि और सत्साहस रूपी देव जागृत हैं, सो परमदेव ईश्वर की कृपा से सब कुछ शुभ होगा, आरम्भ करो।" श्री जामाता महोदय ने तुरन्त भवननिर्माण आरम्भ करवा दिया। समय पर मकान बन गया। आज भी वह भवन सुरक्षित है। उसमें कोई दुर्घटना नहीं हुई। उनके पुत्रपौत्र दुहिता-दौहित्र सब सानन्द हैं।

सारा यह है, कि इस देवशयन रूप महाभ्रान्ति को त्यागकर बुद्धि के विवेक से काम लेकर इन चार मासों में भी विवाह, उपनयन, भवननिर्माण आदि कार्य अवश्य करने चाहियें।

कृष्ण-पक्ष-अशुभत्व-अविवेक

जनमानस में एक अविवेक-जन्य धारणा यह बनी हुई है, कि कृष्ण पक्ष अशुभ है, इसलिये उसमें शुभ कर्म अथवा शुभारम्भ नहीं करने चाहियें। उपनयन, विवाह आदि संस्कारों के लिये भी इसी कारण से शुक्ल-पक्ष की तिथि को ही चुना जाता है।

वर्तमान ज्योतिषियों ने कृष्ण-पक्ष में जन्म होने को भी अशुभ बता दिया है। वे कहते हैं- "कृष्णपक्ष में जन्मा बालक प्रतापहीन, निर्बल, चंचल, कलहप्रिय, उदण्ड, अतिकामी, निष्ठुर, भाग्यहीन, स्त्रीद्वेषी, बुद्धिहीन, पराधीन और दरिद्र होता है"।

पर क्या यह सिद्धान्त सत्य हो सकता है। हमारे सामने सूर्य के प्रकाश का सा स्पष्ट उदाहरण है, वसुदेवसुत श्रीकृष्ण का। उनका जन्म भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को हुआ था। क्या वे प्रतापहीन, निर्बल, बुद्धिहीन या दरिद्र आदि थे? इसके विपरीत वे महाप्रतापी, बलशाली, स्थितप्रज्ञ, शान्तिप्रिय, अनुशासित, जितेन्द्रिय-साधक, दयालु, मतिमान् और सम्पन्न, लक्ष्मीपति थे।

- Δ प्रतापहीनो विबलश्च लोलः कलिप्रियः स्वीयकुलोद्धतश्च।
मनोभवाधिक्ययुतो नितान्तं सितेतरे यस्य नरस्य जन्म ॥
निष्ठुरो दुर्भगश्चैव स्त्रीद्वेषी मतिहीनकः।
परप्रेक्ष्यो दरिद्रश्च कृष्णपक्षे प्रजायते ॥

वर्तमान ज्योतिषियों की कल्पनाओं का कहीं कोई ठिकाना है? उनकी दृष्टि में उत्तरायण शुभ है, उसकी सब ऋतुएँ शुभ हैं, फाल्गुन-वैशाख मास शुभ हैं, पर उनके सारे कृष्णपक्ष अशुभ हैं !! शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में प्रकाश और अन्धकार के पल-विपल तक समान होते हैं, पर न जाने क्यों एक को शुभ और दूसरे को अशुभ मान लिया !! आश्चर्य है, कृष्णपक्ष की प्रतिपदा द्वितीया में चन्द्रमा प्रायः पूर्ण रहता है, पर उन्हें अशुभ मानते हैं और शुक्लपक्ष की प्रारम्भ की तिथियों में बहुत कम प्रकाश रहता है, पर शुक्लपक्षीय होने से वे शुभ मानी गईं!!

वास्तव में शुक्ल और कृष्ण पक्ष आकाश के प्राकृतिक दृश्य हैं और प्राकृतिक कालमान हैं। वैदिक साहित्य में उनका महत्त्व गाया गया है। एक को भी अशुभ नहीं बताया गया है। वहाँ इन पक्षों के (= अर्धमासों) के नाम लिखकर यह भी कहा गया है, कि जो इन मांगलिक नामों को जानेगा, उसे किसी भी पक्ष में अनिष्ट की आशंका नहीं होगी^Δ। तैत्तिरीय ब्राह्मण में दोनों पक्षों के नाम दिये हैं। शुक्लपक्षों के नाम - पवित्र, पवयिष्यन्, पूत, मेध्य, यश, यशस्वान्, आयु, अमृत, जीव, जीविष्यन्, स्वर्ग और लोक। कृष्णपक्षों के नाम - सहस्वान्, सहीयान्, ओजस्वान्, सहमान, जयत्, अभिजयत्, सुद्रविण, द्रविणोदा, आर्द्रपवित्र, हरिकेश, मोद और प्रमोद। जैसे शुक्लपक्षों के नाम उत्तम हैं, वैसे ही कृष्णपक्षों के भी नाम उत्तम हैं। ओजस्वान्, जयत्, अभिजयत् जैसे ओजस्वी कृष्णपक्षों में जन्मने वाला पराधीन, प्रतापहीन और निर्बल कैसे हो सकता है?। जिन कृष्णपक्षों के नाम ही सुद्रविण और द्रविणोदा हैं, उनमें जन्मने वाले को दरिद्र और भाग्यहीन कहना मूर्खता ही है। जो कृष्णपक्ष सहमान, सहीयान् और सहस्वान् हैं, उनमें जन्मे को चंचल और कलहप्रिय आदि कहना विवेकहीनता है।

इसी प्रकार ज्योतिष के द्वारा चन्द्रमा की क्षीणता और अन्धकार के कारण अमावास्या को अशुभ करार दिया गया है। रात्रि में जन्मे बालक उसके अनुसार मन्ददृष्टि, कामी, क्षयरोगी, और पापी होंगे*। कितनी दोषपूर्ण है यह मान्यता? क्या मध्यरात्रि में जन्मे भगवान् कहे जाने वाले श्री कृष्णचन्द्र क्षयरोगी और पापी थे?। वे तो दूर-दृष्टि, योगीश्वर, जितेन्द्रिय, मल्ल और अग्रपूजाधिकारी पुण्यात्मा पुरुषोत्तम थे।

भगवान् ने दिन के समान रात्रि भी हमारे कल्याण के लिये बनाई है। 'रात्रि' शब्द का अर्थ ही देने वाली है। वह हमें विश्राम और शीतलता देती है। वेद में कहा

Δ यो ह वा अर्धमासानां नामधेयानि वेद, पवित्रं, पवयिष्यन् ... इति/नार्धमासेष्वास्ति मृच्छति। य एवं वेद ॥
* स्रोत - ह० ज्यो० ध० (पृ० ५७)

हे- 'हे ध्रुलोक की पुत्रि! (= रात्रि!) तुम्हारे आने पर हम उसी प्रकार गृहों में सुखपूर्वक सोते हैं, जैसे पक्षी अपने घोंसलों में॥ इसी अमावस्या (= कुहू) को देवों के अमृत की रक्षिका कहा है^x। रात्रि से (उपचार रूप से) से यज्ञसम्पन्नता, सुवीर सन्तान और ऐश्वर्य मांगा गया है॥

अतः अपनी बुद्धि के ऊह गुण को विकसित करके ऐसे अन्धभयों से मुक्त होना चाहिये। जैसे प्रत्येक वर्ष, ऋतु और मार्स शुभ हैं, वैसे ही मासों के दोनों पक्ष शुभ हैं। कृष्णपक्ष में और अमावस को भी अपने अभीष्ट शुभ कर्म अवश्य सम्पादित करने चाहियें।

'ग्रहण' अशुभत्व-अविवेक

सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण प्राकृतिक घटनाएँ हैं। जब सूर्य और पृथिवी के बीच चन्द्रमा आ जाता है, तो पृथिवीवासियों को (= उस विशिष्ट भूक्षेत्रवासियों को) सूर्य नहीं दिखता उसे सूर्यग्रहण कहते हैं। जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच पृथिवी आ जाती है, तो सूर्य के किरणों के चन्द्रमा पर न पड़ने से उसका चमकना बन्द हो जाता है और अतएव वह हमें दिखाई नहीं देता है तब उसे चन्द्रग्रहण कहा जाता है। ये दोनों परिस्थितियाँ सर्वथा प्राकृतिक हैं और इन दशाओं में भयभीत होने की कोई बात ही नहीं है। किन्तु अज्ञानी स्वार्थी लोगों ने इस विषय में भारी भय-भ्रान्तिजाल फैला रखा है। लोगों के मस्तिष्क में यह बात बैठा रखी है, कि राहु-केतु नामक दैत्य सूर्य और चन्द्रमा को कुछ समय के लिये मुंह में ग्रस लेते हैं और फिर छोड़ देते हैं, अतः यह देवयातना-की सूर्य और चन्द्र रूपी देवों को कष्ट प्राप्त होने की वेला होती है। इसलिये इस समय जगत् पर बड़ा बुरा असर पड़ता है।

"लिखा है कि एक मास में सूर्य-चन्द्र दोनों के ग्रहण लग जायँ तो नृपों की सेना में खलबली मच जाती है, शस्त्रकोप होता है और वे आपस में लड़ कर नष्ट हो जाते हैं। ग्रहण लगे रहने की स्थिति में सूर्य-चन्द्र का उदय या अस्त हो जाय, तो शारदीय अन्न और राजा का नाश होता है तथा दुर्भिक्ष और रोग होते

१ 'विश्वे अधिभ्रियोऽधित' वृक्षे न वसति वर्यः। 'रात्री व्यस्यदयरी पुंस्रादेय-

२ 'उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः' ॥ ऋ० १०.१२७.८

३ 'दुर्मि' ॥ ऋ० १०.१२७.१, ४ ॥

४ 'कुहूदेवानाममृतस्य पत्नी' (अ० ७.४७.२)

५ 'यत्तं देवा अकृण्वन्मार्गधेयमर्मावास्ये संवसन्तो महित्वा।

तेनो नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ अ० ७.७९.१

बुद्धिनिधि:

बुद्धि के गुण

हैं। अर्धोदित ग्रहण से निषादों और यज्ञों का नाश होता है। ग्रास वाला समय अशुभ और मोक्ष वाला शुभ बताया गया है। ग्रहण उत्तरायण में लगे तो ब्राह्मण-क्षत्रिय का और दक्षिणायन में लगे तो वैश्य-शूद्र का नाश होता है। दक्षिण, उत्तर, पश्चिम और पूर्व दिशाओं में ग्रहण दिखाई दे तो क्रमशः वैश्य, ब्राह्मण, शूद्र और क्षत्रिय का तथा कोणों में दिखाई दे तो म्लेच्छ आदि का नाश होता है। मेष आदि बारह राशियों में ग्रहण लगे तो भिन्न भिन्न अनेक प्रान्तों, जातियों और व्यवसायियों को पीड़ा देता है। इसके सिवाय ग्रहण दांये भाग में लगा कि बांये में, तृतीयांश-चतुर्थांश लगा कि आधा या पूरा, राहु का वर्ण श्वेत था कि हरा? उस पर किस किस ग्रह की दृष्टि पड़ रही थी? उस समय कौन सी हवा चल रही थी? इत्यादि के नाना शुभ-अशुभ फलों का जाल फैला रखा है।

राहु और केतु नाम के कोई दैत्य हैं, यह कल्पना तो सर्वथा ही असम्भव है। विस्फारित मुख से शरीर की लम्बाई बीस गुणा अधिक होती है। जिन राहु या केतु के मुख में चन्द्रमा और सूर्य ग्रसे जा सकते हैं, वे राहु और केतु चन्द्र और सूर्य से बीस गुना बड़े होने चाहियें। चन्द्रमा का व्यास लगभग दो हजार माइल और परिधि छः हजार माइल है। छः हजार मील की मोटाई वाला चन्द्रमा जिसके मुह में समाजाय उस राहु या केतु का शरीर कम से कम एक लाख बीस हजार माइल लम्बा होना चाहिये। सूर्य के मामले में तो राहु-केतु के आकार का क्या कहना? पृथिवी से तेरह लाख गुना बड़े सूर्य की परिधि कम से कम साढ़े बत्तीस अरब माइल है। उसको मुह में ग्रसने वाले राहु-केतु का शरीर साढ़े छः खरब माइल से अधिक लम्बा होना चाहिये। और इतने विशाल काय वाले राहु और केतु कम से कम ग्रहण समय में तो दिखने चाहियें। पर कभी किसी को नहीं दिखते। अतः स्पष्ट है कि राहु और केतु नाम के दैत्यों की कल्पना निरी गप्प है।

अब रही बात राहु और केतु नामक ग्रहों की बात। सो यह भी असत्य है। हमारे सौर परिवार में प्रसिद्ध नौ ग्रह और उनका वर्तमान आकाशीय क्रम इस प्रकार है— सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण (यूरेनस), वरुण (नेपच्यून), यम (प्लूटो)। शुक्र के बाद हमारी पृथिवी है और उसका उपग्रह हमारा चन्द्रमा है। मंगल,

Δ एक अन्य पक्ष में पृथिवी से सूर्य का व्यास १०९ गुने से अधिक है। पृथिवी का व्यास १२७५६ कि.मी. और सूर्य का व्यास १३९२००० कि.मी. है। तदनुसार भी उसको ग्रसने वाले का मुख २५ लाख कि.मी. का होना चाहिये।

बृहस्पति, शनि, नेप्च्यून और प्लूटो के उपग्रह (चन्द्र) लगभग ६२ हैं। इन सब ग्रहों और उपग्रहों में राहु और केतु का कहीं अस्तित्व नहीं है।

“आचार्य वराहमिहिर पौराणिक राहु का खण्डन करते हुए लिखते हैं, कि राहु यदि सिरधारी, शरीरधारी और राशि मण्डल में चलने वाला कोई ग्रह होता, तो अपने से छः राशि पर स्थित सूर्य-चन्द्र को नहीं ग्रसता। राहु को मुख और पुच्छ होते, तो वह मुख और पुच्छ के बीच में स्थित राशियों को भी ग्रस लेता। यदि दो राहु होते, तो ग्रस्तास्त और ग्रस्तोदित चन्द्रग्रहण के समय सूर्य भी ग्रस्त हो जाता, क्योंकि दोनों राहु (केतु) समान गति वाले हैं। राहु ग्रसता तो सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण एक ही दिशा से होता, किन्तु यहाँ तो चन्द्रमा का ग्रहण पूर्व से और सूर्य का पश्चिम से आरम्भ होता है। चन्द्रग्रहण सब देशों में एकरूप दिखाई देता है, पर सूर्यग्रहण नहीं। चन्द्रमा का आवरण (= भूछाया) विशाल होने से अर्धग्रस्त चन्द्रमा का शृंग स्थूल होता है, पर सूर्यग्रहण में आच्छादक (= चन्द्रमा) स्वल्प होने से शृंग तीक्ष्ण रहता है*, अतः राहु कोई कारण नहीं है, न ही उसका कोई बिम्ब है*। ... राहु निष्प्रयोजन और काल्पनिक है”७।

किं च यदि दुर्जनतोष न्याय से किन्हीं ज्ञात-अज्ञात ग्रहों का नाम राहु-केतु रख भी लिया जाय, तो उनका सूर्यग्रहण और चन्द्र ग्रहण से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। जैसा कि ऊपर बताया गया है चन्द्रग्रहण में भूछाया (= पृथिवी व्यवधान) और सूर्यग्रहण में चन्द्रव्यवधान ही वास्तविक कारण है। वास्तव में तो चन्द्रग्रहण शब्द के स्थान पर (रात्रौ) चन्द्रअदर्शन और सूर्यग्रहण शब्द के स्थान पर (दिवा) सूर्यअदर्शन शब्द का प्रयोग ही युक्तियुक्त है।

शास्त्राध्ययन और ज्ञान-विज्ञान-अनुसन्धान-जन्य श्रम से बचकर केनापि-प्रकारेण निज के एवं स्व-वंश-जाति के उदर की पूर्ति के साधन ढूँढने वाले चालाक लोगों ने अन्य भयों के समान ग्रहण के भी भय जनमानस में डालने का कुकर्म किया

- * यदि मूर्तो भविचारी शिरोऽथवा मण्डली राहुः ।
भगणार्धेनान्तरितो गृह्णाति कथं नियतचारः ॥
अथवा भुजगेन्द्रतनुः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति ।
मुखपुच्छान्तर-संस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्धम् ॥
राहुद्वयं यदि स्यात् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवोदिते चन्द्रे ।
तत्समगतितान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ॥ राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः ॥
- ७ हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र पृ० २१०

है। इस बात की सत्यता ग्रहण-सम्बन्धी दोषों के निवारणार्थ सुझाये गये शान्तियाग और दान की सूची से प्रमाणित हो जाती है। मुहूर्तचिन्तामणि में लिखा है—

“जिस राज्य और मनुष्य के नक्षत्र में ग्रहण लगता है, उसे अनेक कष्ट होते हैं, अतः वह ज्योतिषी को गाय, भूमि, अन्न, वस्त्र और विशेषतः सुवर्ण का दान दे। तांबे के पात्र में सोने का नाग, काला तिल और दक्षिणा रखकर दें। ग्रहण में सारी धरती कुरुक्षेत्र हो जाती है, सब जल गंगाजल और सब ब्राह्मण ब्रह्म-तुल्य हो जाते हैं, इसलिये अपने स्थान में ही शीघ्र दान कर दे। शास्त्रोक्त मन्त्रों को सुवर्ण-पत्र पर लिखे, सिर पर बांधे और थोड़ी देर बाद ब्राह्मण को दे देवे, तो सारे कष्ट भाग जायेंगे, सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायेंगी और मरने पर मुक्ति मिलेगी। देते समय कहे कि हे तमोमय राहुदेव! आप सूर्य-चन्द्र का मर्दन करने वाले महावीर हैं, इस सुवर्णपत्र और नाग के दान से प्रसन्न होकर मेरे ग्रहणजन्य कष्टों को दूर करें। सूर्य या चन्द्र के ग्रहणकाल में जन्म हुआ है, तो मृत्यु, पीड़ा, दरिद्रता, रोग, शोक और कलह आदि का आना निश्चित है और उसके निवारणार्थ शान्तियज्ञ आवश्यक है। उसमें पहले नक्षत्रेश देव की सोने की मूर्ति बनावे। सूर्यग्रहण में सूर्य सोने का और चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा चांदी का हो। दोनों पर दो दो सुन्दर बस्त्र चढ़ावे। यज्ञ के बाद यह सब आचार्य को दे, ब्राह्मणों को भोजन करावे और अन्त में हाथ जोड़कर क्षमा मांगे”+।

हो गया न स्पष्ट, कि ग्रहण-भय दिखाना मात्र धनप्राप्ति के लिये है। नहीं तो ग्रहणकष्टों का ब्राह्मणों को दान देने से क्या सम्बन्ध है? ब्राह्मण क्या राहु-केतु के रिश्तेदार हैं, जो इनकी सिफारिश पर कष्ट मुक्त कर देंगे। वास्तव में तो कष्ट होता ही नहीं है। तो मुक्ति किससे?

रही बात ग्रहण-समय में दान देने की। सो देश-काल-पात्र-विचारानुसार ग्रहण से अन्य समयों में दिया दान भी पुण्यकारक है और पात्र-अपात्र के विचार को त्याग कर ग्रहण-समय में दिया दान भी तमोगुणी दान है जो कि दाता और ग्रहीता

+ यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते। राज्यभंगं सुहृन्नाशं मरणं तस्य निर्दिशेत् ॥
यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ। तज्जातानां भवेत् पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः ॥
सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनम्। सदक्षिणं सवस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत् ॥
सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा निवेदयेत्। गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ॥
तमोमयं महाभीम! सोमसूर्यविमर्दन। हेमनागप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव ॥
एतानेव ततो मन्त्रान् स्वर्णपट्टे च संलिखेत्। कर्तुः शिरसि तं बद्ध्वा दद्याद् विप्राय मन्त्रकैः ॥
न तस्य ग्रहपीडा स्याद् यानबन्धुघनक्षयः। परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥

(मु० चि० ४.६) पर ‘पीयूषधारा’ पृ. २०१-२०३

ऊहापोह (विवेकशक्ति) 'ग्रहयोग' अशुभत्व-अविवेक

के लिये पाप-पात्रत्व का हेतु होगा। और ग्रहण दोष शान्त्यर्थ यज्ञ-प्रार्थना आदि की बात। सो सूर्य-चन्द्र ग्रहण से मानवविशेष को कष्ट-पीड़ादि विशेष होती ही नहीं है, तो शान्ति किसकी करनी है। किंच-

“सत्य यह है कि सारे ग्रह जड़ हैं, वे न तो हमारी-प्रार्थना सुनते हैं, न आहुतियाँ लेते हैं। जड़ग्रह अपनी प्रकृति के अनुसार हमें कुछ देते हैं, पर ज्ञान-विज्ञान द्वारा उनसे उसका सौ-गुणा पाया जा सकता है, किन्तु याचना से कुछ नहीं। ग्रह आदि से मांगने की परम्परा ने देश में भिखमंगों की एक विशाल सेना तैयार कर दी है। पूजा प्रार्थना केवल एक परमेश्वर की उचित है। पर वह भी कर्मठता और सत्कर्मों द्वारा। ग्रहण एक प्राकृतिक घटना है। जैसे मेघों से सूर्य चन्द्र आच्छादित हो जाते हैं, उसी प्रकार वे चन्द्रमा और पृथिवीछाया से ढक जाते हैं, अतः इनसे भयभीत होना अज्ञान है” ७।

'ग्रहयोग'-अशुभत्व-अविवेक

विवेकबुद्धि-शून्य लोगों को ग्रहों के योग (= ग्रहों के एक सीध में हो जाने) से भी भारी भय लगता है।

“ज्योतिष पांच, छः, सात, आठ ग्रहों के योग को भी भयंकर मानता है। उसका कथन है, कि इस स्थिति में उत्पन्न शिशु प्रायः दरिद्र और मूर्ख होते हैं” ८।

“संवत् २०१८ की माघी अमावास्या (चार फरवरी १९६२ ई०) को अष्टग्रही योग हुआ था। उस समय ज्योतिषियों और अन्य भविष्य वक्ताओं के कथन से जनता अतिशय भयभीत हो गई थी और चारों ओर बड़े-बड़े यज्ञ, कीर्तन और पाठ होने लगे थे। ऐसा लगता था कि प्रलयकाल आ रहा है, अब धरती-आकाश फट जायेंगे, पर हुआ कुछ नहीं। यद्यपि हमें आकाश में कुछ दीवारों, पर्वतों या ऐसे बांधों का दर्शन नहीं होता, जो उनको अनेक भागों में विभाजित करते हों, पर ज्योतिषियों ने ऐसे बांधों की कल्पना की है। एक ग्रह तीन राशि एक अंश ($3/9$) हो और दूसरा $3/29$ हो, तो वे कर्क राशि के दो बांधों में बंधे माने जाते हैं। जब कि दोनों में 24 अंश का अन्तर है। इस स्थिति को दो ग्रहों का योग कहा जाता है, पर यदि एक ग्रह $3/29$ हो और दूसरा $8/9$ हो अर्थात् दोनों में केवल दो अंश का अन्तर हो, तो योग नहीं माना जाता क्योंकि दोनों के बीच में आकाश में एक बहुत ऊंची दीवार या पर्वतमाला मान ली गई है। यह है ज्योतिष की लीला!। संवत् २०१८ में शनि ९/४, सूर्य ९/२२ और राहु ९/

७ ह० ज्यो० ध० (पृ. ३७८)

८ प्रायो दरिद्रो मूर्खश्च षड्भिर्वा पञ्चभिर्ग्रहैः। (मानसागरी - ग्रहयोगाध्याय)

बुद्धि के गुण

२९ था, फिर भी अष्टग्रही योग मान लिया गया, क्योंकि सबकी राशि एक थी, बांध एक था, जब कि वह काल्पनिक बांध भी प्रतिवर्ष ५०.२ विकला चलता है किन्तु आपको जानना चाहिये, कि ग्रहों में बहुत दूरी है, अतः उनका योग कभी हो ही नहीं सकता। एक सीध में आने पर कुछ शुभ या अशुभ प्रभाव हो सकता है, पर उसका बोध वैज्ञानिक बुद्धि और प्रयोग से होगा, काल्पनिक विद्या से नहीं। कोई अंग्रेजी पढ़ा ज्योतिषी या व्यास इंग्लिश में किसी प्राचीन भ्रम का समर्थन करता है, तो हमें उसका कथन देववाणी सा लगता है, किन्तु अब निर्भीक होकर, ज्योतिष की उन इंग्लिश पत्रिकाओं से पूछना है, कि अष्टग्रही वाली आपकी भविष्यवाणी मिथ्या क्यों हो गई K?

विश्व के महान् भविष्यवक्ता भविष्यवाणियाँ कर रहे थे, कि सन् १९८० में विश्वसंहार हो जायेगा। किन्तु ये सब घोषणाएँ झूठी ही साबित हुई। इसलिये ग्रहों के योग से भयभीत होकर निर्बुद्धिता का शिकार नहीं होना चाहिये।

ग्रह-अस्त-भय (तारा डूबना) – अविवेक

ग्रह-सम्बन्धी प्रपञ्च-जाल में तारा-डूबने (= ग्रह - अस्त होने) का भी एक भारी अविवेक है। ज्योतिषी लोगों के बहकावे में अच्छे अच्छे पढ़े लिखे लोग भी शुभ कर्म करने से डर जाते हैं, क्योंकि अब तारा डूबा हुआ है। यह सब अनार्थ ज्योतिषियों के ग्रन्थों द्वारा दिखाये गये भयों के कारण है। मुहूर्त्त चिन्तामणि की 'पीयूष धारा' टीका में बादरायण के नाम से लिखा है- "गुरु (= बृहस्पति) ग्रह के अस्त हो जाने पर यदि विवाह किया जायगा तो पति मर जायेगा, शुक्र के अस्त रहने पर विवाह होगा तो कन्या (= पत्नी) मर जायेगी। चन्द्र के अस्त होने पर विवाह करने से दोनों ही नष्ट हो जायेंगे"। आगे शार्ङ्गीयविवाह पटल को उद्धृत करते हुए लिखा है- 'गुरु या शुक्र के अस्त हो जाने पर विवाह, उपनयन, यात्रा अथवा गृहनिर्माण करने से कर्त्ता निश्चित ही मृत्यु को प्राप्त जायेगा"। आगे भारद्वाज और श्रीपति के नामों को देकर कहा- 'शुक्र ग्रह के विवर्ण होने पर, वक्री होने पर अथवा अस्त हो जाने पर यात्रा न करो। यात्रा करोगे तो लक्ष्मी, आयु और बल का नाश होगा।'

K ह० ज्यो० घ० (पृ. २२५-२२६)

M गुरोरस्ते पतिं हन्याच्छुक्रास्ते चैव कन्यकाम्। चन्द्रे नष्टे उभौ हन्यात्तस्मादस्तं विवर्जयेत् ॥
विवाहो व्रतबन्धो वा यात्रा वा गृहकर्म च। गुरावस्तमिते शुक्रे ध्रुवं मृत्युं विनिर्दिशेत् ॥
(मुहूर्त्त चि० १.४७ पर पीयूष०)
विवर्णे विजिते नीचे वक्रिते वा सितेऽस्तगे। शत्रुग्रहयुते वापि तदंशे तन्निरीक्षिते ॥
यात्रां नैव प्रकुर्वीत लक्ष्म्यायुर्बलहानिदाम् ॥

‘शुक्रास्त पर यात्रा करने वाला चाहे अतिबलशाली राजा भी क्यों न हो, वह शीघ्र शत्रु के वशीभूत हो जायेगा’^N।

कितना भयभीत कर दिया है, देश और जाति के प्रच्छन्न शत्रुओं ने! और कितने मूढ़ हैं, वे जन जो बुद्धि के तर्क को बिना काम में लाये इन काल्पनिक बातों पर विश्वास करके शुभकर्म करने से विरत हो जाते हैं!।

‘ग्रहों के अस्त दो प्रकार के होते हैं। (१) जब वे क्षितिज के नीचे चले जायँ।

(२) जब वे सूर्य के पास चले जायँ। ज्योतिष शास्त्र पाप-ग्रहों के अर्थात् सूर्य, मंगल और शनि के अस्त को अशुभ नहीं कहता, पर शुभ ग्रहों (= बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र) के अस्त में विवाह, यात्रा, गृहप्रवेश और युद्धादि सब काम बन्द कर देता है। वस्तुतः ग्रहों का क्षितिज के नीचे जाना ही अस्त है, क्योंकि उस समय उनकी किरणें हमारे शरीर पर नहीं पड़ती, पर ज्योतिषी उसे अशुभ नहीं मानते। वे सूर्य के सान्निध्य को ही भीषण कहते हैं, जब कि इस समय ग्रह अधिक तेजस्वी हो जाते हैं और उनकी किरणें हम पर पड़ती रहती हैं। आजकल ग्रह दूरबीनादिकों से उस समय भी देखे जा सकते हैं, जब हम उन्हें अस्त मानते हैं। सचमुच अस्तकाल में ग्रह आकाश छोड़कर कहीं भाग नहीं जाते और सत्य तो यह है, कि सूर्य-चन्द्र को छोड़कर शेष ग्रह समाप्त हो जायँ, तो भी हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है, कि मंगल और गुरु के बीच में किसी समय हमारी पृथ्वी से नब्बे गुना बड़ा एक ग्रह था, पर अब टूट जाने से, उसके कुछ टुकड़े मात्र रह गये हैं और वे दिखाई नहीं देते अर्थात् वह ग्रह सदा के लिये अस्त हो गया है। आकाशगंगा के पास अलगोल और मिरा आदि अनेक ऐसे रूपविकारी तारे हैं, जो कभी अदृश्य हो जाते हैं और कभी दिन में भी दिखाई देते हैं। आकाश में ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं, अतः किसी ग्रह का कुछ दिनों के लिये सूर्य के पास चला जाना भयावह नहीं है’।

‘ज्योतिष ने मंगल के भी अस्त होने और सामने रहने में भीषण दोष बताये हैं। शुक्र और गुरु की ही भांति बुध का अस्त भी अशुभ है। किन्तु बुध प्रायः अस्त रहता है। उसके दिखाई देने के अवसर बहुत कम आते हैं। वह सूर्य से २७ अंश से अधिक दूरी पर कभी जाता ही नहीं, क्योंकि सूर्य की प्रदक्षिणा करने वाले ग्रहों में वह सूर्य का सबसे निकटवर्ती है। ज्योतिषी उसे सूर्य से तेरह अंश दूर रहने पर अस्त मानते हैं, किन्तु वह १७ अंश दूर रहने पर ही अदृश्य हो जाता है। ३४८ दिनों में वह छः

N ‘प्रस्थितो नरपतिः प्रबलोऽपि क्षिप्रमेव वशमेति रिपूणाम् ॥ (मु० चि० ११.४१ पर पीयूषं)

बुद्धि के गुण

बार अस्त होता है और अस्त होने पर अनेक बार तो वह ४३ दिनों तक अदृश्य रहता है। यह हमारे देश की बात है। शीतप्रधान देशों में तो, वह कभी दिखाई ही नहीं देता। विश्व के प्रख्यात ज्योतिषी कोपर्निकस पूरे जीवन में बुध का दर्शन न कर सके। यदि उन देशों के लोग, शत्रु का आक्रमण होने पर बुध के दर्शन की प्रतीक्षा करें, तो क्या स्थिति होगी? मंगल की स्थिति उससे भी विचित्र है। वह तो पांच मास तक लगातार अस्त रहता है। केवल मंगल और शुक्र के अस्त संमुखत्व को घातक मानने पर, हमें अनेक बार शत्रु के सामने जाने में डेढ़ वर्ष तक रुकना होगा, अतः यह फल मान्य नहीं^N।

ऐसे ग्रह—अस्त के — तारा डूबने के काल्पनिक भयङ्कर फलों के बताने के कारण ही, हमारे शूरवीर पूर्वज अनेक बार विदेशी आक्रान्ताओं का समय पर प्रतिरोध न कर सके और शत्रुओं को जीतने में समर्थ होते हुए भी उनसे पराजित होते गये और असंख्यों धन—जन गंवा बैठे और परतन्त्र हो गये।

“ग्रहों के अस्त से भयभीत होकर सैकड़ों शुभकर्माँ को बन्द करते देख, हमारे उन ओजस्वी पूर्वजों की आत्मा अपने बच्चों की नपुंसकता पर अवश्य दुःखी होती होगी, जो ग्रहराज सूर्य के अस्त को भी अस्त नहीं मानते थे^P।

वेदों में और वैदिक साहित्य में अनेक बार सूर्य को ही शुक्र (तेजस्वी, बली आदि कहा गया है^Q। और हम प्रायः सूर्यास्त में ही विवाह करते हैं। इसलिये सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते सूर्यशिशु शुक्र के अस्त को अशुभ मानना व्यामोह है।

ग्रह अस्त होने के कुछ दिन पूर्व उसे वृद्ध, उदित होने के बाद कुछ दिनों तक बाल और उलटा चलने पर वक्री माना जाता है। परन्तु इन कथनों में अनेक शंकाएँ हैं (१) इन दोषों को संसार के अन्य देश तथा भारत के ईसाई और मुसलमान नहीं मानते, तो विवाह, यात्रा और गृहारम्भ आदि करने पर उनका सर्वनाश क्यों नहीं हो जाता? (२) जो आचार्य पृथ्वी को स्थिर मानते थे अर्थात् ग्रहों के अस्त और वक्रादि अनेक स्थितियों की उपपत्ति नहीं जानते थे, उन्हें इन अस्त आदि दोषों के सूक्ष्म परिणाम को जानने की दिव्य दृष्टि कैसे प्राप्त हो गई?। (३) गुरु, शुक्र आदि सब ग्रह सूर्य की ही किरणों से प्रकाशित होते हैं, परन्तु हमारे प्रान्त में शतप्रतिशत विवाह सूर्यास्त में अर्थात् रात्रि में होते हैं। सूर्यास्त में विवाह हो सकता है, तो गुरु—शुक्र के अस्त में क्यों

N ह° ज्यो° घ° (पृ° २२२-२२४)

P ह° ज्यो° घ° (पृ° २२४)

Q तेषां भानुरजस्त इच्छुको देवेभु रोचते (यजु° ११.५४); असौ वा आदित्यः शुक्रः (श° ब्रा° १.४.२.२१)

ऊहापोह (विवेकशक्ति) 'ग्रह-अस्त-भय' अविवेक

नहीं? (४) क्या गुरु-शुक्र के अस्त का वातावरण पर प्रभाव पड़ता है? क्या आपको उसका अनुभव होता है? (५) शुक्र के उदित रहने पर भी विवाह के समय वर-वधू पर उसकी किरणें नहीं पड़ती, क्योंकि प्रहर रात्रि (९ बजे) के बाद वह सदा क्षितिज के नीचे रहता है, तो उसके उदय से क्या लाभ हुआ? 'W।

वास्तविक बात यही है, कि यह सब भयभीत करने का कुचक्र है। जैसा कि अन्य ज्योतिष-सम्बन्धी भयप्रद फलों के मूल में है, तारा डूबने (= ग्रह-अस्त होने) के भयानक फल प्रचारित करने के मूल में भी भोले भाले यजमानों से धनहरण करने का उद्देश्य है। शुक्रसम्बन्धी दोषों के निवारणार्थ- उनकी शान्ति के लिये मुहूर्त चिन्तामणि ११.४० की पीयूषधारा में 'वसिष्ठ' और 'दीपिका' नाम से फरमान जारी किया गया है-

'शुक्र ग्रह के लग्न में, शुक्रवार में, शुक्र के वर्ग में और शुक्र के उदय में उपवास करो। एक कांसे के बड़े पात्र में चावलों से आठ दलों वाला कमल बनाओ। उस पर शुद्ध चांदी से बनी हुई शुक्रग्रह की मूर्ति स्थापित करो। उस मूर्ति को सुन्दर बारीक श्वेत वस्त्रों से ढको। फिर सफेद पुष्पों से, अक्षत से और सुगन्धित मुक्ताहारों से उसकी पूजा करो। अनेक मन्त्रों द्वारा उस मूर्ति से शान्ति हेतु प्रार्थना करके अनेक आभूषणों से युक्त उस शुक्र की रजतमूर्ति को ज्योतिषी को ही दान दे दो और साथ ही सफेद घोड़ा भी दान करो। अन्य ब्राह्मणों को भी दक्षिणा दो और भोजन करावो। शुक्रग्रह की शान्ति के लिये ब्राह्मण को सफेद घोड़ा और सफेद छत्र प्रदान करे, किन्तु उन पर सोने और मोतियाँ की लड़ें, लटकाकर देवे। अन्य ग्रहों की शान्ति के लिये भी ऐसी पूजा करे। सूर्यशान्ति के लिये कपिला गौ देवे। चन्द्रशान्ति हेतु शङ्ख, मङ्गलशान्ति के लिये बैल और बुधग्रह की शान्ति के लिये सोना दान करे। ऐसा करने से ग्रहों के दोष तत्क्षण ही दूर हो जाते हैं*।

W ह° ज्यो० घ० (पृ० २२६)

* भृगुलग्ने भृगोवरि भृगोर्वर्गे भृगूदये । उपोष्य भृगुवारेऽपि यावच्छुक्रोदयं प्रति ॥
रजतेन च शुद्धेन कारयेत् प्रतिमां भृगोः । लिखेदष्टदलं पद्यं कांस्यपात्रे च तण्डुलैः ॥
शुक्लसूक्ष्माभ्रैर्वेष्ट्य प्रतिमां तत्र पूजयेत् । शुक्लपुष्पाक्षतैर्गन्धैर्मुक्ताहारैर्विचित्रितैः ॥
इति प्रार्थ्य प्रयत्नेन प्रतिमा भूषणान्विता । देवज्ञायैव दातव्या श्वेताश्वसहितैव च ॥
शिष्टेभ्यो दक्षिणां दद्यात् ... ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् ... ॥
सितमश्वं सितं छत्रं हेममौक्तिकसंयुतम् । ततो द्विजातये दद्यात् प्रतिशुक्रप्रशान्तये ॥
इतरेषां ग्रहाणां च पूजां कुर्यात् प्रयत्नतः । सूर्याय कपिलां दद्याच्छंखं चन्द्रमसे तथा ।
कुजाय वृषभं दद्यात् स्वर्णं दद्याद् बुधाय च ।
तत्तत्सम्मुखजो दोषस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥

बुद्धि के गुण

वाह! वाह!! हो गया आनन्द! न खेती में शरीर तोड़ना पड़ा, न व्यापार में दिमाग लगाना पड़ा, न नौकरी-चाकरी की गुलामी करनी पड़ी और न ही छात्रों को पढ़ाने में माथापच्ची करनी पड़ी। बस, मिल गया सोना, चांदी, घोड़ा, बैल और सफेद सुन्दर पोशाक और भोजन को बासमती चावल। क्या सुन्दर प्रबन्ध किया है, पीढ़ी दर पीढ़ी के लिये। अरे! पृथिवी से लाखों कोस दूर वर्तमान शुक्र के अस्त या वक्री आदि होने से यदि कोई दोष या दुष्ट फल होता है, तो ज्योतिषी को चांदी या सफेद घोड़ा दान करने से वे दोष कैसे मिट जायेंगे? क्या सफेद वस्तु का दान कोई पेट्रियट मिसाइल है जो शुक्रदोष रूपी स्कड मिसाइल को काट डालेगा? स्पष्ट है कि अस्तभय मात्र धन लेने का साधन बनाया गया है। ग्रहशान्ति हेतु दान या यज्ञ आदि की वास्तव में कोई उपादेयता नहीं है। जब ग्रहादि के अस्त आदि से कोई दोष या कुफल होता ही नहीं तो शान्ति किसकी? सत्य लिखा है श्री आचार्य हरिहर पाण्डेय ने— “हम प्रातःकाल पूर्व मुख से और सायंकाल पश्चिममुख से सन्ध्योपासन करते हैं और उस समय शुक्र निश्चित रूप से पूर्व या पश्चिम में रहता है, पर हमें कोई हानि नहीं पहुंचाता और हर समय कोई न कोई ग्रह दायें-बायें विराजमान रहता है। ग्रहों के अतिरिक्त अनेक तारे हैं, तो हम भागकर कहाँ जायेंगे और कितना दान करेंगे? वस्तुतः जड़ शुक्र और जड़ सूर्यादि हमारी प्रार्थनायें नहीं सुनते, इसलिये ये शान्तियज्ञ पाखण्ड और वञ्चना हैं” (हं ज्यो० ध०। पृष्ठ ४०१)

जन्मकुण्डली (जन्मपत्री) – अविवेक

बालक के जन्म होने पर उसके जन्म की तिथि (तारीख), नक्षत्र, पक्ष, मास, वर्ष आदि को किसी प्रपत्र पर अथवा बही आदि में अङ्कित करके सुरक्षित रखना उपादेय है। पारिवारिक, सामाजिक, प्रशासनिक, न्यायिक, ऐतिहासिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक भी है। किन्तु तथाकथित जन्मपत्री (जन्मकुण्डली) बनाना-बनवाना अर्थात् बारह खाने (बारह राशियों के सूचक) बनाकर, उनमें नौ ग्रहों के स्थान निश्चित करना और फिर तदनुसार आयु, सन्तान, धन, विद्या, विवाह आदि के विषयक उल्लेख करना और उनके शुभ-अशुभ फल को बताना काल्पनिक है। यह प्रपञ्च भी धनसङ्ग्रह का साधन है। यह प्रपञ्च विवेकबुद्धि की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है।

“हम जन्मपत्री में ग्रहों को अपनी राशि में स्थित देखकर प्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु यह मिथ्या धारणा है, क्योंकि सब ग्रह सदा घूमा करते हैं, कोई किसी का घर नहीं है।”

“हम जन्मपत्री में ग्रहों को उनकी उच्च राशि में स्थित देखकर प्रसन्न हो जाते हैं और उस व्यक्ति को भाग्यशाली समझने लगते हैं, पर ज्योतिष के भास्कर आदि आचार्यों ने लिखा है, कि ग्रहकक्षा का जो भाग हमसे दूर है, वह उच्च है और जो निकट है, वह नीच है। तो क्या ग्रह दूर जाने पर प्रभावशाली और निकट आने पर प्रभावहीन हो जाता है? वस्तुतः हमारी यह उच्च-नीच की कल्पना भी निराधार है”।

“जन्मपत्री में ग्रहों की दृष्टि का बड़ा महत्त्व है, पर उसके सिद्धान्तों में मतभेद है और सबमें इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है, कि ३, ४, ५, ७, ८, ९, १० में दृष्टि पड़ती है, तो ६ में क्यों नहीं? ऐसे अनेक प्रश्न हैं”।

आयुष्य, सन्तान, धन आदि की प्राप्ति ग्रहों के आधीन नहीं है। इनका निश्चय कराने वाले अनेक आधुनिक ज्योतिषग्रन्थ तमोद्धूतन के समान हैं। इनके अनुसार निकाले गये निष्कर्ष प्रायः मिथ्या होते हैं। हम यहाँ काशी के सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद्या-भारत बहुश्रुत विद्वान् श्री आचार्य हरिहर पाण्डेय का एक प्रलेख उद्धृत कर रहे हैं—

“आयु ग्रहों के वश में नहीं है। यही स्थिति जन्मपत्री के हर भाव की है। जन्मपत्री पुत्रपुत्री की संख्या लिखी होती है, पर परिवार नियोजन द्वारा वह लेख मिटाया जा रहा है। यह विधान पहले भी था। साम्यवादी देशों में जनता की धनस्थिति पूंजीवादी देशों से भिन्न है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भारतसरकार ने राजाओं का राज्य ले लिया, बड़े भूमिदारों की भूमि ले ली। वहाँ ब्रह्मा और ग्रहों के प्रभाव को समाप्त कर दिया। ... भारत का आकाश नहीं बदला, ग्रह नहीं बदले, पर हमने स्थितियाँ बदल दीं। सन्तानभाव और विद्याभाव बदला है। पहले विद्याधीश लोग शूद्रों और स्त्रियों को विद्यास्पर्श भी नहीं होने देते थे, पर अब वे अधीश कहीं सो गये हैं। भारत, अमेरिका, रूस, वर्मा और वियतनाम पुत्रभाव और पत्नीभाव नियमों में बहुत अन्तर है, पर ग्रह सबके एक हैं। हमारे विभिन्न देशों के आदिवासियों, मुसहरों तथा भेड़िये की मांद से निकाले गये बच्चों के भी ग्रह हैं, जो बिरला-टाटा के बच्चों के हैं। डालमिया, सिंघानिया और विक्टोरिया के परिवार हर व्यक्ति की कुण्डली में राजयोग नहीं है, पर वहाँ दरिद्रयोग वाले भी राजा हैं”।

‘ज्योतिष में आयु के निर्णय की परस्पर विरुद्ध अनेक विधियाँ हैं। उनमें जैमिनिसूत्र और जातककेशवी को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है। किन्तु जैमिनिसूत्र का जातक न तो निर्विवाद अर्थ लग सका है, न उसके अनुसार सत्य आयु बताने

हो ज्यो० ध० (प्राक्कथन पृ० ७)

बुद्धि के गुण

में कोई समर्थ है। जैमिनि के फलादेश का मूलाधार है— लग्नेश, अष्टमेश और राशियों के चर, स्थिर तथा द्विस्वभाव आदि नाम। पर ये सिद्धान्त, उपपत्ति हीन हैं। वस्तुतः न तो कोई ग्रह किसी राशि का स्वामी है और न राशियाँ स्वस्थिर हैं। मेष चर है, तो वृष स्थिर क्यों? क्या सिंह और वृश्चिक स्थिर हैं? क्या आकाश में भिन्न भिन्न स्वभाव वाली १२ राशियाँ क्रम से बैठी हैं? क्या मेष सिंह पुरुष हैं? और वृष—वृश्चिक स्त्री हैं? क्या लग्न और अष्टम स्थानों के सचमुच आयु से कोई विशिष्ट सम्बन्ध है? जैमिनि का कथन है, कि जिस ग्रह के अंश सबसे अधिक हों, वह आत्मकारक है, उससे कम अंश वाले अमात्यकारक होता है और अंशों के ही आधार पर उसके बाद क्रमशः भ्राता, माता, पिता, पुत्र, जाति और पत्नी के कारक माने जाते हैं। यहाँ ग्रहों की राशियों का कोई महत्त्व नहीं है। क्या यह विधान तर्कसंगत है? क्या किसी ग्रह में अंशों की संख्या अधिक होने से विशिष्ट गुण आ जाते हैं? नक्षत्रचक्र के वास्तविक आरम्भ—स्थान से आरम्भ करने पर क्या ये अंश टिक पायेंगे? क्या महर्षि जैमिनि के समय राशियाँ प्रचलित थीं? हम लग्न को मानें कि जैमिनि के भावलग्न कोई कौन सत्य है? क्या शनि का नौकरों से, मंगल का माता व मित्रों से, बुध का मामा, मामी से, गुरु का पितामह—पितामही से और शुक्र का सास—ससुर आदि से कोई विशिष्ट सम्बन्ध होता है? यदि ग्रहों के अंशों और नवांशादिकों से ही सारे फल ज्ञात हो जाते हैं, तो राशि का इतना यशोगान क्यों? क्या जैमिनि के समय राशि और केतु ग्रह माने जा चुके थे?

जैमिनि सूत्र का दृष्टिनियम अन्यग्रन्थों से भिन्न है। इसमें १,४,१० राशियों में बैठे ग्रह एकादश स्थान को भी देखते हैं तथा २,५,८ और ११ में बैठे षष्ठ स्थान को भी देखते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक नियमों में भिन्नता है। सत्य यह है कि जैमिनि के नाम से यह ग्रन्थ लिखने वाले ने भी उन परम्पराओं को आंख मूंद कर मान लिया है, जिनमें कल्पना है, पर हेतु नहीं है, उपपत्ति नहीं है। धरती पर कहीं ऐसा क्रम दिखाई नहीं देता, कि पुरुषों और स्त्रियों, दुष्टों और सज्जनों के तथा चलों और अचलों आदि के ग्राम क्रम से और नियम से बसे हों; तो आकाश की राशियों में क्या क्रम कैसे बन गया? नक्षत्रों में पुरुष—स्त्री का जो नियम है, वह राशि में उलट जा रहा है। पुष्य पुरुष है, पर उसकी राशि कर्क स्त्री है। क्यों?

जातक केशवी में ग्रहों की नैसर्गिक मैत्री, तात्कालिक मैत्री, पञ्चधा मैत्री, होराबल, द्रेष्काणबल, नवमांशबल, द्वादशांश बल, त्रिंशांश बल, सप्तमांश बल, उच्चादि बल, सम-विषम-बल, केन्द्रादि बल, दिग्बल, नतोन्नतबल, पक्ष बल, दिन-रात्रि-बल, वर्ष-मास-होरेशादि-बल, अयन बल, चेष्टा बल, भावों का दृष्टिबल, स्वामिबल, दिग्बल, शुभ पंक्ति सप्तवर्ग, अशुभ-पंक्ति-सप्तवर्ग, इष्टबल, कष्टबल, सद्बल, असद्बल, चेष्टा गुण, आश्रय गुण, दायंश, अंशायु, पिण्डायु, निसर्गायु, जीवायु आदि के विवेचन द्वारा सूक्ष्म आयु जानने के लिये बृहत् प्रयत्न किया गया है। एक जन्मपत्री बनाने में महीनों लग जाते हैं, परन्तु सारा श्रम व्यर्थ होता है। गुरुजी का समक्ष मैंने उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर अपनी जन्मपत्री तीन बार बनाई, किन्तु आयु १० से अधिक किसी प्रकार नहीं आती और मैं इधर ६८ पूरा करने जा रहा हूँ। इन सबलों में घोर विरोध है'।

'राशि को छोटे छोटे टुकड़ों में बांटकर फल कहने की पद्धति वर्गसाधन है। किन्तु तो १५ से भी अधिक हैं, पर सात की विशेष प्रसिद्धि है। बड़ी जन्मकुण्डलियों में १० तक टुकड़े किये जाते हैं। इससे फल में सूक्ष्मता तो नहीं आती, पर कुण्डली लम्बी हो जाती है। बीच में चित्रकारी करने पर दक्षिणा और भी बढ़ जाती है। यजमान उसमें अपनी सन्तान का मनोरम भविष्य देखता है। यद्यपि इन टुकड़ों के होरा, द्रेष्काण आदि शब्द विदेशी हैं, पर हुक्का, तमाखू की भांति हमने इन्हें अपना लिया है और अब तो इनके नये नाम भी रख दिये गये हैं...।'

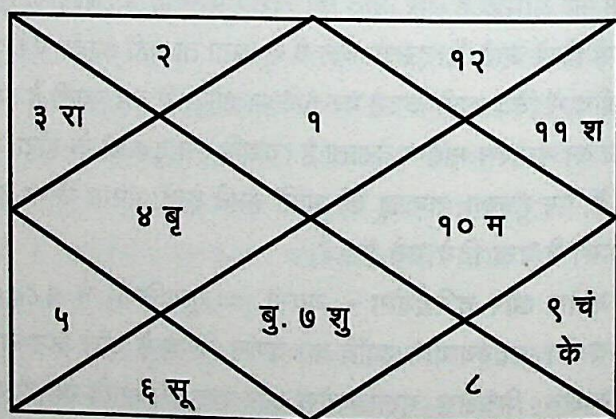
'राजयोग और दरिद्रयोग - यवनों (= यूनानियों) ने १८०० नामसयोग, राजयोग, चन्द्रयोग, प्रव्रज्यायोग आदि का वर्णन किया है और उन सबों में ग्रहों के उच्च, नीच, स्वक्षेत्र, मित्रक्षेत्र, मूलत्रिकोण और शत्रुक्षेत्र आदि का ही महत्त्व है। जब इसकी न कोई उपपत्ति है, न प्रत्यक्ष अनुभूति है। ग्रहस्थिति की छाता, मूसल आदि कृतियों के भी फल लिखे हैं, किन्तु प्रत्यक्ष में ये सारे योग मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं। इसके यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

संवत् २०११ भाद्र० शुक्ल (१९५४ सितंबर) से एक ऐसी उच्च ग्रहस्थिति प्रारंभ होती है, जिसमें कई सौ राजयोग हैं। यहाँ बुध, गुरु, शनि, उच्च हैं और शनि ग्रह स्वक्षेत्रीय और मित्रक्षेत्रीय हैं। इतना ही नहीं नवमांश में भी यही उच्च स्थिति है। इसके बाद आश्विन में बुध, शुक्र, और शनि, मित्रग्रहों का तुला राशि में योग

बुद्धि के गुण

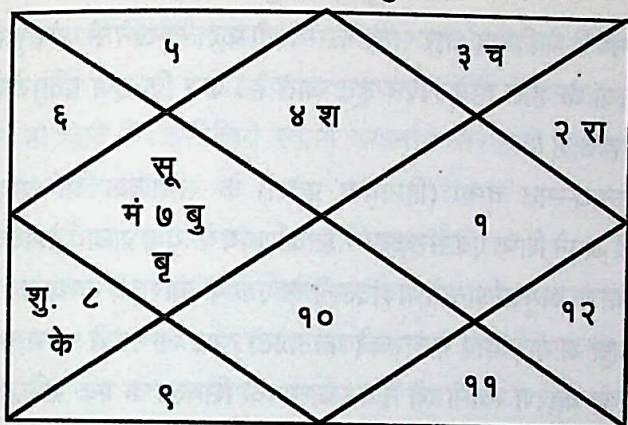
हो रहा है, जो महान् राजयोग है। मंगल अपने मित्रक्षेत्र धनु राशि से उच्च राशि मकर में और उच्च नवमांश में जा रहा है। इसका मित्र सूर्य भी मित्र के साथ मित्रक्षेत्र में है। उसके आगे मंगल के थोड़ा बदलते ही सूर्य अपने परम मित्रों की वृश्चिक और धनु राशियों में आ जाता है। ऐसे योग बड़े भाग्य से मिलते हैं। मंगल के बदलने पर भी योगों के श्रेष्ठत्व में कोई न्यूनता नहीं आती। बीच में थोड़ा वक्री होने के बाद गुरु पुनः स्वोच्च में आ जाता है। इस प्रकार पूरे वर्ष भर अगणित राजयोग रहते हैं। मैंने जिज्ञासुबुद्धि से इनमें उत्पन्न कम से कम २५० बच्चों की कुण्डलियों का परीक्षण किया, अब तो वे २४ वर्ष के हो गये हैं। नवीन पीढ़ी परीक्षा करके देख ले। उसे मानना होगा कि इन सबों में विक्रमादित्य के राजयोग हैं। पर स्थिति निराशाजनक है”। (हं ज्यो० घ० पृष्ठ ३०७-३०९)

‘संवत् १९६४ (सन् १९०७) में भी अनेक उच्च और राजयोगकारक ग्रह रहे थे।



यह कुण्डली किसी दीर्घायु, पुत्र पौत्रवान्, चक्रवर्ती राजा की होनी चाहिये। पर इस जन्मकुण्डली वाले श्री कलउसिंह सन्तानहीन और एकाक्ष थे। पहले सिपाही थे। फिर खेती करने लगे। खेती भी थोड़ी सी थी। संवत् २००६ (सन् १९४९) में प्रायः सब ग्रह नीचे थे* उस समय जन्मने वाले की कुण्डली नीचे दी जा रही है। पर इस कुण्डली वाले ने प्रयाग विश्वविद्यालय से पांच पदक प्राप्त किये हैं—

* स्रोत (हं ज्यो० घ० पृ० ३०९)



परीक्षणार्थ कुछ अन्य जन्म कुण्डलियाँ भी देखने योग्य हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि यह जन्मकुण्डली (जन्मपत्री) एक भ्रम-चक्र है और तदनुसार फलकथन कल्पित और मिथ्या है। ज्योतिर्विद् महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है—

“काशी स्थित औदीच्य ब्राह्मण श्री दुर्गाशङ्कर पाठक अपने समय (१७८७ ई०) में जगद्गुरु कहे जाते थे। वे ज्योतिष, व्याकरण, काव्य, तन्त्र आदि अनेक विषयों के उच्च कोटि के विद्वान् थे। लाहोर-नरेश श्री रणजीतसिंह के निधन के बाद खड्गसिंह उन्हीं के मुहूर्त से सिंहासन पर बैठे। उसके बाद उन्होंने पाठक जी से नवनिहाल सिंह का जन्मपत्र बनवाया। वह नाना प्रकार के विचित्र चित्रों से सुशोभित एवं अनेक विशेषताओं के कारण बहु विस्तृत था। उसे देख हर्षित होकर लाहोर नरेश ने उन्हें एक लाख मुद्रा के लगभग धन दिया। नवनिहाल सिंह की अकस्मात् मृत्यु हो गई पर जन्मकुण्डली में इसकी कोई सूचना नहीं थी। इससे पाठक का महान् अनादर हुआ। जन्मपत्र में लिखी मिथ्या बातों से लाहोर के लोग इतने क्रुद्ध हो गये, कि पाठक को मृत्युभय उपस्थित हो गया। परन्तु वहाँ के कोटाधीश लहनासिंह ने बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार काशी में उन्हें सुरक्षित पहुँचा दिया। काशी के छन्नूलाल वकील द्वारा यह जन्मपत्र पोर्टर साहब ने प्राप्त किया और उनकी पत्नी उसे लेकर अपने देश चली गई”। (गणकतरंगिणी पृ. ११८)

यह है आज से २०० वर्ष पूर्व की एक लाख (वर्तमान के एक करोड़ से अधिक) रुपयों की दक्षिणा वाले जन्मपत्र के फलादेश की स्थिति! फलादेश लिखने वाले थे ज्योतिर्विद्या-पारङ्गत एक महाज्योतिषी!!

बुद्धि के गुण

जन्मपत्री में विवाह और सन्तानसम्बन्धी फल लिखने से और उन पर विश्वास करने से कइयों के होते होते रिश्ते टूट जाते हैं। जब कि इस प्रकार के फलकथन मिथ्या सिद्ध होते हैं।

दयानन्द—मठ चम्बा (हिमाचल प्रदेश) के संचालक श्री आदरणीय स्वामी सुमेधानन्द जी अपने शिष्य एवं संस्कृत—महाविद्यालय के युवा प्राचार्य के विवाह—सम्बन्ध—हेतु योग्य कन्या के अनुसन्धान में थे। दिल्ली के एक परिवार की कन्या का प्रस्ताव प्राचार्य के पिता के पास आया। पिता ने लड़की का फोटो तथा जन्मपत्री चम्बा भेज दी। प्राचार्य की उत्सुकता के कारण स्वामी जी ने वह जन्मपत्री शिमला के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी (जो कि एक राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य भी थे) को दिखाई। उस समय एक और विद्वान् श्री रामानन्द भी वहाँ उपस्थित थे। जन्मपत्री देखते ही उक्त ज्योतिषी जी ने कहा कि “यह विवाह न कराना, लड़की के गर्भपात हो जाया करेंगे, सन्तान का योग नहीं है”। जब स्वामी जी ने बलपूर्वक कहा कि हम इसी कन्या के साथ अपने प्राचार्य का विवाह करायेंगे और सन्तान अवश्य होगा, तो वे ज्योतिषी महानुभाव नाराज हुए कि ऐसा करके स्वामी जी अपने शिष्य के प्रति अन्याय करेंगे।

स्वामी जी के आदेशानुसार प्राचार्य के पिता ने उसी कन्या के साथ रिश्ता पक्का कर दिया और सन् १९८० के मार्च में विवाह भी हो गया। गर्भस्थिति होने पर तीसरे मास में पुंसवन—संस्कार के समय स्वामीजी ने होने वाले बालक का नाम ‘ऋषिकुमार’ रख दिया। लड़की क्योंकि पौराणिक परिवार की थी, इसलिये उसके आत्मा में कहीं संशय की रेखा थी, कि यदि लड़का न होकर लड़की हो गई, तो नाम रखना व्यर्थ हो जायेगा। पर स्वामी जी ने आयुर्वेदिक ओषधियों, गर्भाधानसम्बन्धी नियमों और यज्ञ की शक्ति पर विश्वास दिलाते हुए कहा कि ‘निश्चय ही बेटा! तुम्हारे बालक ही होगा। आठवें महीने प्रसव हेतु प्राचार्य—पत्नी दिल्ली अपने पीहर चली गई। दसवें महीने में ता. ५ अप्रैल सन् १९८१ को बालक का जन्म हुआ। लड़की के पिता ने स्वामी जी को सूचित किया “कि ऋषिकुमार जी अवतरित हो गये हैं”। ऋषिकुमार के नाना—नानी आदि को यज्ञ आदि पर अपार श्रद्धा हो गई और जन्मपत्री के फलों पर अश्रद्धा। तब उन्होंने यह भी बताया कि इस जन्मपत्री के कारण ही हमारी इस लड़की के दो तीन रिश्ते टूट भी गये थे। किन्तु धन्य है स्वामी जी को जिन्होंने साहस करके हमारी कन्या स्वीकार कर ली और जन्मपत्री को मिथ्या सिद्ध कर दिया। ऋषिकुमार इस समय अठारहवें वर्ष में हैं और शास्त्री (प्रथमवर्ष) के योग्य, निष्ठवान् मेधावी छात्र हैं।

यह तो हुई स्वामीजी जैसे बुद्धिशाली साहसी मनुष्यों की बात। किन्तु साधारण मनुष्य जो कि तर्कबुद्धि के धनी नहीं हैं, वे तो इन जन्मपत्रियों के आतङ्क से आतङ्कित होकर शोकमग्न हो जाते हैं। इसीलिये स्वामी दयानन्द सरस्वती इन जन्मपत्रों को शोकपत्र कहते हैं। वे लिखते हैं—

“(प्रश्न) क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है?

(उत्तर) हां, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम ‘शोकपत्र’ रखना चाहिये, क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है, तब सबको आनन्द होता है। परन्तु वह आनन्द तब तक होता है, कि जब तक जन्मपत्र बनके ग्रहों का फल न सुनें। जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है, तब उसके माता-पिता पुरोहित से कहते हैं— ‘महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये’। जो धनाढ्य हो तो बहुत सी लालपीली रेखाओं से चित्र-विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बना के सुनाने को आता है। तब उसके माँ बाप ज्योतिषी जी के सामने बैठ के कहते हैं— ‘इसका जन्मपत्र अच्छा तो है?’ ज्योतिषी कहता है— ‘जो है सो सुना देता हूँ। इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं। जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा, तो सबके ऊपर इसका तेज पड़ेगा। शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा’। इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं— ‘वाह-वाह ज्योतिषी जी! आप बहुत अच्छे हो’।

ज्योतिषी जी समझते हैं, इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है, कि ‘ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं, परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने-फलाने ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्युयोग है’। इसको सुनके माता-पिता आदि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोकसागर में डूबकर ज्योतिषी से कहते हैं, कि महाराज जी! अब हम क्या करें?’। ज्योतिषी जी कहते हैं, ‘उपाय करो’। गृहस्थ ‘क्या उपाय करें?’ ज्योतिषीजी प्रस्ताव करने लगते हैं, कि ‘ऐसा ऐसा दान करो। ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे, तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे’। ‘अनुमान’ शब्द इसलिये है, कि जो मर जायेगा, तो कहेंगे हम क्या करें, परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है। हमने तो बहुत सा यत्न किया और तुमने कराया, उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाय तो कहते हैं, कि देखो— हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है? तुम्हारे लड़के को

बुद्धि के गुण

बचा दिया। यहाँ यह बात होनी चाहिये, कि जो इनके जपपाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहियें और बच जाय तो भी ले लेने चाहियें। क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि 'इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं' वैसे गृहस्थ भी कहें; कि 'यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है, तुम्हारे करने से नहीं।' (सत्यार्थ० द्वि० समु०)

फलित ज्योतिष—अविवेक

ऊपर पक्वतण्डुल—न्याय से कुछ ज्योतिष सम्बन्धी भयों और अन्धविश्वासों का दिग्दर्शन कराया गया है। ऐसे सहस्रों मिथ्या भयों का विस्तृत वर्णन वर्तमान ज्योतिष ग्रन्थों में उल्लिखित है। हरिण, गधा, भैंसा, हाथी, गीध, कौवा, बाघ, मगर आदि के सदृश आकृति वाले मेघों से सूर्य ढक जाय, तो राष्ट्र को भीषण भय होगा। चन्द्रमा का दक्षिण शृंग ऊँचा होने पर भय होगा, मंगल के वक्री होने पर भय होगा, शनि के लाल होने पर भय होगा, पताका दक्षिण की ओर फहराने पर भय होगा, उल्का की आकृति बन्दर या मगर सदृश होने पर भय होगा, लाल और पीली हो तो भय होगा, मलमास और खलमास में विवाह आदि करने पर भय होगा। छिपकली कहाँ गिरी, गिरगिट किधर दौड़ा, खंजन का मुख किधर था, छींक कितनी बार आई, खुजलाहट कहाँ हुई, स्वर कौनसा चला, अंगस्फुरण किधर हुआ, आंख नीचे फड़क रही है कि ऊपर, अपशकुनों का भय आदि ये सब भय के सागर हैं।

यह सब भयलीला ज्योतिष के उस भाग की है, जो फलितज्योतिष नाम से जाना जाता है। गणित ज्योतिष से ग्रह—नक्षत्र आदि की गति और अयन का ज्ञान होता है, जो कि सत्य पर आधारित है। पर फलित ज्योतिष मनघड़न्त है और एक बुझौल है, काल्पनिक है। लग जाय तो तीर नहीं तो तुक्का। इस फलित ज्योतिष का प्राचीन वेदांग ज्योतिष और वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस फलित ज्योतिष के द्वारा प्रचारित अपशकुनादिक भयों का मनुष्यों के मनों पर इतना आतङ्क बैठ गया है, कि वे हर वस्तु से शङ्कित रहते हैं। उन्हें हर प्राणी से अनिष्ट की शङ्का रहती है। बिल्ली भी उन्हें वहीं का वहीं खड़ा कर देती है।

कोई १६ वर्ष पूर्व की घटना है। इन पंक्तियों का लेखक ब्यावर (जि० अजमेर) से बस में बैठा। उसे अलवर जाना था। आठ घंटे की यात्रा थी। इसलिये मैं ड्राइवर के पीछे वाली (अर्थात् सबसे अगली) सीट पर बैठा। ठीक आठ बजे बस रवाना हुई।

ब्यावर के छावणी क्षेत्र से जैसे ही बस बाहर निकली, कि ड्राइवर ने बस एक तरफ खड़ी कर दी। मैंने ड्राइवर से पूछा कि क्या बात हो गई? ड्राइवर— 'आज मेरे हाथ से (= मेरी बस से) कोई मरेगा। मैं— "क्या मरने वाले की ओर से अभी अभी कोई सूचना आई है, कि मैं आपकी बस से मरने वाला हूँ" ड्राइवर— "नहीं। पर अभी बिल्ली रास्ता काट गई, इसलिये कोई मरेगा"। मैंने खड़े होकर आगे की सड़क को देखा और कहा "भाई! रास्ता तो बिल्कुल ठीक है, और बिल्ली इस रास्ते को काट भी नहीं सकती"। ड्राइवर— "अजी। बिल्ली अभी बस के सामने बाँई और से दाँई ओर सड़क को क्रास करके गई है। बस, यह अपशकुन हो गया है, कोई मरेगा"। मैं— 'भले आदमी! क्यों मन को कमजोर बनाते हो। बिल्ली के इधर से उधर जाने आने का और किसी के मरने जीने का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। बिल्ली इधर से उधर गई है, तो उसको या तो उधर कोई खाद्य वस्तु दिखी होगी या कुत्ते आदि से बचने के लिये उधर भागी है। उस एक क्षुद्र प्राणी से क्यों भयभीत होते हो। निश्चिन्त रहो। कुछ भी गड़बड़ नहीं होगा"। बस रवाना हुई। यात्रा निर्विघ्न समाप्त हुई और साढ़े चार बजे हम अलवर पहुँचे। आधा घंटा विलम्ब जयपुर बस स्टैंड पर स्टोर कीपर से कोई सामान लेने— देने के चक्कर में हुआ।

वस्तुतः इस फलित ज्योतिष को असली ज्योतिर्विदों और जाति-देश-कल्याणकारी मनीषियों ने काल्पनिक, हानिकारक और त्याज्य ही बताया है। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

महामति चाणक्य अपने अर्थशास्त्र में लिखते हैं— 'जो मनुष्य किसी कार्य को आरम्भ करते समय, नक्षत्र, तिथि, वार, मुहूर्त आदि की अनुकूलता को अधिक पूछता है। उस बालबुद्धि मनुष्य को कभी अपने अभीष्ट में सफलता नहीं मिलती है। किसी कार्य की सिद्धि के लिये अर्थ अर्थात् पर्याप्त धन तथा अन्य साधन ही वास्तविक नक्षत्र हैं। आकाशस्थित नक्षत्रों की गणना कार्यसिद्धि में कुछ भी सहायक नहीं है*।

महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी लिखते हैं—

"हिन्दुस्तान में जब से ग्रीक लोग आये, तभी से यहाँ फलित ज्योतिष का प्रचार फैला। बृहज्जातक और नीलकण्ठी को देखो। फलित के प्रभाव से हिन्दुस्तान ऐसा दब गया, कि जो आज से फलित की ओर पीठ दे कर गणित

* नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते। अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः कौ० अ० १.४

बुद्धि के गुण

की ओर देखने लगे, तो शायद हजारों वर्षों में यूरोप की बराबरी में आवे। यह काल की महिमा है, कि इस देश के पण्डित धूर में मिले जाते हैं, तो भी दिनरात घमंड के नशे में चूर हैं। जैसे यहाँ स्त्रियों के बीच यन्त्र-मन्त्र का प्रभाव है, उससे सौ गुना पुरुषों में फलित ज्योतिष का प्रभाव है। जिस गणित के आधार से फलित जी रहा है, उसे लोग दिनों दिन भूलते जा रहे हैं। फलित को कृत्या (= राक्षसी) समझना चाहिये। वह यूरोप में भी क्वार्डन के प्लर आदि के गले में लटकती थी”।
(‘गणित का इतिहास’ पृ०)

ज्योतिषाचार्य हरिहर पाण्डेय — “हे माँ! तुम्हारे अज्ञ बालक मोहवश ज्योतिष के काल्पनिक सागर में डूब रहे हैं और शकुन तथा मुहूर्त आदि के अगणित भंवरों द्वारा घुमाये जा रहे हैं, अतः कृपया इन्हें बचाओ। हे आशुतोष! ज्योतिषियों द्वारा असंख्य पाशों में फांसे और अनेक रस्सियों से बांधे इन दुःखी पुत्रों को आप शीघ्र मुक्त करें”। “हे सदाशिव! हमारे यहाँ कुछ काल्पनिक ग्रन्थों के मुखपृष्ठ पर बलपूर्वक वसिष्ठ आदि मुनियों, सूर्य आदि देवों और ईश्वर के नाम थोप दिये गये हैं। अतः कृपया हमें ऐसा शिव-संकल्पवान् मनोबल दें, कि हम उपपत्ति से विहीन किसी भी ग्रन्थ को प्रमाण न मानें” (हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र पृ. १) “सच पूछिये तो (फलित) ज्योतिष का यश तो तभी समाप्त हो गया, जब सहस्रों विजयप्रद यात्रायोगों के रहते भारत गोमांसभक्षी छोटे तुर्क वीरों का गुलाम बन गया, देश का धन और मान लुट गया तथा सूर्य, गणेश, शङ्कर आदि के अवतार पण्डित स्लेच्छों के दरबार में सिजदा करते हुए दिखाई देने लगे”। (हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र पृ० ३५५)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी — “खेद है कि आज हमारा इन वास्तविक संक्रान्तियों से कोई नाता नहीं है। ज्योतिष के अन्य अनेक विषयों की यही स्थिति है। यवनों ने इस देश में जिस होराशास्त्र और प्रश्नविद्या का प्रचार किया, उसका भारत के कर्मफल-शास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। ग्रहों की जाति और लिङ्ग का तथा ग्रहमैत्री का सिद्धान्त आर्य-धर्म के विरुद्ध है। राजा के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि की कुण्डली में राजयोग नहीं रहते। दिलीप, रघु, दशरथ, बाबर*, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ इनकी सबकी कुण्डलियों में राजयोग नहीं थे”।

* बाबर जब हिन्दुस्तान में विजययुद्ध कर रहा था, तो उसके देश से कुछ बड़े ज्योतिषी उसके पास आये। पर बाबर ने उनसे न कुछ पूछा और न उनके बताये की परवाह की। उसने फलित ज्योतिष के विरुद्ध जो उद्घोष किया था, वह इतिहास में प्रसिद्ध है। उसने कहा था— “ग्रहों सितारों की हरकत हमारी जवाँमर्दी और नामर्दी पर मुनहसिर है। सितारे हमेशा जवाँमर्दों के मुआफिक और नामर्दों के खिलाफ रहते हैं। हमें गौर करना चाहिये, कि दुनिया के किसी बहादुर ने ज्योतिषियों से पूछकर फ़तह और जंग के लिये सफर नहीं किया है”।

स्वामी विवेकानन्द - "फलित ज्योतिष की सूक्ष्म बातों में बहुत ध्यान देना उन अन्धविश्वासों में है, जिससे हिन्दुओं की अत्यधिक क्षति हुई है। मेरे विचार से इसे यूनानी भारत में ले आये और उन्होंने भारत से गणित की अनेक बातें सीखीं। ज्योतिष की भविष्यवाणियाँ अनेक बार मिथ्या होती देखी गई हैं। इन पर दुर्बल मन वाले अदूरदर्शी ही विश्वास करते हैं"। 'यदि तुम राष्ट्र को जीवित रखना चाहते हो, तो ऐसे शास्त्रों से दूर रहो। ग्राह्य वह है, जो हमें बलवान् बनाता है। हमारे देश में इस ज्योतिष की भांति अनेक अन्धविश्वास कुकुरमुत्ते की भांति उगे हैं, बढ़े हैं और हम अशिक्षित नारियों की भांति उन्हें सत्य मान बैठे हैं। जो धन के लिये दूसरों को ठगता है, उसको हम दुष्ट मानते हैं और जो आध्यात्मिक मूर्ख बनाता है, उसको गुरु कहते हैं, किन्तु गुरु वह है, जो सत्य बताये और अन्धविश्वासों से ऊपर उठायें"। (२५.२.१९०० को दिये वक्तव्य से)

श्रीराम शर्मा - "फलित ज्योतिष की मूढ़ मान्यताओं तथा भाग्यवाद और मुहूर्तवाद सदृश अन्धविश्वासों के जड़ जमा लेने के कारण विचारशील वर्ग द्वारा ज्योतिर्विज्ञान की उपेक्षा होती रही है। इस उपेक्षा का एकमात्र कारण है, इससे सम्बन्धित फैली भ्रान्तियाँ। आज भी तथाकथित ज्योतिषी भ्रम एवं भय फैलाते हैं, शोषण करते हैं और जनता में ज्योतिष के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करते हैं"। ... 'पूर्व और पश्चिम में मनीषियों ने अनेक बार फलित ज्योतिष की पोल खोली, पर अन्धविश्वास समाप्त नहीं हुआ। अमेरिकन शास्त्रीय संशोधन समिति के बोस्टन और केंब्रिज शाखा के ज्योतिषियों ने फलित ज्योतिष की परीक्षा के लिये संसार भर के विशेषज्ञों की एक समिति बुलाई। उसने निर्णय किया, कि आकाशस्थ ज्योतियों की गति द्वारा किसी व्यक्ति या राष्ट्र के भविष्य का निर्णय कठिन है। किरणें ग्रहों की ही नहीं, सब ज्योतियों और धूमकेतुओं आदि की आ रही हैं। पाश्चात्य फलित ज्योतिष में तुला राशि ललित कला की सूचक मानी जाती है, किन्तु अमेरिकन प्रोफेसर फार्न्स् वर्थ ने लगभग २००० दो हजार वादनपटुओं और चित्रकारों की कुण्डलियों का अध्ययन कर यह निश्चित किया, कि तुला राशि और ललित कला में कोई सम्बन्ध नहीं है। रोमन साम्राज्य में फलित का बहुत प्रचार था। सिसरो और केटो ने इस पर आक्रमण किया, विरोध में नियम बनाये, पर लोग छिप कर ज्योतिषियों के पास जाते रहे। पांच सौ वर्षों के बाद उसका फिर बोलबाला हो गया।

बुद्धि के गुण

विश्वविख्यात ज्योतिषी कोपर्निकस ने तीस वर्षों तक लगातार अनुसन्धान करने के बाद कहा, कि पृथ्वी चलती है, पर धर्मविरुद्ध होने के कारण उसकी बात नहीं मानी गई। १५२९ ई० में लिखा उसका ग्रन्थ धर्मगुरुओं के भय से १४ वर्ष बाद उसके ७० वर्ष के वय में २३/५/१५४३ को प्रकाशित हुआ और वह उसके दूसरे दिन मर गया। उसका अनुयायी होने के कारण केपलर को नौकरी नहीं मिल रही थी, पर अन्त में फलित को सत्य कहने पर मिली। विश्वास न होने पर भी उसको वर्षफल आदि बताना पड़ा। ('ज्योतिर्विज्ञान' पृ० से)

स्वामी दयानन्द सरस्वती — "(प्रश्न) तो क्या ज्योतिष शास्त्र झूठा है? (उत्तर) नहीं, जो उसमें अङ्क, बीज, रेखागणित विद्या है, वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है।" (सत्यार्थ० द्वितीय०)।

"(पोपजी) देखो! ज्योतिष का प्रत्यक्ष फल। आकाश में रहने वाले सूर्य, चन्द्र और राहु, केतु का संयोग रूप ग्रहण को पहिले ही कह देते हैं। जैसा यह प्रत्यक्ष होता है वैसा ग्रहों का भी फल प्रत्यक्ष हो जाता है। देखो! धनाढ्य, दरिद्र, राजा, रंक, सुखी, दुःखी ग्रहों से होते हैं।" (सत्यवादी) जो यह ग्रहणरूप प्रत्यक्ष फल है, सो गणित-विद्या का है, फलित का नहीं। जो गणितविद्या है वह सच्ची और फलित विद्या स्वाभाविक सम्बन्धजन्य को छोड़ के झूठी है" (सत्यार्थ० एकादश समु०)

पोप जोन पॉल (द्वितीय) —

'इटली एक ऐसा देश है, जहाँ मनोवैज्ञानिकों, ज्योतिषियों और भविष्यवक्ताओं का बोलबाला है। इस वर्ग का वहाँ के समाज में रहन-सहन काफी उच्च-स्तर का है और उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। यही नहीं इटली में सुबह टी० वी० व रेडियो पर ज्योतिष व भविष्यवाणियों से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रम दिये जाते हैं, जिनमें लाटरियों के नम्बरों तक के बारे में भविष्यवाणियों की जाती है, किन राशि के लोगों के लिये कौन से नम्बर उपयुक्त होंगे। ऐसे इटली में रोम के वेटेकिन पैलेस के सबसे बड़े धर्मगुरु पोप जॉन पॉल द्वितीय ने अभी 'रविवार (6.9.98) को उपदेश देते हुए कहा— "जीवन के संचालन के लिये न तो ज्योतिषियों और न ही भविष्यवेत्ताओं के सहारे की जरूरत है। ... ईश्वर की सच्ची आराधना से ही सारे कार्य सिद्ध होते हैं और ईश्वर के अलावा कोई अन्य हमारे भविष्य को नहीं जानता"। ('सहारा' दैनिक ता० 8.9.98 पृ० 10)।

अङ्क-शुभाऽशुभत्व-अविवेक

कई लोगों को अमुक अमुक अङ्कों और उन अङ्कों वाले मकानों, कमरों अथवा वाहनों से भी अनिष्ट की शङ्का रहती है। कोई कहता है १६ अङ्क कष्टदायक है। १६ तारीख को किया गया कार्य बिगड़ जाता है। कोई १३ अङ्क वाले कमरे या मकान को अनिष्टदायक मानता है। किसी को १० अङ्क वाला भवन मनहूस लगता है। पर यह सोच तर्कविहीन बुद्धि का परिचायक है। मात्र बहम है। ऐसे बहमों से मनोबल गिर जाने पर, वहाँ कष्ट न होने पर भी प्रकारान्तर से आये कष्ट को भी मनुष्य अङ्कदत्त कष्ट मान लेता है। हम यहाँ एक उदाहरण १३ अंक का देते हैं। १३ नंबर के कमरे या मकान को प्रायः लोग अशुभ मानते हैं। मुम्बई के घाटकोपर (पश्चिम) के लालबहादुर शास्त्री मार्ग के समीपस्थ माणकलाल एस्टेट की पाटीदार सोसायटी में १३ नंबर कमरे में सन् १९६१ से अब तक रहे सज्जनों का विवरण निम्नलिखित हैं* —

- (i) सन् १९६१ से १९६२ तक — श्री वेलजीभाई शिवगुण वेलाणी परिवार
- (ii) सन् १९६३ से १९७४ तक — श्री नारायण भाई मावजी सांखला परिवार
(सन् १९६३ से १९६८ तक — श्री देवसी भाई करसन वेलाणी भी रहे)
- (iii) सन् १९७५ से १९७९ तक — श्री कल्याणदेव भीमजी वेलाणी परिवार
- (iv) सन् १९८० से १९८२ तक — श्री दिनेश भाई पटेल
- (v) सन् १९८३ से १९९४ तक — श्री वेलजी भाई करसन पटेल
- (vi) सन् १९९५ से — एक जैन व्यापारी

गत ३५ वर्षों में ६-७ सज्जन सपरिवार उस १३ नंबर वाले कमरे में रहे और उनके किसी भी प्रकार के अनिष्ट की बात तो दूर रही, अपितु सभी सुसम्पन्न बनते गये। आरम्भ के चार परिवारों के साथ तो मेरा सुपरिचय है। अन्यो को भी परम्परया जानता हूँ। इनमें से अनेक अर्धकोटीश्वर तथा कई कोटीश्वर बनते गये। स्वस्थ, शान्त, तृप्त हैं। पुत्र, पौत्र, दौहित्र आदि से समृद्ध हैं।

अभी दैनिक समाचारपत्र 'दैनिक भास्कर' में एक समाचार 'लकी थर्टीन ने जीता करोड़ों का इनाम' छपा। पूरा वृत्त इस प्रकार है— "वेस्टरविले। कौन कहता है कि १३ नंबर हमेशा अशुभ होता है। ओहियो फैक्ट्री के 'लक्की थर्टीन' उपनाम से मशहूर तेरह मजदूरों ने एक लॉटरी में १३० डालर लगाये व १६ करोड़ एक लाख डालर का पहला

* यह विवरण हमें श्री कल्याणदेव भीमजी वेलाणी डी-८०१, निसर्ग, दिवालीपुरा, बड़ोदा (गुज.) के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।

बुद्धि के गुण

ईनाम जीत लिया। मजे की बात तो यह है, कि उन्होंने दांव भी १३ नंबर पर लगाया था। इनके अतिरिक्त ७९ अन्य प्रतियोगियों को एक-एक लाख डॉलर मिलेंगे। इन्होंने ३९, ५, ४३, ४५, तथा ४९ नंबर पर दांव लगाया था। तेरह मैकेनिकों का यह समूह पिछले कई वर्षों से साझेदारी में लॉटरी के टिकिट खरीद रहा है। इन्होंने दस-दस डालर मिलाकर इस लॉटरी में दांव लगाया था। इन सदस्यों ने पहले ही इस ईनाम को २५ साल तक किश्तों में लेने के बजाय इकट्ठा लेने का विकल्प चुन लिया था। इन विजेताओं के नये वकील ने बताया, कि ये सभी ईनाम जीतने के बाद पूरी रात सो नहीं पाये व भविष्य की योजनाएँ बनाते रहे। इन्होंने एक दूसरे का नाम गुप्त रखने का समझौता कर लिया है। ईनाम लेते वक्त हजारों कैमरों का सामना न करना पड़े इसके लिये इन्होंने 'लक्की थर्टन' (= भाग्यशाली तेरह) नामक एक ट्रस्ट बना लिया है ...।"

इन उदाहरणों से १३ अंक की अशुभता का निराकरण हो गया। यही बात अन्य तथाकथित अङ्कों की है। वास्तव में कोई अङ्क अशुभ नहीं है। बुद्धि में जब ऊह गुण नहीं होता तभी ऐसे बहम मनुष्य को खाने लगते हैं।

मनौती-अविवेक

तर्क-बुद्धि से विचार न करने पर मनुष्य बिना कारण-कार्य-सम्बन्ध का चिन्तन किये, किसी उपलब्धि को किसी असम्बद्ध क्रिया का फल समझ लेता है। मनौती मानना या मनौती करना और फिर उस पर विश्वास करके तदर्थ कुछ प्रतिकर्म करना भी एक बड़ा अन्धविश्वास है। दिल्ली से उदयपुर जाने वाली रेलगाड़ी में एक सहयात्री (जो सपरिवार था) से मैंने पूछा "आप कहाँ जा रहे हैं?" सहयात्री- "मैं अजमेर जा रहा हूँ?"। मैं- "क्या आप अजमेर के ही रहने वाले हैं?"। सहयात्री- "नहीं! मैं तो दिल्ली - शास्त्रीनगर में रहता हूँ। अजमेर तो, ख्वाजा की दरगाह पर चढ़र चढ़ाने जा रहा हूँ"। (इसी बीच मैंने उनका नाम आदि पूछ लिया था।) मैं- "प्रदीप जी! आप दरगाह में चढ़र चढ़ाने जा रहे हैं। बड़ा आश्चर्य है। आप नेता भी नहीं लग रहे, कि वोट-बटोरने के लिये यह प्रदर्शन करने जा रहे हों, और....।" सहयात्री- "अजी! बात यह है, कि मैं एक बार किसी कार्य से अजमेर गया था, तो दरगाह में मैंने एक मनौती मानी थी, कि यदि मेरे पुत्र हो जायेगा, तो मैं चढ़र चढ़ाने आऊँगा, सो आप देख रहे हैं, यह मेरा तीन वर्ष का पुत्र। उसी मनौती का ही फल है, इसलिये हम चढ़र चढ़ाने जा रहे हैं"।

अब यहाँ विचारने की बात यह है, कि दरगाह में मनौती मनाने से पुत्र पैदा होने का क्या सम्बन्ध है? अजमेर में दरगाह पर मनौती करने वाले सैकड़ों हैं जिनके पुत्र तो क्या, सन्तान ही नहीं हुए। दरगाह के चारों तरफ रहने वालों में भी कई निःसन्तान हैं।

अलवर के एक सम्पन्न परिवार में छोटी बहू के एक पुत्री पैदा हुई। बैठने, उठने, अंगों की हरकत आदि में उसकी प्रगति सामान्य से बहुत धीमी थी। अनेक प्रकार की चिकित्सा आदि सासससुर करवा ही रहे थे। किन्तु बहू का हठ था, कि मैं तो इसे लेकर वैष्णो देवी जाऊँगी। मैंने वहाँ एक मनौती बोली हुई है। उस मनौती को पूरी करते ही यह ठीक हो जायेगी। वह वैष्णो देवी गई। मनौती के अनुसार क्रियाकलाप भी किया। किन्तु उस पुत्री की धीमी प्रगति में कोई अन्तर नहीं आया।

किसी दरगाह, मजार, मन्दिर, तीर्थ या नदी आदि स्थानों पर मनौती मानने मात्र से किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। कभी घुणाक्षर* न्याय से किसी को कोई लाभ हो जाय अथवा किसी वस्तु की उपलब्धि हो भी जाय, तो वह मनौती का फल नहीं होता। हाँ, उस स्थान पर कोई ओषधि, खाद्य वस्तु, क्रियाविशेष, पथ्यविशेष का सेवन किया गया हो अथवा किसी विशिष्ट गुणयुक्त जलवायु वाले वातावरण में सुदीर्घ काल तक रहने से कोई फलप्राप्ति हो, तो वह किसी मनौती का नहीं, अपितु उन ओषधि आदि के सेवन का फल है।

इसी मनौती के चक्कर में कोई उदयपुर में देवी के मन्दिर में पुत्रप्राप्ति के लिये अपनी जीभ काट कर चढ़ा रहा है। कोई होशंगाबाद जिले में नदीतट पर अपने आठ वर्षीय पुत्र की एकान्त में बलि (हत्या) चढ़ा रहा है। कोई स्त्री तिरुपति बालाजी के मन्दिर पर अपने सारे केश भेंट कर रही है। कोई रेवाड़ी में पशुओं से, युक्त घासों के ढेर में आग लगा रही है, कोई पराये सन्तानों के खून से स्नान कर रही है। ये सब कृत्य मनौती जैसी मिथ्या धारणाओं की उपज हैं। अतः ऊहाबुद्धि का विकास करके निःअन्धविश्वासों और उनके दारुण फलों से बचना चाहिये।

जलस्नान-पापमुक्ति-अविवेक

पाप का फल दुःख है और पुण्य का फल सुख है। सामान्यतः पुण्य करने में—शुभकर्म करने में मनुष्य को थोड़ा सा कष्ट प्रतीत होता है, अतः वह

घुन (लकड़ी में रहने वाला कीड़ा) लकड़ी को खाते खाते उसे इस प्रकार खावे कि उसके खाने से लकड़ी पर 'प' 'र' '३' जैसी आकृति अथवा L या P जैसा आकार उभर जाय तो उसे घुणाक्षर कहते हैं। अर्थात् अकस्मात् हुआ कार्य। पर उससे वह घुन पठित नहीं माना जा सकता।

पुण्य के फल सुख की तो लालसा सदा करता है, किन्तु पुण्य करने को तत्पर नहीं होता। इससे उलटा पाप के फल दुःख को तो नहीं चाहता, पर प्रयत्नपूर्वक भी पाप करता है७।

पाप करते रहने पर भी पापों के फल से बचने के लिये लोगों ने सस्ते काल्पनिक नुस्खे बना लिये हैं। किसी नदीविशेष, सरोवर विशेष अथवा झील-समुद्रविशेष में स्नान करने से किये हुए पापों से छुटकारा मिल जायेगा अर्थात् उन पापों का फल नहीं भोगना पड़ेगा। ऐसी मान्यता भी इसी कोटि की है। चोरी-जारी, हिंसा, शोषण कुछ भी कर लो, बस गंगा या किसी पवित्र नाम वाली नदी आदि में स्नान कर लो, बस सब पापफल भस्म!! क्या सस्ता उपाय निकाला है!! ऐसे विचारों से ही संसार में पाप अधिक बढ़े हैं। कुछ लोग इससे भी आगे बढ़ गये। उन्होंने कहीं दूर जाकर स्नान करने के कष्ट उठाने की अपेक्षा घर बैठे ही मुक्ति का मार्ग ढूँढ निकाला। वे कहते हैं— 'तीन सौ योजन (चौबीस सौ माइल = छत्तीस सौ किमी.) दूर से यदि कोई 'गंगा! गंगा!! उच्चारण कर ले तो वह सब पापफलों से मुक्त हो जाता है और विष्णुलोक को प्राप्त होता है' 'Δ।

कितनी तर्कबुद्धिहीन असङ्गत धारणा है यह! किसी नदी आदि का नाम लेने से तो क्या उसमें स्नान करने से भी पाप का छूटना कैसे सम्भव है? नदी आदि के पानी में स्नान करने से मात्र शरीर-वस्त्र का ही मैल छूट सकता है, पाप नहीं। जल से पाप छूटना और आत्मा का शुरु होना सर्वथा असम्भव है। इसीलिये महाराज युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में भीष्म पितामह ने कहा था—

“हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! यदि तू आत्मशुद्धि चाहता है, तो आध्यात्मिक नदी में स्नान कर। उस अध्यात्म नदी के दो घाट हैं 'संयम' और 'पुण्य'। उसमें 'सत्य' रूपी जल है। उसका तट (किनारा) है शील (= सदाचार)। उसमें 'दया' रूपी तरंग उठती हैं। उसी में तू स्नान कर। (इन सबका पालन कर) जल से अन्तरात्मा कभी शुद्ध नहीं होता' 'X।

७ पुण्यफलं सदेच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः। पापफलन्तु नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

Δ गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं च गच्छति ॥

X आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था, सत्योदका शीलतटा दयोर्मि।

तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र! न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा ॥ (तुं महाभा० उ० ४०.२१)

इसी बात को मनु ने अन्य शब्दों में कहा है— “जल से शरीर शुद्ध होते हैं, मन सत्य से शुद्ध होता है, विद्या और तप (= श्रम) से आत्मा शुद्ध होता है और बुद्धि शुद्ध होती है ज्ञान से”²।

इससे स्पष्ट हुआ कि जल किसी भी नदी या तालाब आदि का क्यों न हो, उससे शरीर, वस्त्र, स्थान आदि ही शुद्ध हो सकते हैं। वह भी तब जब कि वह जल स्वयं पवित्र हो। उत्तराखण्ड में प्रवाहित होने वाली गंगा आदि नदियों का जल, ओषधियों के सम्पर्क से तथा कुछ लाभकारी खनिजों वाले स्थानों में से गुजरने के कारण बहुत दिनों तक टिकने वाला और ओषधीय गुणों से युक्त हो सकता है, पर जब गंगा नदी मैदानी भाग में बहती है और उसमें नगरों—कस्बों के गन्दे पानी के नाले और मिलों—फैक्टरियों के अनेक जहरीले रसायनों एवं अवशेषों से युक्त प्रवाह उनमें गिरते हैं। (लेखक ने सन् १९६४ में कानपुर में जाज मऊ की ओर बने चमड़े कमाने के कारखानों के कोसों महादुर्गन्ध फैलाने वाले नालों को गंगा में गिरते देखा है। यही हाल अन्य नदियों का है) तो फिर इन गंगा आदि नदियों का भी जल शुद्ध कहाँ रहा? इसलिये भारत सरकार को ‘गंगा शुद्धि प्राधिकरण’ आदि प्रायोजन करने पड़े हैं। पुष्कर आदि सीमित पानी वाले सरोवरों में मृतक की भस्म अथवा अस्थि आदि अवशेषों के डालने से वह पानी दूषित रहता है। दो तीन वर्ष लगातार अल्प वर्षा होने से भी वह पानी मलिन हो जाता है, क्योंकि भस्मास्थि विसर्जन के सिवाय लोग उसमें स्नानादि भी करते हैं। लेखक ने अपने ढाई वर्ष (१९६४-१९६७) के पुष्कर निवास काल में यह सब देखा है।

अमुक तिथि या अमुक दिवस में अमुक मुहूर्त में किसी नदीविशेष या सरोवर विशेष में डुबकी लगाने से पाप छूट जाते हैं, यह धारणा भी अविवेकजनित है। अर्द्धकुम्भ या पूर्णकुम्भ के समय उज्जैन, प्रयाग अथवा हरिद्वार आदि में शिप्रा, त्रिवेणी और गंगा में स्नान के लाभ के भ्रम में कई श्रद्धालुओं की जो दुर्दशा होती है, वह सब को ज्ञात ही है।

इन सब स्नानों के बाद भी मनुष्य पूर्ववत् कर्मों में और कर्मफलों के बन्धन में बंधे ही रहते हैं।

² अग्निर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ (मनु० ५.१०९)

जल में अस्थिविसर्जन—अविवेक

कुछ लोगों में यह कुरीति है, कि वे अपने मृतक—सम्बन्धी के अवशेषों (= अस्थि, भस्म आदि) को गंगा आदि नदियों में अथवा पुष्कर आदि सरोवरों में डालते हैं और इसका उद्देश्य वे मृतक की आत्मा की शान्ति और सद्गति होना बतलाते हैं। पर ऐसा मानना भी विवेकबुद्धि के अभाव का परिचायक है।

मृतक की आत्मा को शान्ति और सद्गति तो उसके कर्मों के अनुसार ईश्वरीय व्यवस्था से मिलेगी। उसके दग्ध शरीर के अस्थि आदि अवशेषों के जल में डालने या न डालने से आत्मा की शान्ति या अशान्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है। कई लोग मृतक के सम्बन्धियों को बहकाते हैं, कि यदि तुम मृतक की अस्थियों को गंगा आदि में प्रवाहित नहीं करोगे, तो मृतक की आत्मा 'भूत' बन जायेगी और तुम्हें तथा तुम्हारे परिवार को पीड़ा पहुँचायेगी। पर यह बात सर्वथा अनर्गल एवं असत्य है। सुजानगढ़ में मेरे श्वशुर श्री पं० गणपति शर्मा आर्य की माता जी के अलवर में श्रीमती शान्ता आर्य के; प्रसिद्ध आर्य कन्या विद्यालय की भू० पू० प्रधानाचार्या श्रीमती कमला शर्मा की माता जी के, श्री स्वामी शमानन्द जी के तथा नोएडा सेक्टर १२ में श्री सोहनलाल जी आनन्द के देहावसान के बाद उनके अस्थि-अवशेषों को किसी जल में प्रवाहित नहीं किया गया, अपितु पड़त धरती में गड़वा खोदकर अवशेषों को भूमिसात् कर दिया गया था। आज उन घटनाओं को साठ अठारह, सोलह आदि वर्ष बीत गये, पर इनमें से कोई भी तथाकथित भूत नहीं बना और न किसी प्रकार की पीड़ा इनके पारिवारिक जनों को हुई।

जल में अस्थि आदि डालने से तो जल अशुद्ध ही होता है। एक बार ऐसे ही अवसर पर एक सज्जन कहने लगे "अस्थियों को जल में डालने से जल अपवित्र नहीं होता अपितु जल स्वच्छ होता है, क्योंकि हड्डियों में फॉस्फोरस होता है"। मैंने कहा कि तब तो इन अस्थियों को आपकी घर-बगिया (= गृहोद्यान) के कुण्ड के पानी अथवा आप के स्टोर-टैंक में डलवा देते हैं, आपका पानी स्वच्छ हो जायेगा। तब आप वे बोल उठे 'नहीं, नहीं, मेरे कुण्ड में न डलवाये। चाहे जो कीजिये पर मेरे यहाँ अस्थियाँ न डलवाइये'। वास्तव में यह कुतर्क ही है। जब कटे हुए केश और अस्थि छूना वर्जित है* और छूने पर स्नान का विधान है, तो अस्थियों को जल में डालने से जलशुद्धि की बात सर्वथा अप्रामाणिक है।

ऊहापाह (विवेकशक्ति) तीर्थयात्रा-पापमुक्ति-अविवेक

तात्त्विक बात यही है, कि शव का दाह अग्निसंस्कार करने से शवस्थित जलतत्त्व वाष्प रूप होकर जल में मिल गया और अग्नि तत्त्व के अग्नि में, वायु तत्त्व के वायु में विलीन हो जाने के बाद अवशिष्ट भस्मीअस्थि रूप पृथिवीतत्त्व को भी पृथिवी में मिश्रित करना ही उचित है।

तीर्थयात्रा से पापमुक्ति-अविवेक

सामान्य जनमानस में एक धारणा प्रचलित है, कि तीर्थ-यात्रा करने से पुण्य की प्राप्ति और पापों की निवृत्ति होती है, किंच अब तक किये गये पापों से छुटकारा मिल जाता है अर्थात् उनका फल नहीं भोगना पड़ता है। एतदर्थ वे चारों धामों^B की; गंगासागर, वैष्णोदेवी, अमरनाथ, केदारनाथ, मानसरोवर, काशी, मथुरा आदि की यात्रा करते हैं। मुसलमान मक्का मदीना की यात्रा करते हैं और उसे हज कहते हैं। किन्तु यह वर्तमान रूप की तीर्थयात्रा पापों के छूटने और पुण्यों के मिलने में कतई सहायक नहीं है।

जलवायु-परिवर्तन से स्वास्थ्य लाभ करने, प्रकृति के मनोरम दृश्यों का अवलोकन करने; देशविदेश के स्थानों, नगरों, पर्वतों और वनस्पतियों के दर्शन से ज्ञानवृद्धि करने और भिन्न-भिन्न प्रान्तों-देशों के निवासियों के मेलमिलाप से उनके गुण आदि के ग्रहण की दृष्टि से यात्रा करना-देशाटन करना उपादेय है और आवश्यक है, पर किसी स्थानविशेष की यात्रा से अथवा दर्शन से पापों का छूटना अथवा पुण्यलाभ होना सम्भव नहीं है।

'तीर्थ' वे कहाते हैं, जो तरा देवें, जिसके द्वारा तैरकर पार हो जावें^C। सो विद्या, सत्सङ्ग, सत्यभाषण, तप, ब्रह्मचर्य, गुरुजन और महापुरुष आदि इसलिये तीर्थ कहे जाते हैं, क्योंकि इनके द्वारा मनुष्य दुःखसागर से तर जाता है - पार हो जाता^D। नौका, जहाज आदि भी 'तीर्थ' कहाते हैं, क्योंकि इनके द्वारा नदी, झील, समुद्र आदि से पार तरा जाता है- पार जाया जाता है। कहीं कहीं नदी आदि के किनारे बने घाट को भी तीर्थ कहते हैं।

चार धाम -

'तरन्ति यैस्तानि तीर्थानि'।

'तीर्थैस्तरन्ति प्रवर्तते महीरिति' ॥ अथर्व १८.४.७

बुद्धि के गुण

अतः जिनसे तर जाते हैं, पार हो जाते हैं उन साधनों का नाम 'तीर्थ' है, न कि जिनको तरते हैं — जिनको पार करते हैं, उन नदी, झील आदि को। नदी, झील, सरोवर तराने वाले नहीं हैं— डुबाने वाले हैं, क्योंकि यदि कोई तैरना न जानने वाला इनमें कूद पड़े, तो वह उनमें डूब ही जायेगा। इसलिये किसी नदीनद को अथवा उसके जल को 'तीर्थ' कहना उचित नहीं है।

तीर्थयात्रा के विषय में यह विचार उपादेय प्रतीत होता है, कि ये तथाकथित तीर्थस्थान प्रायः किसी नदी, झील, सरोवर, समुद्र अथवा पर्वत के समीप सुरम्य प्राकृतिक शोभा वाले स्थानों पर स्थित हैं। कभी किसी प्राचीन समय में, ऐसे एकान्त शान्त प्राकृतिक सुषमा वाले स्थानों पर ऋषि, मुनि, सिद्ध, योगी, ध्यानी लोग निवास करते थे और अपनी साधना में तल्लीन रहते थे। सामान्य गृहस्थी लोग समय निकाल कर यदा कदा ऐसे महापुरुषों के समीप पहुँचते थे और अपनी समस्याओं तथा संशयों का समाधान पाने का सफल प्रयास करते थे। ऋषि, मुनि, अभ्यासी जनों की जीवनचर्या से भी वे अपने जीवन में सुधार लाते थे और ऐसे स्थानों के शान्त एवं आध्यात्मिक वातावरण में उन्हें शान्ति भी मिलती थी। उन सुरम्य शान्त अध्यात्मप्रधान स्थानों — आश्रमों में विराजमान ऋषि, मुनि, सिद्ध, योगी, अभ्यासी, ध्यानी लोग ही वस्तुतः 'तीर्थ' थे। उनके सम्पर्क—सत्सङ्ग से ही लोग भवसागर से तरने का मार्ग प्रशस्त करते थे। कालक्रम से ऐसे योगी, यति, सिद्ध लोगों का तो उन स्थानों पर अब प्रायः उच्छेद एवं अभाव हो गया। अब रह गये मात्र, नदी, सरोवर, पर्वत आदि स्थान और उन पर उन महापुरुषों के साधारण जीवन जीने वाले वंशज लोग। उन लोगों ने स्वयं तो तप, योग, ध्यान आदि का अभ्यास त्याग दिया, किन्तु अपने पूर्वजों के और उन स्थानों के और उन स्थानों की यात्रा करने से पुण्यलाभ आदि के अतिशयोक्ति पूर्ण माहात्म्य—ग्रन्थ बना डाले* और उन स्थानों को महिमा—मण्डित बना डाला। सामान्य भोला जनमानस उन पर आस्था रखकर तीर्थयात्रामात्र से — उन स्थानों के दर्शन—स्पर्शन से ही मुक्ति मानने लगा। अब तो सही अर्थों में वहाँ दुकानदारी ही रह गई है। कई भोले भाले यात्री तो ऐसे तथाकथित तीर्थस्थानों पर धर्म के कुत्सित ठेकेदारों के हाथों लुटपिटकर आते हैं। अपने पुष्करनिवासकाल में लेखक ने देखा कि ऐसा कौन सा कदाचार है, जो पुष्करवासियों को हेय है। झूठ, छल, कपट, अश्लीलता, हिंसा, नशा आदि दुर्युग अन्य

* जैसे काशीमाहात्म्य, मथुरामाहात्म्य

स्थानों के समान वहाँ भी प्रविष्ट हैं। वहाँ भी कुछ धार्मिक एवं सदाचारी लोग हैं, पर वैसे तो जो तीर्थस्थान नहीं है, वहाँ भी हैं। ऐसी ही न्यूनाधिक स्थिति सभी तथाकथित तीर्थस्थानों की है।

अतः बुद्धि—विवेक को जागृत कर ऐसी तीर्थयात्राओं की अपेक्षा अपने आचरणसुधार, योगाभ्यास, स्वाध्याय, संयम और सत्संग रूपी सच्चे तीर्थों को जीवन में उतारना चाहिये, तभी भवसागर के दुःखों से तरा जा सकता है।

तीर्थस्थानों पर प्राणत्याग या शवदाह—अविवेक

इसी प्रसंग में यह स्पष्ट करना भी उचित है, कि किसी तीर्थविशेष पर प्राण छूटने से अथवा दाहसंस्कार होने से मुक्ति का होना अथवा सद्गति पाना मात्र विवेकहीन धारणा है—अन्धविश्वास है। काशीनिवास—काल में हमने देखा, कि आसपास के ग्रामों—नगरों के लोग अपने वृद्धों को अथवा मरणासन्न लोगों को अन्तसमय में काशी ले आते हैं और वहीं उनके प्राण छूटने की प्रतीक्षा करते हैं। पचास—सौ मील दूर के स्थानों पर मृत्यु हो जाने पर, उनके सम्बन्धी उनका दाह करने के लिये उनके मृतक शरीर को काशी ले आते हैं। काशी के 'मैदागिन' नामक स्थान पर बहुत से 'मैटाडोर' वाहन खड़े देखे। पता लगा, कि ये गाड़ियाँ आसपास के मृतकों और उनके दाहकर्त्ताओं को लाने का काम करती हैं। वाहन की छत पर शव की अर्ध बांध देते हैं और वाहन में दाहकर्त्ता बैठ जाते हैं। 'बुलानाला' स्थित आर्यसमाज—मन्दिर में निवास करते समय, बड़े तड़के से ही 'रामनाम सत है' कि ध्वनि सुनाई देने लगती थी। 'मैदागिन' से मणिकर्णिका आदि घाटों पर ले जाने का यही मार्ग है।

ऐसा विचार सर्वथा भ्रमपूर्ण है। जीवनभर सत्कर्म न किये हों, तो अन्त में किसी भी तीर्थस्थान पर प्राण छूटने मात्र से कोई लाभ नहीं होता। ईश्वर तो न्यायकर्त्ता है, वह जीव को उसके कर्मानुसार ही फल देता है। प्राण कहाँ छूटे इस बात का कर्मफलप्राप्ति में कोई स्थान नहीं है। अपने कर्त्तव्य पूरा निभाने वाले सैनिक के विधर्मी पापात्मा शत्रु के हाथों और शत्रुभूमि पर प्राण छूटने पर भी, उसे सद्गति ही मिलेगी। किन्तु जीवनभर पापकर्मों में रत रहने वाले को, काशी आदि तथाकथित तीर्थों पर प्राण छूटने पर भी, उसके पापों का फल दुःख जन्मान्तर में अवश्य प्राप्त होगा और दुर्गति होगी।

बुद्धि के गुण

मृतक के शव का किसी स्थानविशेष पर दाह करना और उससे उसके आत्मा की शान्ति-प्राप्ति की बात तो सर्वथा ही आधारहीन है। आत्मा तो कभी का उस शरीर को छोड़कर जा चुका और स्वकर्मगति-अनुसार नवजीवन-प्राप्ति में ईश्वर-व्यवस्थानुसार कहीं अन्यत्र प्रगति पर होगा। अब शरीर का कहीं भी दाह कर दो, उसके आत्मा के सम्बन्ध में, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। काशी में मणिकर्णिका आदि घाटों पर दाहकर्त्ताओं के साथ डोमों की सौदेबाजी से सब परिचित हैं। दाहकर्त्ताओं के वहाँ से हटते ही, अधजले शवों को गंगा में डालते हुए भी देखा गया है। काशी जैसी घनी आबादी के समीप ही निरन्तर मुर्दों के जलने से, उन घाटों के आसपास की बस्तियों के वातावरण में दुर्गन्ध सी छाई रहती है। वहाँ दाहकर्म करने से मृतक की आत्मा के तो पापकर्म छूटते नहीं, अपितु काशीवासियों को दुर्गन्ध मलीनता आदि पाप अवश चिपट जाते हैं।

मन्त्र-तन्त्र से धनदुगुना-अविवेक

बुद्धि के विवेकशक्ति-शून्य होने पर लोग अनेक प्रकार के भ्रमजाल में फँस जाते हैं। धन या जेवर (गहनों) को मन्त्रशक्ति से दुगुना करने का लोभ कई चालाक लोग देते हैं, विवेकशून्य जन उनके बहकावे में आकर पहले के उपस्थित धन से भी हाथ धो बैठते हैं।

इन पंक्तियों का लेखक जुलाई सन् १९७३ से १९८० जुलाई तक अजमेर में रामगंज के श्री रेवतीराम शर्मा के मकान नं० २०० में किरायेदार के रूप में रहा। उसी अन्तराल की घटना है। उसी बस्ती के श्री ख्यालीरामजी की धर्मपत्नी श्रीमती जमुनादेवी अपराहण में शाक खरीदने जा रही थी। मार्ग में एक साधु मिला और बोला “माई! अधिक चिन्ता न किया करो, भगवान् पर भरोसा रखो। जमुनादेवी सुनकर ठहर गई। साधु— “माई! छोटे बेटे की नौकरी की चिन्ता है न तुम्हें? चिन्ता न करो जल्दी ही नौकरी लगेगी” * बुढ़िया को बड़ा आश्वासन मिला, बोली “महाराज! आपका आशीर्वाद होगा तो जरूर... साधु— “माताराम! पास वाली गली में एक सन्त विराजे हुए हैं। चलो वे अचूक उपवास बतायेंगे। जमुनादेवी जी पीछे-पीछे चल पड़ी। मार्ग में कितने की रोज सब्जी लाती हो?

Δ वंशजों को बुरा न लगे, इसलिये यहाँ पति-पत्नी के नाम काल्पनिक दिये हैं।

* श्रीमती जमुनादेवी का स्वभाव अपनी गली की स्त्रियों में बैठ के घर के सुख दुःख कह बताने का था। सो साधु जी के कान में भी इस बात का पड़ना स्वाभाविक है।

आज कितने की सब्जी लाने चली थी?" आदि प्रश्न किये और उत्तर पाये। गली में बैठे तथाकथित सन्त ने मधुर स्वर में जमुनादेवी को उपदेशमिश्रित सान्त्वना प्रदान की और आंखे बन्द करके २१ बार 'नमः शिवाय' का जप करने को कहा। जपसमाप्ति पर चले (= पहले मिले साधु) ने कहा— 'माता! ये महात्मा पहुँचे हुए हैं। इनकी शरण में आने वाला भगत कभी घाटे में नहीं रहता। विश्वास न हो तो अपना झोला संभाल, तेरे पैसे दुगुने हुए कि नहीं?' जमुनादेवी ने थैले में हाथ डाला। पांच-पांच के दो नोट थे। घर से तो वह एक ही नोट लेकर चली थी। आश्चर्यचकित होकर श्रद्धावश एक नोट महात्मा जी को भेंट करने लगी। चेला— 'अरे माई! यह क्या कर रही हो! गुरुदेव कहीं वापिस लेते हैं। न जाने कितने भक्तों को गुरुदेव ने मालामाल कर दिया है। सच्ची श्रद्धा और सच्चा विश्वास चाहिये। तेरे पर गुरुजी की कृपा होना भी भाग्य की बात है। और भी धन दुगुना करवाना हो तो अभी मौका है, फिर हमसे भेंट हो न हो'। जमुनादेवी— 'महाराज! मैं अभी घर जाकर ले आती हूँ कहकर चलने लगी। साधु— 'देख, माता! हम यहाँ अब अधिक नहीं रुकेंगे। हाँ! महाराज तो ऐसे ही जेवर भी दुगुना कर देते हैं'। यह सुनते ही जमुनादेवी बैठ गई और गले में से स्वर्णसूत्र निकाल लिया। महात्मा ने अपने झोले में से एक छोटा सा गत्ते का डिब्बा निकाला और उसमें स्वर्णसूत्र डलवा दिया तथा उसे कलावे से लिपटवाकर कहा— देख माई! 'जहाँ समझो वहाँ तीर्थ और जो समझो वही देव' सो यह चबूतरा ही तीर्थ है। इस पर अपना थैला बिछा दे। यही विष्णुपीठ है। इस पर स्वर्णसूत्र के डिब्बे को रख और आंखे बंद करके पांच बार 'लक्ष्मीदेवाय नमः' बोल'। जमुनादेवी ने आज्ञा का पालन किया। महात्मा— 'जा माई! इस डिब्बे को आंचल में ढककर लेजा और घर में एक गुप्त स्थान पर रख दे। घर के किसी सदस्य को कुछ मत बताना। नहीं तो मन्त्रशक्ति खत्म हो जायेगी। सांझ को दियाबत्ती करके इस डिब्बे पर अगरबत्ती जलाना और भगवान् का नाम लेकर इसे खोलना। तुझे दो स्वर्णसूत्र मिलेंगे'। जमुनादेवी ने घर आकर वैसा ही किया। तीन चार घंटे प्रतीक्षा में कठिनाई से कटे। सात बजे अगरबत्ती जलाकर जैसे ही डिब्बा खोला जमुनादेवी के मुख से 'हाय! मैं तो लुट गई' जोर की आवाज निकली। क्योंकि डिब्बे में तो मात्र रेत भरी हुई थी। आवाज सुनकर चौक में बैठे ख्याली राम जी अन्दर गये और हाल सुनने पर लगे गालियाँ देने। पर गया सोना अब हाथ आने से रहा। जब जमुनादेवी ने आंखें बन्द करके पांच बार मन्त्रजाप किया तभी साधु ने डिब्बा बदल दिया।

बुद्धि के गुण

सन् १९७७ की घटना है लुडवा (कच्छ) निवासी श्री वेल जी शिवगण वेलाणी, पाली (राजस्थान) जिले में सांडेराव (रेल्वे स्टेशन) के समीपस्थ अपने एक फार्म में कृषिकार्य की देखरेख करते थे। समीप ही कुछ अन्य परिश्रमी कच्छी लोगों के भी फार्म थे। उनमें से श्री पचाण भाई के खेत पर एक वैरागी साधु और उसके चेले ने डेरा जमाया। श्रद्धावश पचाण भाई ने उनके लिये एक पर्ण कुटिया बना दी। साधु ने धूनी रमायी। कुछ कुछ सत्संग की बातें भी चलने लगीं। लोगों की भीड़ जुटने लगी। साधुजी की मान्यता बढ़ने लगी। समीपस्थ ग्राम के ठाकुर पृथ्वीसिंह ने एक दिन वेलजी भाई के पास आकर कहा — 'अरे वेलजी भाई! घर द्वार पर सत्सङ्ग की गंगा बह रही है और एक आप हैं कि बुलाने पर भी नहीं आते'। पचाण भाई के भी बहुत आग्रह के कारण एक दिन वेलजी भाई साधु की धूनी पर गये। वेलजी भाई को देखते ही साधु ने उनका नाम लेकर पुकारा और बैठने को कहा। पांच मिनट के अन्तराल में ही वेलजी भाई ने देखा, कि कुछ भक्तों ने जो ५ या १० रुपयों के नोट अथवा रुपये भेंट किये, उनको साधु ने चिमटे से उठाकर धूनी में अग्नि की भेंट कर दिये। लोग तो इस घटना से साधुजी के त्याग की महिमा गाने लगे। पर श्री वेल जी भाई उठ खड़े हुए और "आ माणस क्यां तो तमारी कोई दीकरी ने उपाड़ी लई जशे अथवा तमारा 'खीसा ऊपर हाथ साफ करी नांखशे' ऐसा पचाण भाई को चेताकर अपने फार्म पर आ गये। पचाण भाई आदि ने "वेलजी भाई तो आर्यसमाजी छे" ऐसा कहकर उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

कोई बीस दिन बीते होंगे। एक दिन बड़े सबेरे पचाण भाई वेलजी के पास आये और रोते हुए से बोले— 'अरे वेलजी भाई! हुं तो लुटी गयो छुं, अरे हुं तो लुटी गयो छुं, हवे हुं शुं करुं'। वेलजी भाई— 'अरे! बोलो तो खरा! थयो शुं? पचाण भाई "हुं तमारी चेतावणी ऊपर ध्यान नहीं आयुं, तेनुं ज फळ छे, हाय! हुं लुटी गयो। तमे साचुं कह्यु हतुं'। वेल जी भाई के आश्वस्त करने और बार बार पूछने पर पचाण भाई ने आप बीती सुनाई—

"चार दिवस पहले वह साधु बोला कि "बच्चा! अब हम यहाँ से जायेंगे। हमारे द्वारा और कुछ दिन रुकने का आग्रह करने पर वे मौन हो गये। लोगों के अपने अपने घर चले जाने पर, साधु ने मुझे अपनी कुटिया में बुलाया और कहा— 'पचाण भाई! तुमने हमारी बहुत सेवा की है, सो हम तुम्हें कुछ प्रसाद देना चाहते

हैं। अच्छा, तुम्हारी जेब में कुछ रुपये हैं?' मैंने पांच का नोट निकाला और उनके हाथ पर रखा। उन्होंने मेरे नेत्र बंद करवाये और 'जय हनुमान' मन्त्र को तीन बार बोलने को कहा। मैंने बोलकर आंखें खोलीं, तो देखा कि साधु की आंखें तो बन्द हैं, पर उसके हाथ में पांच-पांच के दो नोट हैं। साधु ने दोनों मुझे दे दिये। इसी प्रकार दस के और बीस के नोट पर भी यही नाटक दुहराया गया। अब मेरी जेब में पैंतीस के स्थान पर सत्तर रुपये थे। मैं बड़ा प्रसन्न। 'साधुजी तो एक दे दो करने वाले हैं'। थोड़ी देर रुककर साधु बोले— 'भगत! हम तीन दिन और ठहरेंगे। तेरे से जितने हरे हरे नोट (= सौ सौ रुपयों के नोट) इकट्ठे हो सकें, कर लो और हमारी मन्त्रसिद्धि देखो।' मैं लोभ में पड़ गया। कुछ अपने पास से और कुछ इधर उधर से उधार लेकर, मैंने १३० हरे नोट (= तेरह हजार रुपये) इकट्ठे किये और उतावला सा साधु जी के पास पहुँच गया।

मुझे वे कुटिया में ले गये। चले को बाहर पहरे पर बैठा दिया। साधुजी ने अपने थैले में से सफेद कागजों की एक गड्डी निकाली। गड्डी की लम्बाई चौड़ाई सौ के नोट के बराबर की थी। कांच की एक समान आकार की पट्टी पर सौ का नोट रखा, फिर उसके ऊपर उसी नाप का एक कागज का टुकड़ा रखा, फिर सौ का नोट, फिर एक कागज। ऐसे पूरे एक सौ तीस नोट और उनके साथ एक सौ तीस कागज के टुकड़े रखकर, ऊपर से कांच की एक पट्टी रखी। फिर उस बंडल को मौली (= कलावे) से अच्छी प्रकार लपेटा और एक चौकी पर रखी हुई हनुमान् की तसवीर के सामने रखकर, मुझे एक सौ इक्कीस बार 'जय हनुमान्' का जप करने को कहा। मैंने आंखें बंद करके एकाग्र होकर १२१ बार मन्त्र का जाप किया। जप की समाप्ति पर साधु बोला— 'वाह भगत! तेरा ध्यान अच्छूक है। देख, हमने भी इसी बीच हनुमान् अष्टक से इस बण्डल को मन्त्रित कर दिया है। तू इसको चुपचाप ले जाकर, एक सन्दूक में रखकर ताला लगा दे। दिन में तीन बार और रात्रि में दो बार सन्दूक के ऊपर अगरबत्ती खेना और ग्यारह बार मन्त्रजप करना। इसमें क्या है, इसका रहस्य किसी को न बताना, अपनी पत्नी को भी नहीं। नहीं तो अनिष्ट हो जायेगा। आज से चौथे दिन सबेरे नहा धो अगरबत्ती करके सन्दूक खोलना। बस! सौ सौ के २६० नोट तेरे हाथ में होंगे। हमने इतने दिन तुम्हारी धरती पर बिताये हैं। भगवान् भगत को कभी नहीं भूलते हैं।' ऐसा कहकर साधुजी ने मेरे

बुद्धि के गुण

सिर पर हाथ रखा। मैंने घर आकर कहे अनुसार उस पैकेट को सन्दूक में रखकर ताला लगा दिया और अगरबत्ती जला दी।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोग तो धूनी पर जा बैठे, पर गुरु चले नहीं आये। जब धूप निकलने पर भी नहीं आये, तो कुटिया में झाँककर देखा। पता लगा कि अभी तक वे सो रहे हैं। दस बजे तक भी बाहर न आने पर, कुछ सन्देह हुआ। किंवाड़ हटाकर देखा, तो पता लगा, कि घास के पूलों को लम्बा लेटा कर, उन पर गेरुए वस्त्र ओढ़ रखे हैं। लोगों ने तो इसे साधु महाराज का विनोद समझा। पर मेरे मन में खटका हो गया। पर अपने आप को मैंने ढाढ़स बंधाया, कि चलो दुगुने न सही, कम से कम १३० नोट तो अपने सुरक्षित हैं ही। तीन दिन तक बताये अनुसार अगरबत्ती करता रहा। पत्नी आदि के बहुत पूछने पर भी कुछ नहीं बताया। अभी सबेरे नहा धोकर अगरबत्ती करके अभी सन्दूक खोल के उस कांच की पट्टियों वाले बंडल को खोलकर देखा तो ऊपर और नीचे एक-एक सौ का नोट है, बाकी सब खाली कागज ही कागज हैं। वालजी! मेरे पैरों के नीचे से मानो भूमि खिसक गई हो। अब क्या करूँ? उनको कहाँ ढूँढ़ूँ? तीन दिन में तो वे न जाने कहाँ के कहाँ जा पहुँचे होंगे। अरे लोभ के कारण उनकी चालाकी मुझे समझ में नहीं आई। जब मुझसे आंखे बन्द करके १२१ बार जप करवाया। हो न हो उसी बीच उन्होंने वह कांच की पट्टियों वाला बण्डल बदल दिया। असली अपने झोले में डाल लिया।”

पचाण भाई की व्यथा सुनकर वेलजी भाई ने आश्वासन देते हुए कहा कि भाई! बुद्धि को ताक पर रखकर अन्धविश्वास करने का ही यह फल है। चलो, अब सन्तोष करो। ऐसा समझ लो कि एक खेत की फसल इस बार नहीं हुई। पचाण भाई—“अरे बापा! इन तेरह हजार में चालीस नोट तो बैंक के केशियर के थे। उसे मुझे असली बात बतानी पड़ी थी, सो उसने भी चार हजार दुगुने करने को दिये थे। सो वह, मुझ पर जो बीती उस पर विश्वास करेगा नहीं और मुझे आज उसे आठ हजार देने ही पड़ेंगे। इस तरह मुझे घर बैठे सत्रह हजार का घाटा हो गया। उन मुस्टंडों की सेवा करने में और माल खिलाने में जो खर्च हुआ वह अलग। हाय!”

आये दिन ऐसी घटनाएं होती रहती हैं। पर विवेक—बुद्धि के अभाव में लोग फिर फिर शिकार होते ही जाते हैं। किसी वस्तु को काटकर उसके टुकड़े किये जा सकते हैं। अथवा वैसी ही दूसरी वस्तु उसके साथ रखने पर कहा जा सकता है, कि

यह दुगुनी हो गई। किन्तु कभी भी बिना किसी उपादान के कोई वस्तु, जेवर, रुपया या नोट अपने आप दुगुने नहीं हो सकते। यह सर्वथा असम्भव है। जमुनादेवी के समान पचाण भाई वाले केस में भी पहले तो जो पांच, दस और बीस के नोट को दुगुने करने का नाटक था, उसमें निश्चय ही पचाणभाई के आंखे बन्द करने पर साधु के द्वारा दूसरा नोट अपनी ओर से मिला दिया गया। रही बात नोट के साथ कागज रखने से उसका भी नोट हो जाना, सो यह भी बिना किसी विशेष रसायन के प्रयोग के और अतिविशेष कागज के असम्भव है। रसायन प्रयोग से भी असली और नकली दोनों फीके हो जायेंगे और फिर यह कानूनन अपराध भी है। मन्त्र-तन्त्र से जेवर या रुपये-नोट दुगुने हो जाने की बात सर्वथा मिथ्या है।

६. अर्थ-विज्ञान

बुद्धि का छठा गुण है 'अर्थविज्ञान'। अर्थ अर्थात् अभिप्राय को समझना। शब्द को न पकड़कर उसके वास्तविक अभिप्राय पर ध्यान देना। इस गुण के कारण मनुष्य बहुत सी परेशानियों से बच जाता है। इसके अभाव में कभी-कभी परिवार के परिवार वैमनस्य की ज्वाला में जलकर राख हो जाते हैं। परिवार के सदस्यों के द्वारा परस्पर किये गये शब्दप्रयोगों के सही अभिप्राय (= अर्थ) को न समझकर उलटा अर्थ लगा लेने से लम्बे समय तक कड़वाहट बनी रहती है और घर एक शीतयुद्ध का स्थल सा बन जाता है।

अभिप्राय-ज्ञान

कानपुर के सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्री देवीदास जी आर्य ने हमें अपने जीवन की एक घटना सुनाई। उन्होंने लगभग दो हजार लड़कियों और महिलाओं को आततायी विधर्मियों के चंगुल से छुड़ाया है। इस कार्य में जागरूक वकीलों और पुलिस-अधिकारियों ने भी उन्हें यथावसर सहयोग दिया।

एक बार एक अपहृता की विमुक्ति के सम्बन्ध में उन्हें एक वकील से परामर्श करना था। उनके मुंशी से पता लगा, कि वकील साहब घर चले गये हैं। कार्य में अत्यावश्यक शीघ्रता की अपेक्षा के कारण देवीदास जी को वकील के घर जाना पड़ा। इससे पहले सदा वे उनके ऑफिस में ही उनसे मिला करते थे। पहली बार ही उनका वकील के घर जाना हुआ था। दरवाजा खुला। वकील साहब और अन्य गृहसदस्य बैठक में ही खड़े मिले। उन्होंने देवीदास जी का 'नमस्ते' से अभिवादन किया। देवीदास

जी ने आशीर्वाद दिया। कुछ क्षणों बाद वकील साहब ने अपनी पुत्री 'नीरजा' से कहा— 'नीरू! अपनी मम्मी से कहो, कि श्री पं० देवीदास जी के लिये जलपान आदि लावें। यह सुनकर देवीदास जी चौंके और कहने लगे— "भाई! क्षमा करना। मेरे से गलती हो गई। मैंने समझा कि ये महिला आपकी पत्नी हैं, इसलिये मैंने 'जोड़ी सदा बनी रहे' का आशीर्वाद दे दिया। पर अब आपका नीरू (= नीरजा) के प्रति जो आदेश था उससे ज्ञात हुआ, कि आपकी पत्नी अन्दर कहीं कमरे में है"। देवीदास जी की समस्या का समाधान करते हुए नीरजा बोल उठी— "पण्डित जी! ये मेरे पापा हैं और ये ही मेरी मम्मी हैं। पर ये साढ़े नौ वर्ष से आपस में बोलते नहीं हैं और इस बीच में मेरी दो बड़ी बहिनों की शादी भी हो चुकी है, फिर भी ये दोनों आपस में नहीं बोले"। नीरजा के इस रहस्य—भेदन के बाद वकील साहब और उनकी पत्नी घर में अलग अलग दिशाओं में भाग लिये। इस स्थिति को देखकर देवीदास जी अपने आगमन के असली उद्देश्य को तो भूल से गये और ऊंची आवाज में बोले— "सुनो, वकील साहब और बहिन जी! मैं अब घरने पर बैठता हूँ, जब तक इस घर में इस नारकीय मनमुटाव और विद्वेष का अन्त नहीं होता, तब तक मेरा धरना जारी रहेगा"। ऐसा कहकर श्री देवीदासजी बैठक में फर्श पर ही बैठ गये।

थोड़ी देर के बाद, प्रयत्न करने पर वकील साहब और उनकी पत्नी को बैठक में बुलाने में वे सफल हो गये। दोनों की एक दूसरे के प्रति शिकायतों का घटस्फोट हुआ। सारे गुब्बार बाहर निकले। अन्त में, सारे विद्वेष का आरम्भ कहाँ से हुआ, उसका भी पता लग गया। बात बिल्कुल साधारण थी। लगभग दस वर्ष पूर्व वकील साहब की बड़ी लड़कियाँ पढ़ने जाती थीं। बड़ी कॉलेज में और उससे छोटी हाईस्कूल में। एक दिन बड़ी ने अपनी माँ से कहा— "मम्मी! मेरी सहेलियों को तो जेब खर्च एक रुपया मिलता है, आप मुझे आठ आने (= पचास पैसे) ही देती हो, मुझे भी एक रुपया दे दो न"। मम्मी ने उसे एक रुपया दे दिया। मझली (= हाईस्कूल वाली) को पचास पैसे ही मिले। उसने सांयकाल पिताजी को शिकायत कर दी, कि मम्मी बड़ी दीदी को तो जेबखर्च का एक रुपया देती है। बस, वकील साहब (संभवतः पहले से ही क्रुद्ध हो) रसोई में जा धमके और पत्नी को क्रोध में बोले— "तूने बड़ी को एक रुपया क्यों दिया? तू लड़की को बिगाड़ रही है। तू इनकी दुश्मन है" आदि आदि। पत्नी— "मैं इसकी माँ हूँ, यह मेरी बेटी है, मैं इसे कैसे बिगाड़ सकती हूँ"। यह सुनकर वकील

साहब और तराँ गये तथा पत्नी के सही अभिप्राय को न लेकर, उसके शब्दों को पकड़ कर, मन में अन्यथा भाव लेते हुए बोले - "अच्छा! यह तेरी बेटी है, मेरी नहीं है। तू दुष्टा है। मेरा तेरा अब कोई वास्ता नहीं।" यह कहने के बाद से वकील साहब ने पत्नी से बोलना बन्द कर दिया। पत्नी ने भी वैसा ही किया और दोनों ने बोलने को प्रतिष्ठा का बिन्दु बना लिया। उन ९-१० वर्षों में कई हर्ष के अवसर आये और कई दुःख के अवसर आये, पर दोनों मौन रहे, बराबर तनातनी बनी रही। श्री देवीदास जी के अथक सत्प्रयास से वह घर उस नारकीय वातावरण से उबर सका।

अब बताइये शब्द के सही 'अर्थ' पर न जाने से वकील महोदय ने विद्वेष का कैसा सूत्रपात कर दिया। पत्नी के कथन का उद्देश्य मात्र इतना था, कि कोई भी मां अपनी पुत्री को कैसे बिगाड़ने देगी। मैं भी इसकी माँ हूँ। इसके आग्रह के कारण मैंने इसे आज एक रुपया दे दिया। मेरा इसे बिगाड़ने का उद्देश्य नहीं था। पर वकील साहब की बुद्धि उस समय 'अर्थविज्ञान' रूपी सद्गुण से रिक्त थी। अतः अर्थ का अनर्थ कर दिया।

कभी-कभी शब्द अपने प्रचलित अर्थ से हटकर भी कुछ अन्य ही सूचित करता है। और कभी कभी वह शब्द एक क्षणिक भावावेश तक ही अपने अर्थ का वाहक होता है। बच्चे की उदण्डता से क्षुब्ध होकर मां गुस्से में कह बैठती है - "इससे तो तू मर जाये तो अच्छा है"। पर क्या वास्तव में ही वह मां अपने बच्चे को मारना चाहती है? नहीं। मां के उपरोक्त शब्दों को सुनकर कोई बच्चा - "अच्छा माँ! मैं मरने जा रहा हूँ" यह कहकर घर से बाहर चल दे, तो तुरत मां उठकर उसके पीछे दौड़कर उसे अपनी छाती से लगा लेगी, उससे चिपट जायेगी और कहेगी - "अरे! गुस्से में मेरे मुँह से ऐसे शब्द निकल गये थे। बेटा! बड़े कष्टों से तुझे पाला है। मैं तुझे मरने कैसे दूंगी"। यह कहकर वह आंसू बहाने लगेगी। फिर कहेगी - "तू उदण्डता मत किया कर, यही मेरा मतलब था"।

अतः शब्दों के सही प्रासंगिक अर्थ को समझ लेना यही बुद्धि का विशेष गुण है।

शब्दार्थ-जिज्ञासा

'अर्थविज्ञान' से अभिप्राय किसी गम्भीर, सूक्ष्म अथवा कठिन विषय को शीघ्र समझ लेने से भी है। जिस मनुष्य की बुद्धि में यह विशिष्ट गुण होता है, वही किसी गम्भीर विषय की तह तक जा पाता है। किसी सूक्ष्म विषय को समझने में उसे देर नहीं लगती। किसी भी कठिन विषय में उसकी बुद्धि कुंठित नहीं होती। दर्शन,

बुद्धि के गुण

भौतिकी, गणित, परामनोविज्ञान आदि विषयों में, अर्थविज्ञान से रहित बुद्धि सफल नहीं हो पाती है। अध्यात्म, शब्दविज्ञान आदि शुष्कविषयों में अर्थविज्ञान-गुण-सम्पन्न बुद्धि वाले मनुष्य की ही सही रूप में रुचि हो पाती है।

सामान्यतया लोग श्रद्धावश वैदिक ऋचाओं को, कर्मकाण्ड से सम्बद्ध वेदमन्त्रों को और अन्य श्लोक आदि को रट लेते हैं अथवा साथ बोलते बोलते उन्हें मन्त्र आदि कण्ठस्थ हो जाते हैं। वे लोग नित्यप्रति उन्हें बोलकर यज्ञ-सन्ध्या आदि कार्य सम्पन्न भी कर लेते हैं। पर उन्हें उनके अर्थ जानने की रुचि नहीं होती है। ऐसा उनकी बुद्धि में 'अर्थविज्ञान' रूपी गुण के अभाव के कारण होता है। परिणाम यह होता है, कि उन्हें सन्ध्या-यज्ञ आदि कर्मों से पूर्ण फल की प्राप्ति नहीं होती, सन्ध्या-समय मन्त्र बोलते हैं, पर मन अन्यत्र भटकता रहता है। अर्थ जानने पर भी कभी-कभी मन नहीं लगता, तो अर्थज्ञान के अभाव में तो कभी लग ही नहीं सकता। मन्त्रों में या श्लोकों में क्या कहा गया है, इसका ज्ञान न होने पर तो ऐसा उच्चारण भाररूप ही है। कोई सम्पूर्ण वेद को रट ले, पर अर्थ न जाने तो वह भार उठाने वाले खम्भे या ढूँढ के समान है। किन्तु जो वेद के शब्द ज्ञान और उसके कण्ठस्थीकरण के साथ ही उसके अर्थ को भी जानता है, वह ज्ञान के द्वारा निष्पाप होकर मुक्ति पथ पर अग्रसर होता है^Δ। बिना अर्थ जाने बहुत शब्दों को रट लेना वैसा ही है, जैसे पूर्णतया सूखी लकड़ियों का भी ढेर तब तक प्रकाश और उष्णता प्रदान नहीं करता, जब तक उसमें अग्नि का संयोग न हो*। अर्थ रूपी अग्निसम्पर्क के बिना शब्दों से ज्ञान रूपी प्रकाश की उपलब्धि नहीं होती। अतः प्रत्येक श्रद्धावान् व्यक्ति को कम से कम नित्य के कर्मकाण्ड के - सन्ध्या - प्रार्थना - यज्ञ आदि के मन्त्रों के अर्थ अवश्य जान लेने चाहियें - कण्ठाग्र कर लेने चाहियें। यदि एक सप्ताह में एक मन्त्र के भी शब्दार्थ हम स्मरण कर लें, तो एक वर्ष में ५२ मन्त्रों से हमारा सार्थक परिचय हो जायेगा और तब इन मन्त्रों के उच्चारण के समय आनन्द आयेगा।

पुरुषार्थचतुष्टय-ज्ञान

'अर्थविज्ञान' का एक अभिप्राय - 'जीवन के अर्थों (= प्रयोजनों = उद्देश्यों = लक्ष्यों) का विशिष्ट ज्ञान' होना भी है। मानव-जीवन के मुख्य चार अर्थ हैं - चार उद्देश्य हैं - 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हें 'पुरुषार्थ' नाम से भी अभिहित किया

Δ 'स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।

योऽर्थज्ञः सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥ निरु १.१८

* यदधीतमविज्ञातं निगदे नैव शब्दये।

अनग्नाविव शुष्केधो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ॥ महाभाष्य, पस्पशा०

गया है। पुरुष अर्थात् मनुष्य के जीवन के अर्थ अर्थात् प्रयोजन = लक्ष्य = उद्देश्य। इन्हें पुरुषार्थ-चतुष्टय कहा गया है। वेद में 'व्यकृणोत चमसं चतुर्धा।' मन्त्र में इस चार प्रकार के पुरुषार्थ का बीज है। इसीलिये वेद प्राण स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्य में इस मन्त्र के भावार्थ में लिखा है— "हे मनुष्यो! परमेश्वर तुम्हें 'चार प्रकार के पुरुषार्थ को सिद्ध करो' ऐसा उपदेश करता है। यदि आप लोग मित्र होकर कार्यसिद्धि के लिये प्रयत्न करें, तो धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि तुम्हें निस्सन्देह रूप से प्राप्त हो सकती है" ^A। स्वामी जी ने स्ववेदभाष्य में 'धर्मार्थकाममोक्ष' की चर्चा कम के कम २४ बार की है। उनके अन्य ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है। दैनिक सन्ध्योपासना में भी पुरुषार्थचतुष्टय की शीघ्र सिद्धि हेतु प्रार्थना विहित की है ^B। प्राचीन ग्रन्थों में भी इन चार पुरुषार्थों की चर्चा है। महर्षि पुनर्वसु आत्रेय ने स्वशिष्यों को उपदेश करते हुए कहा था— "धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष" इनकी सिद्धि का मूल आधार स्वास्थ्य है। उस स्वास्थ्य का, कल्याण का और जीवन का हरण करने वाले हैं 'रोग' इसलिये उन रोगों के निरोध और प्रतीकार का उपाय करना चाहिये ^D।

धर्म

मनुष्यजीवन के इन चार अर्थों (= पुरुषार्थों) में से प्रथम अर्थ है— धर्म। किसी ब्राह्म क्रिया या चिह्नमात्र का नाम धर्म नहीं है। दिन में कई बार स्नान करना, तिलक लगाना, कण्ठी धारण करना, जटा बड़ाना, धोती या साड़ी आदि पहिनना अथवा अमुक के हाथ का खाना या नहीं खाना आदि का धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। स्नान, वस्त्रधारण आदि जो देश, काल, परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में होते रहते हैं। धर्म उसका नाम है जिससे अपने और पराये जीवन का धारण हो सके। जिसके द्वारा मनुष्य स्वयं जी सके और अन्यों को जीने का अवसर प्रदान कर सके। इसीलिये व्यास ने कहा था— 'धारण करने के कारण धर्म को 'धर्म' कहते हैं। यह धर्म ही प्रजाओं के जीवन का आधार है' ^E। सार रूप में कहें तो जिन कर्मों और व्यवहारों के कारण मनुष्य को स्वयं दुःख की अनुभूति होती है, या व्यवहार या कर्म दूसरों के प्रति न करे, बस इसी का नाम धर्म है ^G। इन्हीं बातों को

'हे मनुष्यो! परमेश्वरो युष्मान् चतुर्विधं पुरुषार्थं साधुतेति ब्रूते। यदि सखायो भूत्वा कार्यसिद्धये प्रयत्नं कुर्युस्तर्हि धर्मार्थकाममोक्षसिद्धिर्युष्मानसंशयं प्राप्नुयात्' ॥ ऋ० ४, ३५.३ मन्त्र पर 'हे ईश्वर दयानिधे भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः' धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्। रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च। प्रादुर्भूतो मनुष्याणामन्तरायो महानयम् ॥ (चर० सं० सूत्रस्थान, अ० १, श्लो० १५, १६) धारणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। महाभा० क० ६.९.५६-५८ श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

बुद्धि के गुण

स्पष्ट करते हुए मानवमात्र के हितोपदेष्टा मनु ने धर्म के दश लक्षण बताये हैं— 'धृति' (= धैर्य), क्षमा (= सहनशीलता), दम (= मन को वश में रखना), अस्तेय (= चोरी त्याग), शौच (= अन्दर-बाहर की तथा जीविका की शुद्धि), इन्द्रियनिग्रह, धी: (= बुद्धि का विकास), विद्या, सत्य और अक्रोध^Δ। धर्म के ये लक्षण सार्वभौम सर्वकालीन हैं। इन गुणों को सर्वहितकारी मानने से कोई मना नहीं कर सकता। इन धर्मों का धर्म-अवयवों का ज्ञान करना बुद्धि का एक विशेषता है।

अर्थ

पुरुषार्थ-चतुष्टय का दूसरा अङ्ग है - 'अर्थ'। यहाँ अर्थ से अभिप्राय है - मनुष्य के जीवन यापन के साधन। जिनमें भूमि, सम्पत्ति, धन-धान्य तथा ऐसे अन्य साधनों का समावेश होता है^H।

जीवन में अर्थ (= धन-सम्पत्ति आदि) की भी भारी महत्ता है। जब तक शरीर है, तब तक उसके सञ्चालन के लिये भोजन-वस्त्र-मकान आदि की अनिवार्यता है और इनकी पूर्ति के लिये धनसम्पत्ति भी अनिवार्य है। अतएव सारा संसार इस अर्थ (= धनैश्वर्य) के लिये प्रवृत्त रहता है^J। अर्थ = धनादि से रहित तो महेन्द्र (= महान् राजा) की भी लोक में मान्यता नहीं होती^K। अर्थवान् की ही सब लोग कद्र करते हैं^L। धनी व्यक्ति कुरूप हो, तो भी वह धन के कारण सुरूप मान लिया जाता है^M। सामान्य कुल में जन्मा व्यक्ति भी यदि अर्थवान् = पैसे वाला होता है, तो उसे बड़े कुल में जन्म परन्तु अर्थहीन व्यक्ति की अपेक्षा विशेष आदर मिलता है^N। अर्थ की - धन की अनिवार्यता के कारण ही महर्षि पुनर्वसु ने मनुष्य के द्वारा अवश्य पूरणीय तीन एषणों में— तीन कामनाओं में धनैषणा को भी स्थान दिया है। वे आगे कहते हैं, कि इससे बड़ा कोई पाप (= दुःख हेतु) नहीं है, कि साधनहीन व्यक्ति की दीर्घ आयु हो^O। महर्षि

Δ धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् (मनु ६.१२)

H मनुष्याणां वृत्तिरर्थः। मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः ॥ कौट० अर्थ० १५.१ ॥

नहि धान्यसमो ह्यर्थः ॥ चा० सू० २७६

J अर्थार्थं प्रवर्तते लोकः (चा० सू० ५०२)।

K महेन्द्रमप्यर्थहीनं न बहु मन्यते लोकः (चा० सू० २५६)।

L अर्थवान् सर्वलोकस्य बहुमतः (चा० सू० २५५)।

M विरूपोऽर्थवान् सुरूपः (चा० सू० २५७)।

N अकुलीनोऽपि धनी कुलीनाद् विशिष्टः (चा० सू० २६०)।

O इह खलु पुरुषेण... तिस्र एषणाः पर्यष्टव्याः प्राणैषणा, धनैषणा, परलोकैषणेति।... न ह्यस्मात् पापात् पापीयोऽस्ति यदनुपकरणस्य दीर्घमायुरिति' (चरक० सूत्र० ११.५)

चाणक्य ने भी अर्थ=धन को धर्म और काम का आधार माना है और अर्थ की कामना को व्यसन नहीं माना है। वे कहते हैं कि निर्धन मनुष्य सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। धनों के द्वारा ही और अन्य धनों को खींचा जा सकता है, जैसे शिक्षित हाथियों के द्वारा ही (उद्वण्ड) हाथियों को वश में किया जाता है^P।

इस अर्थ = धनादि के विषय में विशेष ज्ञान होना बुद्धि का एक अतिविशिष्ट गुण है। ऐसी बुद्धि विकसित करके ऐश्वर्य-संचय करना चाहिये। स्वामी दयानन्द सरस्वती 'अर्थ' की महत्ता समझते हुए लिखते हैं— "सब मनुष्यों को पुरुषार्थ के द्वारा विद्वानों की जैसी बुद्धि प्राप्त करके बड़े भारी ऐश्वर्य का संचय करना चाहिये"। "मनुष्यों को श्री = धनसम्पत्ति की प्राप्ति के लिये सदैव उद्योग करना चाहिये। जैसे विद्वान् लोग धनप्राप्ति के लिये प्रयत्न करें, वैसे सबको प्रयत्न करना चाहिये"। "जिस कर्म से अतुल धनधान्य प्राप्त किये जाते हैं, उसका अनुष्ठान मनुष्य निरन्तर करें"। "मनुष्यों को सदा धनाढ्य होने की कामना करनी चाहिये और [इसमें] कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये"^Q।

संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद में भी धन-सम्पत्ति की महत्ता और उसकी प्राप्ति की आवश्यकता पर पर्याप्त बल दिया गया है। वहाँ, रयि, श्री, लक्ष्मी, वसु, मघ, धन, राघः आदि शब्दों के द्वारा धनैश्वर्य की उपलब्धि पर प्रचुर ध्यान दिलाया गया है।

वैदिक लोग नित्यप्रति 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' (ऋ० १०.१२१.१०)— 'हम सब धनैश्वर्यों के स्वामी बनें'। ऐसी नियमित प्रार्थना करते हैं। अथर्ववेद के धनसूक्त में कामना की गई है, कि मेरा धन सदा बढ़े कभी कम न हो*।

इन सब उद्धरणों से स्पष्ट है कि सभी मनीषी और शास्त्र धनैश्वर्य की उपलब्धि को मानवजीवन के लिये अनिवार्यरूप से आवश्यक बताते हैं। इसीलिये 'अर्थविज्ञान' को = धनैश्वर्य सम्बन्धी विशेष ज्ञान को और उसकी प्राप्ति के विज्ञान

^P अर्थमूलो हि धर्मकामौ (कौट० अर्थ० १.६१)। अर्थैषणा न व्यसनेषु गण्यते (चा० सू० २.५८) नाऽधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्नरा यत्नशतैरपि। अर्थैरर्थाः प्रबध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥ (कौट० अर्थ० १.४) ॥

^Q 'सर्वेः पुरुषार्थेन विद्वत्प्राज्ञां प्राप्य महदैश्वर्यं सञ्चेतव्यम्।' (ऋ० १.१४२.४ भाष्य)। 'मनुष्यैः श्रीप्राप्तय उद्योगः सदैव कर्त्तव्यो यथा विद्वांसो धनलब्धये प्रयतेरस्तद्वदनुप्रयतितव्यम्' (दिव्याय धर्त्रेः मन्त्रभाष्य)। 'येन कर्मणाऽतुलानि धनधान्यानि प्राप्यन्ते, तस्यानुष्ठानं मनुष्याः सततं कुर्वन्तु' (ऋ० १.१८८.२ भाष्य)

"मनुष्यैः सदा धनाढ्यत्वमेषणीयं प्रमादो नैव कर्त्तव्यः" (ऋ० ५.५४.१३ भाष्य) ॥

धनैर्न देवा धर्नमिच्छन्मनः। तन्मे भूयो भवतु मा कनीयः। अथर्व ३.१५.५

को बुद्धि का एक विशिष्ट गुण माना गया है। जो लोग क्षणिक उत्साह में आकर धनैश्वर्य को तुच्छ समझकर धनोपार्जन में यथासंभव नहीं लगते हैं, वे अन्ततः पराश्रित और परमुखापेक्षी बनते हैं। ऐसे कई मनुष्यों को जीवन के उत्तरार्ध में जाकर धनोपार्जन की चिन्ता करनी पड़ती है। शरीर के वृद्ध हो जाने पर भी भोजन-वस्त्र और अन्य आवश्यक कार्यों के निर्वाहार्थ धन की तो उतनी ही आवश्यकता रहती है, किन्तु शरीर आदि की शिथिलता के कारण धनोपार्जन का सामर्थ्य कम हो जाता है। इसलिये विद्योपार्जन की आयु के बाद युवावस्था में अवश्य धनोपार्जन में भी पूरा परिश्रम करना ही चाहिये। मानवमात्र के परम हितौषी मनु ने लिखा है— मनुष्य अपने जीवन में पहले रही असम्पन्नता (= गरीबी) के कारण अपने आपको अपमानित न समझे — आत्मग्लानि में न रहे। मृत्युपर्यन्त लक्ष्मी-धन-सम्पत्ति का अन्वेषण-उपार्जन करता रहे और धनप्राप्ति को दुर्लभ न समझे।

कृषि, पशुपालन, व्यापार, वाणिज्य, लेन-देन, राज्यसेवा, नौकरी, शिल्प, उद्योग, उद्यम आदि आदि जो भी उपाय धनोपार्जन हेतु अपनाये जायें उनमें धर्म का ध्यान अवश्य रखें। जहाँ तक बन सके हिंसा, छलकपट, धोखा, चोरी, परहानि, शोषण, राष्ट्रहानि, भ्रष्टाचार आदि से बचकर रहें। सात्त्विक तीक्ष्ण बुद्धि के योग से प्रचुर पुरुषार्थ करके धनसञ्चय करें। जिससे सब अपना योगक्षेम और परहित के कार्य सिद्ध कर सकें।

काम

अर्थ (= पुरुषार्थचतुष्टय) का तीसरा अङ्ग है 'काम'। काम, कामना, एषणा, अभिलाषा, इच्छा आदि पर्यायवाची हैं। किन्तु यहाँ काम का अभिप्राय सत्कामना होते हुए भी इसका एक विशिष्ट अर्थ है, जिसके अन्तर्गत सन्तान, पुत्र, पत्नी, पति, विलास, सुखोपभोग आदि का समावेश होता है। लक्षणकारों ने "स्त्री और पुरुष की एक दूसरे के प्रति जो चाह है— आकर्षण भरी इच्छा है उसे काम"* कहा है। इस 'काम' और इसके अन्तर्गत आने वाले पदार्थों को यदि एक शब्द में कहना चाहें तो वह है 'गृहस्थाश्रम'। कई लोग गृहस्थाश्रम को कीचड़ कहते हैं, परन्तु ऐसे कहने वाले बुद्धि की अल्पता के शिकार हैं। जब पुरुषार्थचतुष्टय में 'काम' को भी स्थान दिया गया है, तो उसके समन्वयक एक पद 'गृहस्थ' को निन्दनीय कैसे कहा जान

△ नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।

आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनानां मन्येत दुर्लभाम् ॥ मनु० ४.१३७ ॥

* स्त्रीपुरुषयोरन्योन्याभिलाषः कामः ॥

अर्थविज्ञान (पुरुषार्थचतुष्टय-ज्ञान) 'काम' = गृहाश्रम

चाहिये। प्राणीमात्र में अनिवार्य रूप से वर्तमान कामवासना मनुष्य में भी-स्त्री पुरुषों में भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। उसका सोद्देश्य और क्रमिक और सुनियन्त्रित आयोजन ही 'गृहस्थाश्रम' है।

गृहस्थाश्रम

प्राचीन मनीषी शास्त्रकारों ने गृहस्थाश्रम की निन्दा नहीं की है, अपितु प्रशंसा की है। चारों आश्रमों के कर्तव्योपदेष्टा मनु कहते हैं- 'जैसे वायु के आश्रय से सारे प्राणी जीवित रहते हैं, वैसे ही गृहस्थाश्रम के आश्रय से अन्य सब आश्रम वर्तमान रहते हैं^१। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी लोगों का लालन-पालन; दान और अन्नादि के द्वारा प्रतिदिन गृहस्थ ही करता है, इसलिये गृहस्थाश्रम सबसे बड़ा आश्रम है*। परमविरक्त योगिराज स्वामीदयानन्द सरस्वती ने भी अपने ग्रन्थों में गृहाश्रम की प्रशंसा की है। स्व-वेदभाष्य में ही वे लिखते हैं- "किसी को कभी भी गृहाश्रम के अनुष्ठान से भयभीत और कम्पित नहीं होना चाहिये। क्योंकि सभी उत्तम व्यवहारों का और आश्रमों का मूल आधार गृहाश्रम है। इसलिये इसका भलीभांति अनुष्ठान करना चाहिये। इस (गृहाश्रम) के बिना मनुष्यों की वृद्धि और राज्य की सिद्धि नहीं होती है^२। कई लोगों की समझ है, कि यदि ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में चलना है, तो गृहस्थी में नहीं फंसना चाहिये। ऐसे लोग ईश्वर-प्राप्ति और सांसारिक उपलब्धि को एक दूसरे का विरोधी मानते हैं। पर उनका ऐसा मानना अनुचित है। स्वा० दयानन्द सर० कहते हैं- "गृहाश्रम के आधीन ही सब आश्रम हैं। उन आश्रमों का वेदोक्त उत्तम व्यवहार के अनुसार सेवन किया जाय, तो वे अभ्युदय (= सांसारिक सुख) और निःश्रेयस (= मोक्षसुख) के सम्पन्न करने वाले होते ही हैं। इसलिये परमेश्वर की प्राप्ति के लिये गृहाश्रम का सेवन करना ही चाहिये^३। अन्यत्र स्वामी जी गृहाश्रम-निन्दकों को फटकारते हुए लिखते हैं- "जो

१ यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ मनु ३.७७ ॥

* यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।

गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ (मनु ३.७८)

२ नैव केनापि गृहाश्रमानुष्ठानात् कदाचिद् भेतव्यं कम्पनीयं च कुतः? सर्वेषां सद्यवहारानामाश्रमाणां च गृहाश्रमो मूलमस्त्यत एष सम्यगनुष्ठतव्यः। नैतेन विना मनुष्यवृद्धी राज्यसिद्धिश्च जायते" (गृहा मा बीभीत' यजु० ३.४१ मन्त्रभाष्य)।

३ गृहाश्रमाधीना एव सर्व आश्रमास्ते वेदोक्त-सद्यवहारेण सेविताः सन्तोऽभ्युदयनिःश्रेयससुखसम्पत्तये भवन्त्येवातः परमेश्वरप्राप्तये गृहाश्रमः सेव्य एवेति" (यजु० ८.३ भाष्य)

बुद्धि के गुण

कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है, वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है" (सत्यार्थ० ४ र्थ समु०)

धर्मप्रचार, समाजसुधार, शिक्षाप्रसार, तथा देशोत्थान आदि कार्यों में निर्द्वन्द्वता, निरन्तरता और तीव्रता की दृष्टि से कुछ प्रभावशाली पुरुषों और स्त्रियों का ब्रह्मचर्याश्रम से सीधा सन्यास लेना अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहना आवश्यक है। किन्तु ऐसा करना उन्हीं को योग्य है, जो तीव्र वैराग्यवान् हों और निरवच्छिन्न रूप से अपने आपको इन कार्यों में लगाये रखने की इच्छा, क्षमता और योग्यता रखते हों। जो युवक अथवा युवतियाँ सामयिक उत्साह के वशीभूत होकर आजन्म ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी रहने की प्रतिज्ञा तो कर लेते हैं, परन्तु तीव्र वैराग्य के अभाव में और निरन्तर कर्मशीलता की अक्षमता के कारण, वे आन्तरिक रूप से इसमें सफलता प्राप्त नहीं कर पाते हैं। बाहर से अपने आपको रोके रखना, किन्तु अन्दर लालसा का बना रहना वास्तव में मिथ्याचार^A है। बाल ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं — "और जो विवाह करना ही न चाहें, वे मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों, तो भले ही रहें। परन्तु यह काम पूर्ण विद्या वाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है, जो काम के वेग को थाम के इन्द्रियों को अपने वश में रखना^B।

इसलिये सुयोग्य लोगों (जो कि विरले ही होते हैं) को ही ऐसा व्रत लेना चाहिये। पूर्णविद्या, जितेन्द्रियता, योग और तीव्र वैराग्य न होने पर भी जो ऐसी प्रतिज्ञा कर लेते हैं और बलात् उस पर दृढ़ रहने का प्रदर्शन करते हैं, वे या तो कुण्ठाओं के कारण आन्तरिक रोगों से ग्रसित हो जाते हैं अथवा अप्राकृतिक और अनियत कदाचारों में लिप्त होकर नैष्ठिक व्रत को कलङ्कित करते हैं। अतः अतियोग्य अपवादों को छोड़कर सभी को गृहाश्रम में प्रविष्ट होना चाहिये और कर्तव्यपरायणता पूर्वक इसमें सफल होना चाहिये।

‘स्त्री-महिमा’

इस ‘काम’ रूपी अर्थ के आधार रूप ‘गृहाश्रम’ के दो घटक हैं— स्त्री और पुरुष। इन दोनों में भी मुख्य है ‘स्त्री’। गृहाश्रम में गृह तो है ही स्त्री पर आश्रित। वेद में इसीलिये कहा — ‘जायेदस्तम् (जाया+इद्+अस्तम्)^C। जाया = पत्नी (स्त्री) इद्=ही-

A कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।

इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ (महाभा० भी० २७.६)

B सत्यार्थ० तृ० समु०

C ऋ० ३.५३.४

१७०

बुद्धिनिधिः

अस्तम्=गृह है। इसी बात को कृष्ण-द्वैपायन व्यास जी ने- "गृह (= मकान) को 'गृह' नहीं कहते हैं, असलीरूप में तो गृहिणी (= गृहस्त्री) ही 'गृह' है। जो गृह (= घर) गृहिणी से रहित है, वह तो जङ्गल से भी अधिक कष्टदायक है" D इस रूप में प्रकट किया है।

कई एकाङ्गी और एकाक्षी लोग स्त्री को हीन और निन्दनीय एवं दूरतः त्याज्य मानते हैं। आद्य शङ्कराचार्य के नाम से प्रसिद्ध 'मणिरत्नमाला' के कुछ प्रश्नोत्तर शैली के वचनों में- "विश्वासपात्र कौन नहीं है? नारी। नरक का एक मात्र द्वार कौन सा है? नारी। नारी पिशाची है और अमृत सा दिखने वाला विष है। इस संसार में क्या त्यागने योग्य है? स्वर्ण और नारी। शराब के समान कौन बेसुध करने वाली है? नारी उसका चरित जाना नहीं जा सकता" G इस रूप में नारीनिन्दा मिलती है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो निम्नलिखित वचनों में नारीनिन्दा की पराकाष्ठा ही कर डाली-

ढोल गंवार सूत्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥ (रामच० सुन्द० ५९)

अधम ते अधम अधम अति नारी। नारी निबिड़ रजनी अंधियारी ॥

विधिहु न नारी हृदयगति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥

नारि सुभाउ सत्य कवि कह हीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥

साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया ॥

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।

विकल होइ सक मन हि न रोकी। जिमि रविमनि द्रव रवि हिं विलोकी ॥

क्या ऐसे लोग स्वयं निन्दनीय नहीं हैं? जिन्होंने अपने मनों रक्त आदि का व्यय करके अपनी कोख में इन शङ्कराचार्यों और गोस्वामियों के शरीरों का निर्माण किया, अमृततुल्य स्तनदुग्ध पिलाया और भारी कष्ट उठाकर उनका लालन पालन किया उन्हीं स्त्रियों के प्रति-स्त्रीजाति के प्रति ऐसे निन्दा भरे वचन कहना क्या महाकृतघ्नता नहीं है? माता बनी स्त्री के प्रति कितनी कृतज्ञता होनी चाहिये और कितना नमन होना चाहिये, सो किसी ने ठीक कहा है- "(अहा! माता के कितने उपकार हैं-)

D न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। गृहं तु गृहिणी हीनं कान्तारादतिरिच्यते ॥ महाभार० १२.३६४.३

G विश्वासपात्रं न किमस्ति? नारी। द्वारं किमेकं? नरकस्य नारी ॥

नारी पिशाची च सुधोपमं विषम्। किमत्र हेयं? कनकं च कान्ता ॥

संगोहयत्येव सुरेव का? स्त्री। ज्ञातुं न शक्यं चरितं तदीयम् ॥ मणि०

रामचरितमानस, अरण्य० १७ ॥

बुद्धि के गुण

प्रसव के समय माता को जो दुर्वारणीय वेदनाभरी पीड़ा होती है, उसके वर्णन को तो रहने ही दो। गर्भावस्था में बहुत समय तक जब माता को खाने पीने में अरुचि हो जाती है, तब उसका शरीर सूख जाता है (क्योंकि गर्भ तो तब भी मातृशरीर से पोषण लेता ही रहता है)। सन्तान को जन्म देने के बाद (कम से कम) एक वर्ष तक तो बालक के मलमूत्र ये युक्त शय्या पर भी माता को सोना पड़ता है। सन्तान कितना भी बड़ा जो जाय, किन्तु जिस माता के (द्वारा झेले गये) भारी कष्टों की पीड़ाओं में से एक का भी बदला वह नहीं चुका सकता, उस माता को प्रणाम है 'K।

उस मातृरूपिणी स्त्रीजाति के प्रति वास्तव में ही प्रत्येक को कृतज्ञ होना चाहिये। 'सन्तानों को जन्म देना, जन्मे हुएों का पालनपोषण करना ये महत्तम कार्य स्त्री के ही हैं और दैनिक लोकव्यवहार रूपी कार्यों का प्रत्यक्ष मुख्य आधार स्त्री ही हैं 'L।

'सन्तानसम्बन्धी सभी कार्य, यज्ञ-याग-अग्निहोत्र दान आदि धर्मकार्य, वृद्धों की परिचर्या, अतिथियों की सेवा, उत्तमरति और गृहपति तथा उसके पितामाता आदि का विशेष सुख स्त्री के ही आश्रय से होता है- उसी के सुपुर्द होता है 'M। 'इसलिये स्त्रियाँ ही असली लक्ष्मियाँ हैं 'N।

अतएव प्राचीन मनीषी महानुभावों ने और शास्त्रकारों ने स्त्रीजाति की प्रशंसा ही की है। व्यास मुनि लिखते हैं- 'ये स्त्रियाँ पूजायोग्या, अतिभाग्यशालिनी, पुण्य कर्मवाली और गृह की शोभा बढ़ाने वाली हैं, अतः इन्हीं स्त्रियों को लक्ष्मी कहा गया है। अतः इनकी विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिये'।

"स्त्रियाँ पुरुषों के अकेलेपन में - निस्सहाय परिस्थितियों में प्रियवचन बोलती हुई उनकी सच्ची मित्र होती हैं। धर्मकार्यों में पिता आदि के समान आगे बढ़कर भाग लेती हैं और मनुष्य के रुग्ण हो जाने पर माता के समान उसकी सेवा करती हैं"। "इसलिये भार्या (= स्त्री) पुरुष की अर्धाङ्गिनी है, वह उसका श्रेष्ठतम

K आस्तां तावदियं प्रसूतिसमये दुर्वारशूलव्यथा,

नैरुच्ये तनुशोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी।

एकस्यापि न कष्टभारभरणक्लेशस्य यस्याः क्षमो,

दातुं निष्कृतिमुन्नतोऽपि तनयस्तस्यै जनन्यै नमः॥ (सूक्ति० पृ० १०५)

L उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्। प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥ (मनु० ९.२६)

M अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा। दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह॥ मनु० ९.२७

N स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥ मनु० ९.२६।

अर्थविज्ञान (पुरुषार्थचतुष्टय) 'काम' (=स्त्री)

मित्र है, वह त्रिवर्ग (= धर्म-अर्थ-काम) का मूल आधार है और भवसागर के पार जाने वाले के लिये सहारा है"O।

सहस्रों वर्षों बाद स्त्रीजाति के सम्मान के पुनः प्रतिष्ठापक और स्त्रियों को वेदाध्ययन-अधिकार के सबल पक्षपोषक एवं स्त्रीशिक्षा के इदंयुगीन प्रथम भारतीय महामना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्ववेदभाष्य में लिखा है- "मनुष्यों को ईश्वररचित पदार्थों से अविनश्वर सुख की प्राप्ति के लिये अति उत्तम स्त्रियाँ प्राप्त करनी चाहियें। नित्य उद्योग करते हुए एक दूसरे के प्रति प्रीति को प्राप्त हुए (ऐसे जोड़े) विवाह करें। समान गुणों वाली स्त्रियों के बिना और पुरुषार्थ के बिना किसी को भी कुछ भी यथेष्ट सुख होना सम्भव नहीं है" P। "जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य की दीप्तियाँ सब पदार्थों को प्रकाशित करके कान्तिमय बनाती हैं, वैसे ही विदुषी उत्तमस्वभावा पतिव्रता स्त्रियाँ समस्त गृहकार्यों को प्रकाशित करती हैं। जहाँ स्त्री और पुरुष परस्पर प्रीतियुक्त होवें वहाँ सम्पूर्ण कल्याण ही होता है" Q। "जैसे प्राणियों के सुख के लिये रात्रि होती है, वैसे ही पति आदि के सुख के लिये उत्तम स्त्री होती है" R।

नारी-जाति के महत्त्व के पुरोद्रष्टा नारी-सम्मान के प्रथम उद्घोषक महर्षि मनु ने नारी-पूजा का फल बताते हुए कहा था- 'जिस राष्ट्र में, प्रान्त में, कुटुंब में अथवा परिवार में स्त्रियों की पूजा होती है- उनका सत्कार होता है, वहाँ दिव्य गुण वाले आत्मा जन्म लेते हैं और जहाँ इनका सत्कार नहीं होता वहाँ सारे कार्य निष्फल

- O पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
 स्त्रियः त्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः॥ (महाभारत उ० ३८.११)
 सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः। पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः॥
 अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा। भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥
 (महाभा. आदि० ७४.४३, ४१)
- P 'मनुष्यैरिश्वर-रचितपदार्थानां सकाशादविनश्वरसुखप्राप्तयेऽत्युत्तमाः स्त्रियः प्राप्तव्याः। नित्यमुद्योगेनान्योन्यं प्रीता विवाहं कुर्युः। नैव सदृशस्त्रीः पुरुषार्थं चान्तरा कस्यचित् किञ्चिदपि यथावत् सुखं सम्भवति" (ऋ० १.२२.१२ भाष्य)
- Q यथा ब्रह्माण्डे सूर्यस्य दीप्तयः सर्वाणि वस्तूनि प्रकाशय रोचयन्ति, तथैव विदुष्यः साध्यः पतिव्रताः स्त्रियः सर्वाणि गृहकर्माणि प्रकाशयन्ति। यत्र स्त्रीपुरुषौ परस्परं प्रीतिमन्तौ स्यातां तत्र सर्वं कल्याणमेव" (यजु० १३.२२ भाष्य)
- R यथा भूतानां सुखाय रात्री वर्तते, तथैव पत्यादीनां सुखाय सत्स्त्री भवति॥ (ऋ० ५.३.१७ भाष्य)

बुद्धि के गुण

हो जाते हैं^S। महर्षि व्यास ने भी इसे दृढतापूर्वक दुहराया है^T। मनु महाराज ने स्त्री जाति को एक नहीं अपितु अनेक स्थानों पर पूजनीय लिखा है^U।

इन सब महामना महानुभावों की कितनी सद्भावना और पूज्यदृष्टि थी नारीजाती के प्रति! वस्तुतः स्त्रीजाति इस मान-सम्मान की अधिकारिणी भी है। दयालुता, करुणा, सरलता, सरसता, मृदुता, वात्सल्य, सेवा, सहनशीलता, त्याग और समर्पण आदि सोम्य गुण निश्चय ही स्त्रियों के विशेष गुण हैं। और ये ही वे गुण हैं जिनसे गृहाश्रम की सत्ता, वृद्धि और उसका विकास सम्भव हैं। 'गुणाः पूजास्थानाम्'। इन विशिष्ट गुणों के कारण स्त्रीजाति पूजा-सम्मान-सत्कार की असली पात्र हैं।

यदि स्त्रियों में रूप, सौन्दर्य, लावण्य, सुकुमारता, प्रहर्ष, विशदता हाव-भाव, माधुर्य, स्मय, शृंगाररुचि आदि ईश्वर-प्रदत्त गुण हैं, तो वे पतिप्रमोदन, प्रजनन, सन्तानपालन आदि के लिये आवश्यक हैं। यदि इन गुणों के कारण कोई साधारण जन अथवा तथाकथित मुनि भी परस्त्री पर आसक्त होता है, तो यह उस पुरुष की निर्बलता है, स्त्री का दोष नहीं है। स्त्रीजाति में मातृवत् दृष्टि रखने वाला और पत्नीव्रत निभाने वाला पुरुष तो ऐसा कामासक्त नहीं बन सकता। कुछ स्त्रियों की चञ्चलता, परपुरुषरति, व्यभिचारवृत्ति के कारण सारी स्त्रीजाति को निन्दनीय समझना अन्याय ही नहीं, अपराध भी है। क्या पुरुष चंचलवृत्ति के नहीं होते? परस्त्रियों से शरीर सम्पर्क करने वाले क्या पुरुष नहीं है? स्त्रियों के भोलेपन और विश्वासु वृत्ति का लाभ उठाकर उन्हें अपने जाल में फंसाने वाले कौन हैं? पुरुष ही तो। प्रतिवर्ष सहस्रों सती स्त्रियों का सतीत्व हरण करने वाले और दस मासों की दुधमुंही बच्चियों से लेकर ९६ वर्षों तक की वृद्धाओं को अपनी हवस का शिकार बनाने वाले बलात्कारी कौन हैं? पुरुष ही तो। अनगिनत राजकुमारियों, रानियों और सीताओं का हरण करने वाला रावण कौन था? पुरुष ही तो। अपने राजमहलों और हरमों को रानियों और बेगमों के अतिरिक्त अपनी कामवासना की पूर्ति के लिये सैकड़ों सुन्दरियों से पाटने वाले राजा और नवाब पुरुष ही तो थे और आज हैं। फिर सारा दोष स्त्रियों के सिरपर ही क्यों?

स्त्रीपुंघर्म-व्यभिचार आदि में स्त्री के समान पुरुष भी उतना ही अपराधी है। अपितु पुरुष अधिक अपराधी है। यदि पुरुष दुराचार और व्यभिचार से दूर रहें

S यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥ (मनु ३.५६)

T पूज्या लालयितव्याश्च स्त्रियो नित्यं जनाधिप । स्त्रियो यत्र हि पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥ (महाभारत अनु ४.६)

U पूज्या भूषयितव्याश्च ॥ मनु ३.५५ ॥ तस्मादेताः सदा पूज्याः ॥ मनु ३.५९ ॥

अर्थविज्ञान (पुरुषार्थचतुष्टय) 'काम' (=सन्तान)

तो स्त्रियाँ तो स्वतः ही दूर रहेगीं। महाराज अश्वपति ने प्रतिज्ञापूर्वक कहा था, कि मेरे राज्य में कोई स्वैरी (=व्यभिचारी) पुरुष ही नहीं है, तो स्वैरिणी (=व्यभिचारिणी) स्त्री कहाँ से मिलेगी^V। वेश्यावृत्ति वस्तुतः स्त्रीजाति पर भारी कलङ्क है। पारिवारिक प्रताड़नाओं, गरीबी, धोखाधड़ी, फुसलाइट, देहव्यापार से पैसा कमाने वाले दुष्टों के षड्यन्त्र से बहुत सी बालाएं और युवतियाँ वेश्यावृत्ति के लिये मजबूर हो जाती हैं। पर उनके अड्डों पर और चकलों पर जाते कौन हैं? पुरुष ही तो। यदि पुरुषवर्ग उधर कदम ही न बढ़ावें और शासन उन स्त्रियों के योगक्षेम की योग्य व्यवस्था कर दे, तो नारी जाति के सिर का यह कलङ्क समाप्त हो सकता है।

आजकल चलचित्रों, मॉडलिंग प्रदर्शनों, विज्ञापनों और अखबारों में स्त्रियों का प्रायः नग्न अथवा अर्धनग्न रूप में प्रदर्शन वास्तव में चिन्ता का विषय है और कामोत्तेजकता के लिये स्त्रियों को दोषी ठहराने का यह एक कारण बनता है। किन्तु विचार कर देखा जाय, तो इसके मूल में भी पुरुषवर्ग की विकृत रुचि ही है। यदि पुरुष ऐसे नग्नता वाले चलचित्रों, अखबारों आदि का बॉयकाट करें, तो इसे रोका जा सकता है। राष्ट्र, समाज और परिवार मिलकर स्त्रीजाति के प्रति अपने कर्तव्यभाव को समझें, तो वास्तव में ही स्त्रीजाति को अपना बड़प्पन का स्थान मिल सकता है। वेद में तो स्त्री को स्थान ही ब्रह्मा=(बड़ा, महान् गुणों से युक्त) का दिया है—“स्त्री हि ब्रह्मा बभूवैथ”^W। इस प्रकार पुरुषार्थ-चतुष्टय के तृतीय अवयव 'काम' के व्यावहारिक रूप 'गृहाश्रम' का प्रमुख घटक 'स्त्री' सर्वथा प्रशंसनीय ही है निन्दनीय नहीं।

सन्तानोत्पत्ति

इस 'काम' अर्थ का एक मुख्य लक्ष्य है, उत्तम सन्तानों का निर्माण। वस्तुतः यही तो पितृऋण चुकाना है। वृद्ध माता-पिता आदि की सेवाशुश्रूषा करके उन्हें सुख पहुँचाना पितृऋण से उर्ऋण होना है और सन्तानों को जन्म देकर उन्हें योग्य बनाना भी पितृऋण चुकाना है। जैसे हमारे मातापिता ने हम आत्माओं को ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नति के लिये ये शरीर रूपी साधन प्रदान किये और हमें समर्थ बनाया। वैसे हम भी कुछ आत्माओं को संसार और अध्यात्मजगत् में सफलता के लिये शरीर प्रदान करें— उन्हें जन्म दें, तभी पितृऋण से उर्ऋण सच्चे अर्थों में हो सकते हैं। इसका अपवाद केवल वे ही पवित्र आत्मा हो सकते हैं, जिन्होंने अपना सारा जीवन देश-धर्म-समाज की सच्ची सेवा में— परोपकार

^V न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।

नानाहिताग्निर्नाऽविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥ छान्दो ५.११.५

^W ऋ० ८.३३.१९

बुद्धि के गुण

में लगाया हो। अन्यथा तो सेवा, उत्तरदायित्व और तपस्या से भरे गृहाश्रम-सन्तानपालन से पलायन करने वाले लोग पितृऋण को सिर पर लिये ही इस लोक से विदा होते हैं।

वास्तव में सन्तानों की प्राप्ति स्वर्गजन्यसुखों में प्रथम है। इसलिये चाणक्य कहते हैं—“सन्तानरहित को स्वर्ग की उपलब्धि कैसे सम्भव है? ‘गुणवान् पुत्रपुत्रियों के होने पर ही कुटुम्बी को विशेष सुख की उपलब्धि होती है’। ‘पुत्र पुत्रियों की उपलब्धि बहुत बड़ी उपलब्धि है’। ‘पुत्रपुत्रियों के द्वारा ही किसी कुल की प्रसिद्धि होती है’^X।

गृहाश्रम-स्त्रीपुरुषव्यवहार-अपत्योत्पत्ति-सन्तानपालन आदि रूप ‘काम’ अर्थ का विशिष्ट और विशद (= विस्तृत) ज्ञान होना प्रत्येक के लिये आवश्यक है। जिनकी बुद्धि इस विज्ञान से युक्त है, वे वस्तुतः बुद्धिशाली हैं।

मोक्ष

पुरुषार्थ-चतुष्टय का अन्तिम और लक्ष्यात्मक अवयव है ‘मोक्ष’। मोक्ष का ही मुक्ति, निःश्रेयस, अपवर्ग, नाक, अमृत आदि नामों से वर्णन किया गया है। वेद में मोक्ष का सङ्केत ‘मुमुक्षु’ शब्द में निहित है*। मोक्ष या मुक्ति का अर्थ है दुःखों और उनके कारणों से छूट जाना—मुक्त हो जाना। महर्षि कपिल आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन प्रकार के दुःखों से सर्वथा छूट जाने को मुक्ति या मोक्ष मानते हैं^Δ। इसी मोक्ष को वे अत्यन्त पुरुषार्थ कहते हैं। वास्तव में पुरुषार्थ चतुष्टय में मोक्ष है ही अत्यन्त श्रमसाध्य और उद्देश्य रूप पुरुषार्थ। गौतम मुनि अविद्या (= मिथ्याज्ञान), लोभ आदि दोष, दुष्ट विषय-व्यसनों में प्रवृत्ति, जन्मधारण और दुःख इनसे क्रमशः छूट जाने को—इनसे मुक्त हो जाने को अपवर्ग (= मोक्ष) कहते हैं^B। इसी स्थिति में मनुष्य का निश्चित कल्याण होता है, अतएव इस मोक्षावस्था को ही ‘निःश्रेयस’ कहा जाता है। इस मुक्ति-स्थिति में किसी प्रकार का दुःख नहीं होता और दुःखशबल (= दुःखमिश्रित) सांसारिक सुख का भी अभाव होता

X नानपत्यस्य स्वर्गः (चा० सू० ३८८)। पुत्रे गुणवति कुटुम्बिनः स्वर्गः (चा० सू० ३८९)। अतिलाभः पुत्रलाभः (चा० सू० ३८५)। कुलं प्रख्यापयति पुत्रः (चा० सू० ३८७)।

* मुमुक्षुर्वै मर्नवे मानवस्युते ॥ ऋ० १.१४०.४

Δ अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥ सां० १.१

B दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः। न्या० १.१.२ ॥

है अतः इसे 'नाक' भी कहते हैं। 'क' अर्थात् सुख। 'अक' अर्थात् सुख का अभाव=दुःख। न+अक=नाक अर्थात् दुःख का सर्वथा अभाव। इस अवस्था में वह पुनः जन्म (=शरीर) को प्राप्त नहीं होता, अतः मृत्यु भी नहीं होती इसलिये मोक्ष को 'अमृतत्व' (=अमृतावस्था) भी कहते हैं। वेद में 'नाक' और अमृतत्व (अमृत) शब्द मोक्ष के लिये अधिक प्रयुक्त हुए हैं^७।

मोक्ष-अवस्था में जीवात्मा तीनों प्रकार के शरीरों के बन्धनों से रहित होकर निर्बाध (= अव्याहतगति) रूप से सर्वत्र विचरण करता है और ब्रह्म (= परमेश्वर) के आनन्द में लीन रहता है। इस स्थिति में आत्मा को भौतिक सङ्ग तो नहीं रहता पर उसके सत्यसङ्कल्प और स्वाभाविक शुद्ध गुण उसमें बने रहते हैं। जिन्हें 'तुरीय शरीर' भी कहा जाता है^A। इन गुणों से ही वह मुक्तावस्था में सुनने, छूने, देखने आदि का ज्ञान या कार्य कर लेता है^B।

सामान्य मनुष्य की बुद्धि खाना-पीना, सोना, कामोपभोग और इनके भौतिक साधनों - उपकरणों के जुटाने को ही अपने जीवन का लक्ष्य समझती है। 'अर्थविज्ञान' गुण से युक्त बुद्धि वाला मनुष्य ही इन सबसे हटकर मनुष्यजीवन के विषय में विचार करता है। हम कौन हैं? इस शरीर के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है? यह जगत् क्या है? किसने रचा है? हम इस संसार में क्यों आये हैं? हमारा क्या लक्ष्य होना चाहिये? पशुओं के जीवन में और मानवजीवन में क्या अन्तर है? मानवजीवन की श्रेष्ठता किस में है? इन विविध दुःखों से कैसे छुटकारा मिल सकता है? शरीर के लिये आवश्यक भौतिक पदार्थों के सङ्ग्रह एवं उनके उपभोग के साथ साथ हम कौन से उपाय करें, कि इन दुःखान्तक परिस्थितियों तथा पदार्थों के बन्धनों से छूट सकें? आदि आदि का चिन्तन वही मनुष्य कर सकता है, जिसकी बुद्धि में 'अर्थविज्ञान' रूपी विशिष्ट गुण विद्यमान रहता है।

वेद में चार प्रकार की योग्यता वाले मनुष्यों को मोक्ष पाने का अधिकारी बताया है। ऋग्वेद में कहा है- "नृचक्षाः (= आत्मदर्शन करने वाले) अर्थात् विवेकशील, निमेषरहित (= सदा जागरूक) अर्थात् वैराग्यवान्, अर्हण (= योग्यता वाले) अर्थात्

^७ 'य इत्तद् विदुस्ते अमृतत्वमनिशुः' ऋ. १.१६४.२३ (= अमृतत्वम् = मोक्षम्)। 'क्रमध्वमग्निना नाकम्।' अ. ४.१४.२ (नाकं = दुःखसम्बन्धरहितमुत्तमं लोकम्)॥

^A चौथा तुरीय शरीर वह कहाता है, जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्दस्वरूप में मग्न जीव होते हैं। इसी समाधिसे संस्कारजन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है" (सत्यार्थ० नवम समु०)

^B शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग् भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्थानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयंश्चित्तं भवत्यहं कुर्वाणोऽहंकारो भवति (शत०)

योगसम्पद् से सम्पन्न और देव (= कान्तिमय) अर्थात् तीव्र मुक्तिकामना वाले = मुमुक्षु जन ही बृहद् अमृतत्व को—बहुत लम्बी अवधिवाली मुक्ति को प्राप्त करते हैं^E। वेद की इन बातों का ही वेदान्त आदि में विस्तार किया गया है।

आत्मदर्शन करने वाले ही 'नृचक्षाः' हैं। नृ या नर आत्मा का नाम है। यह आत्मा इस स्थूल या सूक्ष्म शरीर को इधर से उधर पहुँचाता रहता है, यावन्मुक्ति विभिन्न विषयों या स्थानों में शरीरादि को दौड़ाता रहता है, अतः इस आत्मा को नर या नृ कहते हैं। उस नृ का चक्षण = दर्शन = साक्षात्कार करने वाले ही 'नृचक्षसः' हैं। पांच कोशों में छिपे हुए आत्मा को उन कोशों से पृथक् अनुभव करना ही आत्मसाक्षात्कार है। अन्नमय कोश, प्राणमयकोश^F, मनोमय कोश^G, विज्ञानमय कोश^H और आनन्दमय कोश^I इन कोशों का नित्य अम्भास द्वारा विवेचन करते हुए इनसे अपनी आत्मा को पृथक् अनुभव करना इनसे अपने को अलग जान लेना ही असली विवेक है। सरल रीति से कहें तो स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर^J और कारण शरीर^K से अपने आत्मा को अलग से अनुभव कर लेना ही आत्मदर्शन = नृचक्षस्त्व है, यही विवेक है। इस विवेक वाले लोग मोक्षाधिकारी हैं। अनिमिषन्तः = अनिमेषाः — जो प्रमादरहित हैं — शब्द-स्पर्श आदि विषयों के चंगुल में न फँसने के प्रति जो जागरूक हैं, इन विषयों के आकर्षण से सचेत हैं, वैराग्यवान् हैं। दृष्ट और आनुश्रविक — सर्वथा सांसारिक और आध्यात्मिक ललचाने वाली अनात्म उपलब्धियों के प्रति जिनकी तृष्णा नहीं है, वे मोक्ष के पात्र हैं। अर्हणाः — जिनमें अर्हत्व = योग्यता है। शम, दम, तितिक्षा (= द्धन्द्रसहन), उपरति (= दुष्टों के प्रति उपेक्षा), श्रद्धा और समाधान (= चित्त की एकाग्रता) इन छः योगसम्पदाओं से जो युक्त हैं, वे मुक्ति के योग्य हैं। देवासः — जिनमें मुक्ति की कान्ति^L = कामना = अनिवार्य चाह है = मुमुक्षा है, वे मुमुक्षु लोग ही मोक्ष पा सकते हैं।

E नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद् देवासो अमृतत्वमानशुः ॥ ऋ० १०.६.३.४

F प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान प्राणों का तन्त्र प्राणमयकोश।

G मन, अहङ्कार और पांच कर्मेन्द्रिय (वाणी, हस्त, पाद, पायु, उपस्थ) इनका समूह मनोमय कोश।

H बुद्धि, चित्त और पांच ज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण) इन सात का नाम विज्ञानमय कोश।

I 'प्रकृति' ही आनन्दमयकोश कहलाती है।

J पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच सूक्ष्मभूत तथा मन और बुद्धि ये सत्रह तत्त्व ही सूक्ष्म शरीर हैं।

K 'प्रकृति' ही कारण शरीर है।

L दिवु धातु का अर्थ कान्ति = कामना = इच्छा भी है। धातु० दिवादि० १ ॥

तत्त्वज्ञान (प्रकृति-जीव-ईश्वर)

इन नृचक्षस्त्व (= विवेक), अनिमेषत्व (= वैराग्य), अर्हणत्व (= योगसम्पन्नता) और देवत्व (= मुमुक्षुत्व) रूप साधनों में तभी मनुष्य सफल हो पाता है, जब वह वेद, योग, वेदान्त, उपनिषद् आदि मोक्षोपयोगी शास्त्रों का श्रवण-मनन-निदिध्यासन-साक्षात्कार की प्रक्रिया से स्वाध्याय करे और यम, नियम, ध्यान, समाधि आदि योगाभ्यास के साथ मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा को व्यवहार में लावे^R।

ऐसे अधिकारी आत्मा मोक्ष प्राप्त करके परम ज्योतिर्मय ब्रह्म=परमेश्वर में नित्य रमण करते हैं - आनन्दमग्न रहते हैं - वे 'ज्योतीरथाः' बन जाते हैं। वहाँ उनकी गति अपनी माया = बुद्धि = स्व गुणरूप बुद्धि के अनुसार रहती है अर्थात् अव्याहतगति होती है-वे 'अहिमायाः' होते हैं। बिना रोक टोक के स्वच्छन्द विचरते हैं, सर्वथा ज्ञानसम्पन्न होने से उनकी आत्मा में तब पाप का सूक्ष्म सा भी अंश नहीं उभरता है- वे 'अनागसः' होते हैं। वे उस बृहत् अर्थात् बहुत लम्बे काल की अमृतत्व = मुक्त्यवस्था में परमदिव्य प्रभु की आनन्दवर्षा में निहाल रहते हैं^M। यह बृहत् अमृतत्व = बहुत बड़ा मोक्षकाल परान्तकाल कहलाता है। छत्तीस हजार बार सृष्टि के वर्तमान और प्रलय का जो काल है, उतना ही परान्तकाल है। उतने समय तक मुक्तात्मा मात्र आत्मस्वरूप में रहता हुआ मुक्तिसुख का उपभोग करता है।

इस प्रकार यह बुद्धि के गुणों में छठे गुण 'अर्थविज्ञान' का थोड़ा सा विवेचन किया गया है।

७. तत्त्वज्ञान

बुद्धि का सप्तम गुण है 'तत्त्वज्ञान'। किसी विषय के, प्रवचन के, लेख के अथवा उपदेश आदि के तत्त्व को = सार को तुरत समझ जाना तत्त्वज्ञान है। श्रवण अथवा पठन के पश्चात् मनन आदि के द्वारा उसके तत्त्व का = सारांश का चयन कर लेना तत्त्वज्ञान है। जिसकी बुद्धि में यह गुण नहीं होता, वह बहुत पढ़कर या सुनकर भी उसके तत्त्वांश का निश्चय नहीं कर पाता और संशयारूढ़ ही रहता है।

जगत् के मूलतत्त्वों का ज्ञान होना भी तत्त्वज्ञान कहलाता है। जगत् में तीन मूल तत्त्व हैं, जो कि अविनाशी हैं, नित्य हैं। ये हैं- प्रकृति, जीव और परमेश्वर। प्रकृति जड़ (= अचेतन) और जीव तथा परमेश्वर चेतन सत्ताएँ हैं। प्रकृति सत् (=

R मुक्ति और उसके साधनों के विशेष ज्ञान के लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत 'सत्यार्थप्रकाश' का नवम समुल्लास अवश्य पठनीय है।

M ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्मण वसते स्वस्तये ॥ ऋ० १०.६३.४

नित्य सत्तावाली) तो है, पर उसमें चेतनता और आनन्द नहीं है। जीव सत् (= नित्य अस्तित्व वाले) और चित् (= चेतन) हैं, पर उनमें नित्य आनन्द नहीं हैं। परमेश्वर सत्, चित् और आनन्दमय है। वह नित्य सत्ता, नित्य चेतनता और नित्य आनन्द इन तीनों गुणों से युक्त है— सच्चिदानन्दस्वरूप है। प्रकृति की विकृति ही यह भौतिक संसार है।

प्रकृति से विकृति

जागतिक तत्त्वों को अन्य प्रकार से भी समझा जा सकता है। जगत् में दो मुख्य तत्त्व हैं— जड़ और चेतन। जड़ प्रकृति से क्रमशः तेईस तत्त्वों का विस्तार हुआ है, जो कि सूक्ष्म स्थूल भौतिक जगत् के आधार हैं। वे इस प्रकार से सूक्ष्म से स्थूल भाव को प्राप्त हुए हैं— प्रकृति। प्रकृति से महत्तत्त्व। महत्तत्त्व से अहङ्कार। अहङ्कार से पञ्च तन्मात्राएँ = पांच सूक्ष्मभूत (= गन्धतन्मात्रा), रसतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, शब्दतन्मात्रा) और (बाहर और अन्दर की) दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ अर्थात् घ्राण, रसना, नेत्र, त्वक् और श्रोत्र ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक्, हस्त, चरण, पायु (= मलेन्द्रिय), उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) ये पांच कर्मेन्द्रियाँ। ये बाहर की इन्द्रियाँ (= बहिष्करण) और मन यह अन्दर की इन्द्रिय (= अन्तःकरण)। पञ्चतन्मात्राओं से पांच स्थूल भूत। गन्धतन्मात्रा से पृथिवी, रसतन्मात्रा से जल, रूपतन्मात्रा से अग्नि, स्पर्शतन्मात्रा से वायु तथा शब्दतन्मात्रा से आकाश। इस प्रकार ये २४ तत्त्व हुए जो जड़ प्रकृति और उसकी विकृति रूप हैं^V।

ईश्वर, जीव

चेतन तत्त्व दो प्रकार का है। एक चेतन तत्त्व संख्या में केवल एक ही है, जिसे ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा आदि नामों से पुकारा जाता है; जो कि “सच्चिदानन्द—स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है तथा उपासना करने योग्य” है*। वह कभी शरीर धारण नहीं करता, अतः क्षत व्रण आदि से अछूता और नस—नाड़ी आदि बन्धन से रहित है^Δ।

V सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः (सांख्य० १.६१)

* स्वा० द० स० द्वारा प्रोक्त आर्यसमाज नियम २।

Δ स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्त्राविरम् ॥ यजु. ४०.५ ॥

अतएव वह रूप आदि से भी रहित है। उसे इन बाह्य (= चर्म) चक्षुओं से कोई नहीं देख सकता। आत्मा के शुद्ध स्वगुणरूप मन से उस का हृदयरूपी गुहा में ही दर्शन (= साक्षात्कार = अनुभव) होता है^७। अग्नि, इन्द्र, सोम, वरुण, विष्णु, सविता, ब्रह्मणस्पति आदि अनेक नामों से उसका वेद में विस्तृत वर्णन है^१। वह सदा मुक्त है, कभी प्रकृति आदि के बन्धन में नहीं आता और एकरस है^७। यह ईश्वर ही प्रकृति से संसार रूप विकृति होने का निमित्त कारण है। दूसरा चेतन तत्त्व जीवात्मा है। जीवात्मा संख्या में अनगिनत हैं। जीवात्मा एक परमाणु जैसे सूक्ष्म परिमाण वाला है। एकदेशी है। प्रकृति और उससे बने संसार के आकर्षण के कारण जीवात्माओं को पशु, पक्षी, मनुष्य आदि के शरीर मिलते हैं, जिनसे वे सांसारिक सुखों का और साथ ही दुःखों का भोग करते हैं। इस प्रकार प्रकृति के सङ्ग से वे बन्धन में पड़ते हैं और ईश्वर के सङ्ग से वे बन्धनों से मुक्त भी हो जाते हैं। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान, सुख और दुःख जीवात्माओं के लिङ्ग हैं। इन्हें जीवात्माओं के गुण भी कहा गया है^२।

वेद में जागतिक तीनों तत्त्वों (= ईश्वर, जीव, प्रकृति) को एक अद्भुत अलङ्कार के माध्यम से समझाया गया है। यह संसार एक वृक्ष है। जैसे वृक्ष काटे जाने के बाद वह पुनरपि फूट के हरा हो जाता है, वैसे ही यह संसार भी प्रलय के बाद पुनरपि सृष्टि रूप में नया बनता रहता है। इस संसार रूपी वृक्ष पर दो सुपर्ण विद्यमान हैं। वे सुपर्ण हैं परमात्मा और जीवात्मा। जैसे उत्तम पंखों के कारण पक्षी सुपर्ण कहलाता है। वैसे उत्तम पर्ण = पालनगुणों वाले होने के कारण तथा ज्ञान और कर्म रूपी पक्षों के कारण परमात्मा और जीवात्मा भी सुपर्ण हैं। इन दो में से जीवात्मा रूपी सुपर्ण तो संसार के शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धमय फलों को भोगते हैं, किन्तु परमात्मा रूपी सुपर्ण किसी प्रकारका भोग न भोगता हुआ उन जीवात्म-सुपर्णों का (और उनके भोगकर्तों का) निरन्तर, निरीक्षण करता रहता है^७। वही जीवात्माओं को उनके कर्मानुसार फल प्रदान करता है।

इन सब तत्त्वों का ज्ञान जिस बुद्धि के द्वारा प्राप्त होवे वही बुद्धि श्रेष्ठ है।

७ न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ श्वे० उ० ४.२० ॥

१ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निर्मातृह्यथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० १.१६४.४६

७ नित्यशुद्धबुद्धिमुक्तस्वभावः ।

२ इच्छाद्वेष-प्रयत्नसुखदुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् (न्याय. १.१.१०)

जो इच्छा, द्वेष, (प्रयत्न), सुख, दुःख और ज्ञान आदि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है, उसी को जीव मानता है। ॥ स्वमन्त० ४ ॥

७ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिवाकशीति ॥ ऋ० १.१६४.२०

केवल प्रकृति और उससे उत्पन्न भौतिक तत्त्वों का ही नहीं, अपितु आत्मतत्त्व और परमात्मतत्त्व का ज्ञान (= साक्षात्कार) जिस बुद्धि से हो, वही असली रूप में 'तत्त्वज्ञान' रूपी गुण से सम्पन्न बुद्धि है। वास्तव में बुद्धि के इस गुण के विकास के पश्चात् ही सर्व तत्त्वों के परिज्ञान होने के अनन्तर 'अर्थविज्ञान' के अन्तिम अवयव के चरम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करना सम्भव है।

चेतनतत्त्वों के ज्ञान के साथ ही प्रकृति और उसके परिणामरूप अन्य भौतिक तत्त्वों का परिज्ञान और साक्षात्कार भी आवश्यक है। प्राकृतिक तत्त्वों का ज्ञान सर्वथा परिहेय नहीं है। प्रत्युत चित्तवृत्ति निरोध रूप समाधिसाधनों के अन्तर्गत प्रकृति परमाणु आदि का साक्षात्कार उपादेय ही है^K। आधुनिक वैज्ञानिक-तत्त्व-चिन्तकों ने जगत् में 90३ मूल तत्त्व माने हैं। वे निम्नांकित हैं* -

आधुनिक वैज्ञानिक तत्त्व

क्रमांक	नाम	प्रतीक	परमाणुभार	क्रमांक	नाम	प्रतीक	परमाणुभार
1	हाइड्रोजन	H	1.008	20	कल्सियम	Ca	40.1
2	हीलियम	He	4.0	21	स्कैन्डियम	Sc	45.0
3	लीथियम	Li	6.94	22	टाइटैनीयम	Ti	47.9
4	बेरिलियम	Be	9.01	23	वैनेडियम	V	50.9
5	बोरॉन	B	10.8	24	क्रोमियम	Cr	52.0
6	कार्बन	C	12.0	25	मैंगनीज	Mn	54.9
7	नाइट्रोजन	N	14.0	26	आयरन	Fe	55.8
8	ऑक्सीजन	O	16.0	27	कोबाल्ट	Co	58.9
9	फ्लुओरीन	F	19.0	28	निकल	Ni	58.7
10	निऑन	Ne	20.2	29	कॉपर	Cu	63.5
11	सोडियम	Na	23.0	30	जिंक	Zn	65.5
12	मैग्नीशियम	Mg	24.3	31	गैलियम	Ga	69.7
13	ऐलुमिनियम	Al	27.0	32	जर्मेनियम	Ge	72.6
14	सिलिकॉन	Si	28.1	33	आर्सेनिक	As	74.9
15	फॉस्फोरस	P	31.0	34	सिलेनियम	Se	79.0
16	सल्फर	S	32.1	35	ब्रोमीन	Br	79.9
17	क्लोरीन	Cl	35.5	36	क्रिप्टॉन	Kr	83.8
18	आर्गन	Ar	39.9	37	रुबिडियम	Rb	85.5
19	पोटेशियम	K	39.1	38	स्ट्रॉशियम	Sr	87.6

K परमाणु-परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ योग० समा०

* यह तत्त्वतालिका सौ० यशोदा वर्मा (४९, मदरामपुरा, सि० ला० जयपुर) के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

तत्त्वज्ञान (आधुनिक वैज्ञानिक तत्त्व)

क्रमांक	नाम	प्रतीक	परमाणुभार	क्रमांक	नाम	प्रतीक	परमाणुभार
39	इट्रियम	Y	88.9	72	हैफनियम	Hf	178.5
40	जर्कोनियम	Zr	91.2	73	टेन्टैलम	Ta	180.9
41	नायोबियम	Nb	92.9	74	टंगस्टन	W	183.8
42	मॉलिब्डेनम	Mo	95.9	75	रीनियम	Re	186.2
43	टेक्नीशियम	Tc	98.9	76	ऑसमियम	Os	190.2
44	रूथीनियम	Ru	101.1	77	इरीडियम	Ir	192.2
45	रोडियम	Rh	102.9	78	प्लैटिनम	Pt	195.1
46	पैलेडियम	Pd	106.4	79	गोल्ड	Au	197.0
47	सिल्वर	Ag	107.9	80	मर्करी	Hg	200.0
48	कैडमियम	Cd	112.4	81	थैलियम	Tl	204.4
49	इंडियम	In	114.8	82	लैड	Pb	207.2
50	टिन	Sn	118.7	83	बिस्मथ	Bi	209.0
51	ऐंटीमनी	Sb	121.8	84	पोलोनीयम	Po	(210)
52	टेल्युरियम	Te	127.6	85	ऐस्टैटीन	At	(210)
53	आयोडीन	I	126.9	86	रेडॉन	Rn	(222)
54	जीनॉन	Xe	131.3	87	फ्रैन्सियम	Fr	(223)
55	सीज़ियम	Cs	132.9	88	रेडियम	Ra	226.0
56	बेरियम	Ba	137.3	89	ऐक्टीनियम	Ac	(227)
57	लैन्थेनम	La	138.9	90	थोरियम	Th	232.0
58	सीरियम	Ce	140.1	91	प्रोटैक्टिनियम	Pa	231.0
59	प्रेसिओडिमियम	Pr	140.9	92	यूरेनियम	U	238.0
60	निओडिमियम	Nd	144.2	93	नेप्च्यूनियम	Np	237.0
61	प्रॉमीथियम	Pm	145.0	94	प्लुटोनियम	Pu	(242)
62	समैरियम	Sm	150.4	95	अमेरीकियम	Am	(243)
63	यूरोपियम	Eu	152.0	96	क्यूरियम	Cm	(245)
64	गैडोलीनियम	Gd	157.3	97	बर्केलियम	Bk	(245)
65	टर्बियम	Tb	158.9	98	केलिफोर्नियम	Cf	(251)
66	डिसप्रोसियम	Dy	162.5	99	आइंसटीनियम	Es	(254)
67	होलमियम	Ho	164.9	100	फर्मियम	Fm	(254)
68	अर्बियम	Er	167.3	101	मैन्डेलीवियम	Md	(256)
69	थुलियम	Tm	168.9	102	नोबीलियम	No	(254)
70	इटर्बियम	Yb	173.0	103	लॉरेन्सियम	Lr	(257)
71	ल्यूटीशियम	Lu	175.0				

बुद्धिविकास के उपाय

इस प्रकार बुद्धि के मुख्य सात गुणों — शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह, अर्थविज्ञान और तत्त्वज्ञान का विवेचन किया गया है। इनमें से किसी किसी गुण का विवेचन अपेक्षा से अधिक विस्तार से हो गया है।

अब प्रश्न यह है, कि बुद्धि के इन गुणों का विकास कैसे किया जाय? बुद्धि के विकास के — बुद्धि की वृद्धि के क्या उपाय हैं? इस पर अनेक प्रकार से विचार हुआ है। मनीषी विद्वानों ने बुद्धिवृद्धि के अनेक उपाय बताये हैं। उनमें से कुछ मुख्य उपायों पर संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है। जब हम बुद्धिवृद्धि के अथवा बुद्धिविकास के विषय में चर्चा करते हैं, तो बुद्धि जिस तन्त्र से काम लेती है उस तन्त्र = मस्तिष्क-तन्त्र के विकास एवं वृद्धि की बात भी उसी के अन्तर्गत ही समझनी चाहिये।

बुद्धि-विकास के उपाय

१. शुद्ध-सात्त्विक-शाकाहारी भोजन

मनुष्य के स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर पर भोजन का अनिवार्य रूप से असर पड़ता है^A। शुद्ध भूमि में शुद्ध खाद और पानी से उत्पन्न अन्न, शाक, फल, मूल, कन्द आदि ही 'मेघ्य' हैं अर्थात् मेघा = बुद्धि के लिये हितकारक हैं — बुद्धि को बढ़ाने वाले हैं। गन्दी मलिन भूमि, मलमूत्र आदि से युक्त खाद और गन्दे पानी से उत्पन्न अन्न तथा शाक-फलादि बुद्धि में मन्दता उत्पन्न करने वाले हैं, अतएव उन्हें 'अमेघ्य' = बुद्धि के लिये अहितकारी कहा गया है। इसलिये ऐसे अन्नादि को अभक्ष्य भी कहा गया है^B। आजकल खेतों में विशेषकर शहरों तथा कस्बों के समीपस्थ खेतों में मलमूत्र मिश्रित खाद और पानी के प्रयोग से जो शाक-फल आदि उत्पन्न होता है, वह बुद्धि के लिये लाभप्रद नहीं है। ऐसे शाक आदि स्वादयुक्त भी नहीं होते। अतः शुद्ध भूमि में शुद्ध खाद-पानी से उत्पन्न आदि का ही सेवन करना चाहिये।

शुद्ध स्थान में, शुद्ध पात्रों में, शुद्ध हाथों से शुद्ध विधि पूर्वक बनाया हुआ शुद्ध भोजन बुद्धिवर्धक होता है।

शुद्ध उपायों से कमाये धन से प्राप्त भोजन ही शुद्ध भोजन है। अन्य प्राणियों को कष्ट देकर, अन्य मनुष्यों का शोषण करके जो धन कमाया जाय अथवा मुफ्तखोरी से जो धन संचित किया जाय वह धन अशुद्ध धन है — अधार्मिक धन है। उस धन

A आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ॥ छान्दो० ७.२६.२

B अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेघ्यप्रभवाणि च ॥ मनु० ५.५ ॥

से निर्मित किये गये भोजन के खाने से मनुष्य की बुद्धि अन्ततोगत्वा निर्मल और सत्त्व-गुणवती नहीं बनी रह सकती। मलिन और निन्दनीय उपायों से प्राप्त धन और उससे प्राप्त भोजन परम्परया बुद्धि को भी मलिन बना देता है। अतः बुद्धि के विकास के लिये शुद्ध उपायों से प्राप्त भोजन ही हितकारी है।

सात्त्विक भोजन

बुद्धिविकास के लिये भोजन का सात्त्विक होना भी आवश्यक है। सात्त्विक भोजन उसे कहते हैं— 'जो आयु, साहस, बुद्धि, बल, स्वास्थ्य, सुख और रुचि को बढ़ाने वाला हो; जो रस से परिपूर्ण हो अर्थात् मात्र शुष्क न हो; जो स्नेह (= घी आदि की चिकनाई) से युक्त हो; जो स्थिरता प्रदान करने वाला हो और जो हृदय को प्रिय लगने वाला हो^C। इस प्रकार का भोजन बुद्धि में अभिवृद्धि करता है। इसके विपरीत अतिचरपरा, अतिखट्टा, अति नमकभरा, अति उष्ण, अति तीखा, मात्र रूखा, जलन उत्पन्न करने वाला; सारहीन, नीरस, दुर्गन्धयुक्त, बासी, जूठा और अपवित्र भोजन जो कि रजोगुणी और तमोगुणी होता है, वह बुद्धिविकास में बाधक होता है। ऐसा भोजन रोगवर्धक, शोककारक और दुःखदायी होता है^D।

शाकाहारी भोजन

शाक, फल, मूल, कन्द, अन्न, मेवा, घृत, दूध, दही, मक्खन आदि भोजन जिसे संक्षेप में शाकाहारी भोजन अथवा निरामिष भोजन कहा जाता है, वही बुद्धि के लिये उपादेय है। परवल, बथुआ, अनार, सेब, आम, गाजर, शकरकंद, सूरण, गन्ना, चावल, जौ, उड़द, तिल, नारियल, बादाम, काजू, अखरोट, गुड़, मिश्री, शहद एवं गव्य पदार्थों का भोजन बुद्धि के लिये हितकारक है।

गव्य भोजन बुद्धिप्रद

जो प्राणी जैसे गुणों वाला होता है, उसका दूध भी उन गुणों से युक्त होता है। गौ अन्य दूध देने वाले पशुओं से अधिक बुद्धिशालिनी है। उसकी स्मृति भी अन्यो

C आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ (भग० गी० १७.७)

D कद्वल्ललवणात्युष्ण-तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः। आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेघं भोजनं तामसप्रियम् ॥

(भग० गी० १७.९, १०)

बुद्धिनिधिः

से अधिक होती है। गौ को छः किलोमीटर दूर जंगल में अकेले छोड़ दें, तो भी वह अपने स्वामी के घर स्वतः पहुँच जायेगी। किन्तु भैंस नहीं। सौ गौओं के झुण्ड में बछड़े (बछड़ी) को छोड़ दें, तो वह तुरत अपनी मां को ढूँढकर उसके पास पहुँच जायेगा। जबकि भैंस का पाडा (- पाडी) दस भैंसों में से भी अपनी मां को नहीं पहचान पायेगा। अतः बुद्धिप्रधान गौ का दूध आदि भी बुद्धि के लिये लाभदायक है। मस्तिष्क को पुष्टि प्रदान करने वाला 'केरोटीन' नामक तत्त्व केवल गौ के दुग्ध में ही उपलब्ध होता है, जिसके फलस्वरूप गोदुग्ध में पीलापन होता है। अतएव गोघृत भी पीताभ होता है। गोदुग्ध, गोनवनीत, गोघृत आदि सुपाच्य भी होते हैं। गोघृत के यथावत् सेवन से रक्त में कोलेस्ट्रल बढ़ने की सम्भावना नहीं रहती है। अतएव गोदुग्ध को सब प्रकार के दुग्धों में और गोघृत को सब प्रकार के घृतों में श्रेष्ठ माना गया है^E। इन्हीं सब कारणों से यूरोप और अमेरिका में गोदुग्ध और गोमक्खन का ही सेवन किया जाता है। वे लोग गोदुग्ध को सोने (= स्वर्ण) के समान कीमती (= गुणबहुल) और भैंस-दुग्ध को पीतल के समान सस्ता (= अल्पगुण) मानते हैं^F। राज्य आदि का सञ्चालन, जो बुद्धिसाधक कार्य है, उसके लिये भी गोदुग्ध आदि ही आवश्यक हैं। भैंसदुग्ध आदि जड़ताकारक होने से राज्यशासन आदि गुणों के प्रतिबन्धक हैं^G।

मांसादि-भोजन बुद्धिप्रद नहीं

कुछ लोगों की यह धारणा, 'कि मांस, मछली, अंडाआदि के सेवन से बुद्धि तीव्र होती है', सर्वथा भ्रमपूर्ण है। कई सुपठित लोग भी इस भ्रान्त धारणा के शिकार हो जाते हैं^H। मांसाहार वास्तव में बुद्धिवर्धक नहीं है। मांस खाने वाले भेड़िया, शेर आदि

E गवां सर्पिः सर्पिषां गोक्षीरं क्षीराणां श्रेष्ठतमं भवति ॥ चरक० सूत्रस्थान २५.३६ ॥

F सन् १९२९ में कच्छ (लुडवा) निवासी श्री बापू शिवगुण कान जी वेलाणी से कम्पाला (युगांडा) अफ्रीका में कार्य करते समय एक अंग्रेज कांट्रेक्टर मिस्टर बॉबी ने कहा था कि, भारत बुद्धिहीन लोगों का देश है, जहाँ स्वर्ण से भी अधिक कीमती गोदुग्ध की कीमत ओछी है और पीतल के समान सस्ते (= अल्पगुणी) भैंसदुग्ध की कीमत अधिक है। (द्र० 'संदेश', पृ० ५९)

G इन्हीं उपर्युक्त बापू शिवगुण कानजी से सन् १९२६ में बम्बई में एक अंग्रेज महिला ने गोदुग्ध की प्रशंसा करते हुए और भैंसदुग्ध-सेवन को हीन बताते हुए कहा था कि "यदि हम (= अंग्रेज लोग) भैंस का दूध पीते होते, तो हम हिन्दुस्तान पर शासन नहीं करते होते" ॥ (द्र० 'संदेश' पृ० ४४)

H प्रसिद्ध उपन्यासकार वैद्य गुरुदत्त अपने उपन्यास 'नास्तिक' में "मांस खाने से मस्तिष्क के द्वार खुल जाते हैं" (पृ० १६५) यह लिखकर मांसाहार को बुद्धिवर्धक मानने लगे थे ॥

की अपेक्षा शाकाहारी हाथी अधिक बुद्धिशाली होते हैं। मांसभक्षी गिद्ध चील आदि से फल-शाकाहारी तोता आदि अधिक बुद्धिमान् होते हैं।

मांस वास्तव में मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है ही नहीं। स्वभाव से मांसाहारी शेर आदि पशुओं के पास वैसे दांत नख आदि होते हैं, जिनके सहारे वे पशुओं को चीर फाड़कर मांस प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्य के शरीर में ऐसे साधन नहीं हैं। अतः उसे स्वभाव से — प्राकृतिक रूप से शाकान्नाहारी ही समझना चाहिये। अन्य भी कुछ अन्तर हैं, जिनसे मनुष्यों में और मांसाहारी जन्तुओं में स्पष्ट रूप से भिन्नता ज्ञात होती है। समस्त मांसाहारी पशुओं की अन्तड़ियाँ ५ से ७ फुट तक ही लम्बी होती हैं। जिनमें से, भक्षित-मांसावशेष शीघ्र मलरूप में बाहर निकल सके। जब कि शाकाहारी गौ आदि पशुओं और मनुष्यों की आंतें २० से २२ फुट तक लम्बी होती हैं। वे मांसाहार योग्य नहीं हैं। उनमें मांस के देर तक पड़े रहने के कारण उसमें सड़ांध उत्पन्न होती है, जो कि अनेक रोगों का कारण बनती है और बुद्धि के मस्तिष्क-तन्त्र को विकृत करती है। मांसाहारी प्राणी जीभ से पानी पीते हैं, परन्तु गौ, घोड़ा आदि शाकाहारी प्राणी ओठों से पानी पीते हैं। मनुष्य भी ओठों से ही पानी आदि पीता है, अतः वह शाकाहारी है। मांसाहारी प्राणियों के नवजात शिशुओं की आंखे जन्मने के कई दिन पश्चात् खुलती हैं, जब कि शाकाहारी गौ, भैंस, बकरी आदि के नवजात शिशु जन्मते ही शीघ्र आंखे खोल लेते हैं। मनुष्यों के शिशुओं की भी यही स्थिति है, अतः मनुष्य शाकाहारी है। मांसाहारी शेर, बाघ, भेड़िये आदि पशु सहवासकाल में परस्पर जुड़ जाते हैं, जब कि शाकाहारी प्राणी नहीं जुड़ते। मनुष्यों में भी यही बात है। अतः मानव शाकाहारी श्रेणी का है। मांसाहारी पशु जब दौड़ते हैं अथवा थक जाते हैं, तो उनकी जीभ मुंह से बाहर निकल आती है, जब कि शाकाहारी पशुओं की जीभ दौड़ने पर या हांफने पर मुंह के अन्दर की ओर खिंचती है। मनुष्यों की भी। इत्यादि अनेक लक्षणों से सूर्यप्रकाश के समान स्पष्ट है, कि मनुष्य मूलतः शाकाहारी है और अतएव मनुष्य के लिये मांसाहार प्राकृतिक भोजन नहीं है। अतः 'Seventhdays Adventists' का यह कहना सत्य है, कि "मनुष्य प्रारम्भ में शाकाहारी ही था, जंगली मांसाहारी पशुओं की देखादेखी उसने मांस खाना सीखा"।

बहुत लोगों का यह सोच है, कि बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, केरल आदि के लोग इसलिये अधिक बुद्धिमान् होते हैं, क्योंकि वे मछली का सेवन करते हैं। यह बात भी गलत है। यदि मछली खाने से बुद्धि बढ़ती, तो मछुआरे सबसे अधिक बुद्धिशाली होने चाहियें थे, क्योंकि उनका मुख्य भोजन मछली ही होता है। पर ऐसा नहीं है। बंगाल,

L Longevity and Health (P.)

केरल आदि आदि समुद्रतट के वासियों की अपेक्षाकृत तीक्ष्ण बुद्धि का वास्तविक कारण है, चावल और नारियल का सेवन। आयुर्वेद और द्रव्यगुणविज्ञान के अनुसार चावल और नारियल दोनों बुद्धिवर्धक माने गये हैं।

मादकद्रव्यों का सेवन भी बुद्धिनाशक है। आयुर्वेद में लेख है, कि मादक द्रव्यों को 'मादक' कहते ही इसलिये हैं, कि वे बुद्धि का लुम्पन (= हास) करते हैं^N। अतः शराब, गांजा, अफीम, तंबाकू, भांग आदि चीजें बुद्धि विकास में उपकारक नहीं हैं, अपितु हानिकारक हैं। गोरखनाथ की वाणी में भी इन्हें, बुद्धिविनाशक माना गया है^O।

२. औषध-सेवन

इस सृष्टि में परमेश्वर ने सब प्रकार की उन्नति के साधन रचे हैं। बुद्धि को उन्नत बनाने के लिये अनेक प्रकार की ओषधियाँ हैं। ऐसी ओषधियों को 'मेघ्य' कहा जाता है, क्योंकि ये मेघा = बुद्धि के लिये हितावह होती हैं। ऐसी ओषधियों में 'सोम' ओषधि सबसे प्रधान है। वेद में 'सोम' ओषधि का विशद वर्णन है। ऋग्वेद १०.११९.५ में सोम-पान से प्राप्त विशेषताओं में मति-बुद्धि की सम्पूर्ण प्राप्ति का उल्लेख है^P। तृतीय मण्डल में बताया है, कि सोमपान करने वाले की ओर बुद्धियाँ वैसे ही लालायित होती हैं, जैसे माताएँ अपने वत्स के प्रति^Q। एक स्थान पर कहा है, कि जैसे गौएँ गोपालक की तरफ आकृष्ट होती हैं, वैसे ही बुद्धियाँ सोम की ओर आकृष्ट होती हैं^R। सोम बुद्धियों को सब ओर से प्राप्त कराने वाला है^S। पूषा (= पुष्टिकर्ता) परमेश्वर के समान सोम बुद्धियों को गति प्रदान करने वाला है^T। निश्चित ही आध्यात्मिक पक्ष में यहाँ 'सोम' से परमेश्वर का ग्रहण होगा, किन्तु भौतिक पक्ष में इससे ओषधि के ग्रहण को नकारा नहीं जा सकता।

N बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते ॥ शाङ्ग. पूर्व खण्ड ४.२१ ॥

O आफू खाय भांग भसकावे, तामें बुद्धि कहाँ से आवे।

चढ़ता पित्त उत्तरता बाई ताते गोरख भांग न खाई ॥

P अहं तष्टेव वन्धुरं पर्याचामि हृदा मतिम्। कुवित् सोमस्यापामिति ॥

Q मृतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शर्वसस्पतिम्। इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ऋ० ३.४१.५

R गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मृतयो वावशानाः ॥ ऋ० ९.९७.३४

S परिं गेता मतीनां विश्वदेवो अदोभ्यः। सोमः पुनानश्चन्मोर्विशदरिः ॥ ऋ० ९.१०३.४

T विश्ववारी द्रविणोदा ईव त्मन् पूषेव धीजर्वनोऽसि सोम ॥ ऋ० ९.८८.३

आजकल इस अत्युत्तम औषधि 'सोम' का मिलना लगभग असम्भव हो गया है। अतः उसके स्थान पर तत्समान गुणवाली गिलोय का प्रयोग होने लगा है। गिलोय के संस्कृत में गुडूची, अमृता आदि नामों के साथ ही सोमवल्ली भी एक नाम है। यह प्रायः भारत के हर प्रान्त में उपलब्ध हो जाती है। गिलोय बुद्धिवृद्धि के लिये हितकारक है। गिलोय के समान कुछ अन्य औषधियाँ भी मेध्य (= बुद्धिवर्धक) हैं। ब्राह्मी, शङ्खपुष्पी और मुलहठी इसी श्रेणी में आती हैं। महर्षि पुनर्वसु आत्रेय का कथन है, कि ब्राह्मी अथवा मण्डूकपर्णी का स्वरस पीना चाहिये। मुलहठी के चूर्ण का सेवन गोदुग्ध के साथ करना चाहिये। गिलोय को कूटकर उसे जल में मथकर फिर छानकर निकाला हुआ रस पीना चाहिये। शङ्खपुष्पी की गाढ़ी चटनी सी बनाकर और सूखी हो तो उसका चूर्ण बनाकर सेवन करना चाहिये। ये चारों औषधियाँ बुद्धिविकास के लिये तो उत्तम हैं ही, साथ ही इनके सेवन से आयु बढ़ती है, रोगों का निवारण होता है, बल की वृद्धि होती है, जठराग्नि तेज होती है, शरीर का रंग निखर जाता है और कण्ठ का स्वर कोमल तथा स्पष्ट हो जाता है। इन चारों के निरन्तर सेवन करने से शरीर पर रसायन-सेवन जैसा प्रभाव होता है। इन चारों में से शङ्खपुष्पी में अन्य गुण भले ही कुछ कम हों, पर बुद्धिप्रसादन गुण तो विशेष है ही"U।

इनके अतिरिक्त कुछ सिद्ध औषध भी बुद्धिविकास में लाभप्रद हैं। जैसे ब्राह्मरसायन, च्यवनप्राश, आमलक रसायन, हरीतकी योग आदि। ये रसायन तभी

Δ गुडूच्यमृतवल्ली च ... सैवोक्ता सोमवल्ली च कुण्डली चक्रलक्षणा ॥ धन्व० नि० पृ० ८

* ... गुडूच्यायुष्रदा मेध्या तिवक्ता संग्राहिणी बला। धन्व० नि० पृ० ८

U मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।

रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्पाः कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्पाः ॥

आयुष्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि ।

मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शङ्खपुष्पी ॥ चरक० चि० १ (३). ३०, ३१ ॥

Σ रसायनमिदं ब्राह्ममायुष्कामः प्रयोजयेत् । दीर्घमायुर्व्यश्चायं कामांश्चेष्टान् समश्नुते ॥

रसायनमिदं प्राश्य बभूवुरमितायुषः । मेधास्मृतिबलोपेताश्चिररात्रं तपोधनाः ॥

(चरक० चि० १(१). ५६, ५३, ५५)

इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तं रसायनम् । अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुबुद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥

मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुः प्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम् ॥ (चरक० चि० १ (१). ६८, ७१, ७२)

आमलकरसायनम्—अनेन प्रयोगेणर्षयः पुनर्युवत्वमापुः, बभूवुश्चानेकवर्षशतजीविनो निर्विकाराः

शरीरबुद्धीन्द्रियबलसमुदिताः ... ।

हरीतकीयोगः— [एतद्रसायनं] प्रयुञ्जानो ... जराव्याधिपापाभिचारव्यपगतभयः शरीरेन्द्रिय-

बुद्धिबलमतुलमुपलभ्य ... । (चरक० चि० १(१). ७४, ७५)

बुद्धिविकास के उपाय

लाभप्रद होते हैं, जब साथ ही संयम भी रखा जाये^Δ। ये सिद्ध औषध 'रसतन्त्रसार' व सिद्धप्रयोगसंग्रह (प्रथम भाग)^V आदि किसी प्रामाणिक और व्यावहारिक ग्रन्थ के आधार पर किसी शास्त्रविद् परिश्रमी प्रामाणिक वैद्यराज के द्वारा बनवाये जायें तो अधिक अच्छा है।

३. गो-अश्व-सेवा

गौओं की सेवा से भी बुद्धिविकास होता है। गौओं के मध्य में रहना, उन पर हथ फेरना, खुरेरा करना, गोबर और मूत्र उठाकर उनका स्थान स्वच्छ रखना, उन्हें चराना आदि कर्म बुद्धि की वृद्धि करने वाले हैं। इसीलिये ऋग्वेद में तीन स्थानों पर लिखा है, कि 'गौओं के द्वारा निर्बुद्धिता को वैसे ही दूर किया जा सकता है, जैसे जौ के सेवन से भूख को'^W। आयुर्वेद में एक प्रलेख है, जिसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति एक वर्ष तक गौओं के मध्य में निवास करे, उनकी सेवा करे, मात्र उन्हीं के दुग्ध का ही सेवन करे जितेन्द्रिय होकर गायत्रीमन्त्रचिन्तन करे और तत्पश्चात् माघ या फाल्गुन मास की पौर्णमासी के दिन बढ़िया पके हुए आंवलों के वृक्ष (= आमलकी वृक्ष) पर चढ़कर पूरे पके हुए रसीले आंवलों का सेवन करे, तो वह दीर्घ आयुष्य वाला और विशेष बुद्धिशाली बन जायेगा^X।

अश्वों (= घोड़ों) की सेवा और साहचर्य को भी बुद्धिवृद्धि में सहायक माना गया है^Y। यह एक विशेष बात है। इसका सानुसन्धान विवेचन अपेक्षणीय है।

४. संयम

संयम अर्थात् मन और इन्द्रियों को वश में रखने से बुद्धि की वृद्धि होती है। जब मनुष्य विषयों से अपनी इन्द्रियों को खींचने में दूर हटाने में वैसे ही सफल हो जाता है, जैसे कछुआ अपने अङ्गों (= मुख और पैरों को) को सब ओर से अन्दर समेट लेता है, तो मनुष्य की बुद्धि प्रतिष्ठित अर्थात् निश्चयात्मिका हो जाती है^Z। इसलिये श्रौत्र,

Δ स्थिता महर्षयः पूर्व, नहि किंचिद्रसायनम्।

ग्राम्याणामन्यकार्याणां सिध्यत्यप्रयतात्मनाम् ॥ (चरकं चि० १(३), ७)

V कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा बोगला (जि० अजमेर) से प्रकाशित।

W गोभिष्टरेमार्मति दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ॥ ऋ० १०.४२-४४.१०

X संवत्सरं पयोवृत्तिर्गवां मध्ये वसेत् सदा...

स्वयं चास्योपतिष्ठन्ते श्रीर्वेदा वाक् च रूपिणी (चरकं चि० १ (३). ९-१४)

Y त्वं नो मेधे प्रथुमा गोभिरश्वैर्भिरागहि ॥ अ० ६.१०८.१

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ॥ ऋ० १०.७.२

Z यदा संहरते चायं कूर्माऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ गीता २.५८ ॥

त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण (= नासिका) इन पांच ज्ञानेन्द्रियों और पायु (= मलेन्द्रिय), उपस्थ (= मूत्रेन्द्रिय), हस्त, चरण तथा वाणी इन पांच कर्मेन्द्रियों और मन इन ग्यारह इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखे। 'यदि इनमें से एक भी इन्द्रिय को नियन्त्रण में न रखा, उसे खुला छोड़ दिया, तो उससे बुद्धि उसी प्रकार क्षीण होने लगेगी, जैसे मशक के एक छिद्र में से भी पानी निकलने लगता है A।

संयम की कसौटी ब्रह्मचर्य है— वीर्यरक्षा है। बुद्धि की वृद्धि के लिये वीर्यरक्षा अत्यावश्यक है। शुक्र (= वीर्य) बुद्धि के कार्यतन्त्र (= मस्तिष्क) को पुष्ट करने वाला और सक्षम बनाने वाला सर्वोत्तम आधार है। यह ब्रेन के लिये सर्वश्रेष्ठ प्रोटीन है। इसकी रक्षा करना ब्रह्मचर्य है। अतः ब्रह्मचर्य को मेधा बुद्धि का समुत्पादक माना गया है B। जो इस बात का ध्यान न रखकर अधिक वीर्यक्षय करते हैं, वे अल्पबुद्धि और मन्द— बुद्धि हो जाते हैं। सन् १९८१ में इन पंक्तियों के लेखक के घर (अलवर) एक पुराने अनुभवी वैद्य ठहरे हुए थे। कई रोगी परामर्श लेने आते थे। राजस्थान की RPS सेवा के एक अधिकारी भी कार्यवश अलवर आये हुए थे। उन्होंने बुद्धिवृद्धि का कोई नुस्खा वैद्यजी से बनवा देने को मुझे कहा। वैद्य जी से उनकी आधे मिनिट की बात के बाद ही उन्होंने संस्कृत में मुझे कहा — 'एष तावदतिशयशुक्रक्षयात् मन्दबुद्धितामुपेतोऽस्ति'। मैं जानता था, कि ये अधिकारी एकपत्नीव्रती नहीं है, सो अलग ले जाकर उन्हें सत्यता बता कर विदा कर दिया। हास को और हास के कारणों को बिना दूर किये वृद्धि का उपाय ढूँढना एक असफल प्रयास करना मात्र है।

निश्चय ही ब्रह्मचर्य, संयम का अनिवार्य अङ्ग है। प्रायः मनुष्य श्रोत्र, नेत्र, घ्राण आदि का संयम करने में तो सफल हो जाता है, पर उपस्थेन्द्रिय के संयम में वह विफल हो जाता है। ब्रह्मचर्य से अनेक प्रकार के लाभ हैं। ब्रह्मचर्य से आयु दीर्घ होती है C। ब्रह्मचर्य से मृत्युकाल को परे हटाया जा सकता है D।

A इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।

तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ मनु० २.९९ ॥

B ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।

प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो ब्रह्म मेधाम् ॥ अथर्व० ११.५.२४

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्ठिताम्।

प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे। अथर्व० ६.१०८.२

C ब्रह्मचर्यमायुष्याणां श्रेष्ठतममस्ति ॥ चरक० सूत्र० २५ ॥

D ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ॥ अथर्व० ११.५.१९ ॥ ब्रह्म वै मृत्यवे सर्वाः प्रजाः प्रायच्छत्।

तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न प्रायच्छत् ॥ शत० ११.३.३.१

ब्रह्मचर्यपालन से जठराग्नि तीव्र होती है^E। शरीर में ओज, बल, स्थिरता और कार्यक्षमता बढ़ती है^F।

इस संयम (ब्रह्मचर्य) की महत्ता के कारण ही पूर्व मनीषियों ने मनुष्य-जीवन के तीन विभागों (= ब्रह्मचर्य आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम) में शत-प्रतिशत ब्रह्मचर्य = संयम का प्रावधान किया है^G। गृहस्थ आश्रम में भी पुरुष के लिये पत्नीव्रत और स्त्री के लिये पतिव्रत धर्म का उपदेश देकर तथा व्यभिचार से जीवनपर्यन्त सदा बचने की चेतावनी देकर और यथाशक्य ऋतुकाल में ही सहवास की व्यवस्था देकर^H संयम के द्वारा प्राप्त तेज से शरीर को नीरोग, दीर्घायु, प्रसन्नवदन, सुदृढ़ एवं कार्यक्षम बनाने का सन्देश देते हुए ब्रह्मचर्य की महिमा को अक्षुण्ण रखा है^I।

किन्तु आजकल इस अत्युपयोगी ब्रह्मचर्यपालन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। अश्लील साहित्य, चित्र, टी.वी. विज्ञापन और गानों आदि से अनेक मनुष्य विषयी बनकर निर्वीर्य, निस्तेज और निर्बुद्धि बनते जा रहे हैं। वे शीघ्र थक जाते हैं, उनकी सन्तान भी अपुष्ट और सहनशक्तिरहित जन्मती है। दूषित कामवासना का हाल यह है, कि अब समलैङ्गिकों के सम्मेलन आयोजित किये जा रहे हैं। वेश्याएँ अपने धन्धे को 'श्रम' के रूप में राजनीतिक आश्रय देने की पुरजोर मांग करने लगी है। कुछ दुश्चिन्तक डॉक्टर आदि भी वीर्यरक्षा की खिल्ली उड़ाकर और हस्तमैथुन आदि व्यसनों की वकालत करके मनुष्यों को शुक्रक्षय के मार्ग पर ढकेल रहे हैं। परिणामतः टी. बी. (राजयक्ष्मा) और एड्स आदि भयंकर रोग मनुष्यसमाज में व्यापक रूप ले रहे हैं।

यह एड्स रूपी घातक रोग अनियत अनियन्त्रित कामवासना का ही परिणाम है। संयम (= ब्रह्मचर्य) की शिक्षा देने वाले भीष्म, शंकर, दयानन्द और विनोबा के देश (भारत) से यह रोग नहीं फैला है। यह फैला है संयम की हंसी उड़ाने वाले फ्रायड आदि के पाश्चात्य देशों से। उन देशों के कुसंसर्ग में रहने वाले भारतीयों से और भारत में

E अनुइवान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जैगीर्षति/अ० ११.५.१८। द्रष्टव्य द० दृ० नि० पृ० १४६

F हे मनुष्याः! यथा स्वपुत्राः पूर्णयुवावस्था ब्रह्मचर्ये संस्थाप्य विद्यायुक्ता बलिष्ठा अभिरूपा भोक्तारो धार्मिका दीर्घायुषो ...। द० वे० भा० प्र०। पृ० ५५

G अविलुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ मनु० ३.२ ॥
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ॥ मनु० ६.२६

H ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा ॥ मनु० ६.४५ ॥
अन्योन्यस्याऽव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः। एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ मनु० ९.१०१ ॥

I स्योनाद् योनेरधिबुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ अथर्व. १४.२.४३

आने वाले विदेशियों से ही यह महारोग भारत में भी अपने पंजे फैला रहा है। इस असाध्य रोग से शरीर ही नष्ट हो जाता है, तो फिर मस्तिष्क और बुद्धि के विकास की सम्भावना ही कहाँ बचती है।

इसलिये बुद्धि आदि के सुविकास हेतु समय रहते वीर्यरक्षा पर पूरा ध्यान देना चाहिये। हस्तमैथुन, अप्राकृतिक मैथुन, बालविवाह, परस्त्रीगमन, परपुरुषगमन, अतिस्त्रीप्रसंग, अतिविषयासक्ति और इस ओर प्रवृत्त करने वाले कामोत्तेजक दृश्यों, चित्रों, मित्रों, गानों तथा पुस्तकों आदि से परहेज करना चाहिये।

कामेन्द्रिय-विषय-सेवन (मैथुन) से जैसे पुरुष का शुक्र क्षीण होता है, वैसे ही स्त्री के भी ओज का क्षय होता है और फलतः उसके अतिरेक से उसकी भी बुद्धि कम हो जाती है, अतः अतिमैथुन से दोनों को बचना चाहिये।

सत्त्वगुणी भोजन, निरन्तर सत्कर्म में लगे रहना, कुसंग त्याग, व्यायाम आदि संयम के साधनों के साथ कटिबद्धता = दृढ़विचारशक्ति का होना भी आवश्यक है। कटिबद्धता का ही प्रतीक 'मेखला' है। अतः मेखला-धारण भी बुद्धिविकास का साधन माना गया है। वेद में भी मेखला को मेधा, मति को धारण कराने वाली बताया है^१।

५. प्राणायाम

बुद्धिविकास का पञ्चम उपाय है 'प्राणायाम'। अभी ऊपर मन आदि इन्द्रियों के निग्रह को बुद्धिविकास के लिये आवश्यक बताया गया था। मन और प्राण का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर में जहाँ मन दौड़ता है, वहाँ प्राण भी पहुँच जाता है और जिधर प्राण का नियन्त्रण होता है, उधर मन को भी नियन्त्रित होना पड़ता है^२। प्राणायाम से मन पर - चित्तवृत्ति पर नियन्त्रण सरलता से हो जाता है। इसलिये पतञ्जलि मुनि ने चित्तवृत्ति-निरोध के उपायों में प्राणायाम को भी प्रमुख उपाय माना है^३।

प्राणायाम से बुद्धि की सूक्ष्मता बढ़ती है। प्राणायाम से होने वाले लाभों का वर्णन करते हुए अपने समय के महान् योगीश्वर अशेषशेमुषी-सम्पन्न स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं— "(प्राणायाम से) प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होते हैं। बलपुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप हो जाती है, कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय

^१ श्रद्धार्या दुहिता तपसोऽधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां भूभूव।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ अ० ६. १३३.४

^२ मनो विलीयते यत्र प्राणस्तत्र विलीयते। प्राणो विलीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते ॥
^३ प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ योग० समाधि० ३४ ॥

बुद्धिविकास के उपाय

को भी शीघ्र ग्रहण कर लेती है^M। प्राणायाम से बुद्धि की शुद्धि होकर उसमें ज्ञानदीप्ति बढ़ती जाती है, ऐसा पतञ्जलिवचन है। प्राणायाम की इस महत्ता के कारण ही ऋषियों ने इसकी दैनिक दिनचर्या में अनिवार्यता स्वीकारी है, मनु कहते हैं — 'यदि मनुष्य विधिपूर्वक तीन प्राणायाम भी नित्य करे, तो उसे तप का लाभ प्राप्त होता है^O। इसलिये इसकी व्याख्या में आचार्य लिखते हैं — "परन्तु तीन से तो न्यून प्राणायाम कभी न करे"^P।

प्राणायाम मुख्य रूप से चार प्रकार का है। बाह्यविषय, आभ्यन्तर विषय, स्तम्भवृत्ति और बाह्याभ्यन्तर-विषयाक्षेपी (i) बाह्यविषय — सीधे बैठकर श्वास को पूरे रूप से बाहर फेंक दे और बाहर ही कुछ देर तक रोके रखे। उस समय मन में 'ओम्' का जप करते हुए ईश्वर का ध्यान करे*। जब घबराहट हो तो, धीरे-धीरे श्वास अन्दर लेकर पूरे फेफड़ों में भर ले। यह एक प्राणायाम हुआ, किन्तु उस समय अन्दर श्वास को न रोके। फेफड़ों में श्वास पूर्ण होते ही पुनः बाहर फेंककर उसकी पुनरावृत्ति शुरु कर दे। इस प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करे। इसे बाह्य कुम्भक भी कहते हैं। (ii) आभ्यन्तर विषय — थोड़ा विश्राम करके द्वितीय प्राणायाम करे। इसमें श्वास को धीरे-धीरे भीतर लेकर भीतर ही रोक दे और पूर्ववत् जपध्यान करता रहे। जब घबराहट हो तो श्वास बाहर निकाल दे। पर बाहर रोके नहीं। फिर भीतर लेकर भीतर ही रोके। ऐसे भी तीन प्राणायाम करे। इसे अन्तः कुम्भक भी कहते हैं। (iii) स्तम्भवृत्ति — थोड़े विश्राम के बाद जब श्वासगति सामान्य हो जाय तो अकस्मात् जहाँ का तहाँ श्वास रोक दे। सुविधा के लिये ऐसा कर सकते हैं, कि अंगुलियों पर मन में दस तक गिनती करें और दस पर अंगूठा पहुँचते ही श्वास को (चाहे वह आने की स्थिति में हो चाहे जाने की स्थिति में हो) वहीं रोक दे और जपध्यान में लगे। घबराहट होने पर श्वास छोड़ दे और श्वासगति को सामान्य होने दे। इसी प्रकार तीन प्राणायाम करे। (iv) बाह्याभ्यन्तर-विषयाक्षेपी इस प्राणायाम में प्रथम और द्वितीय प्राणायाम का मिश्रण है। पहले श्वास को पूरे बल से बाहर निकाल दे और बाहर ही रोक दे। जब घबराहट हो, तो भीतर से बाहर को और थोड़ा श्वास फेंके और बाहर ही रोके, फिर घबराहट हो, तो थोड़ा और

M सत्यार्थ. तृ. समुल्लास।

O प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत् कृताः । व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ मनु. ३.७० ॥

P सत्यार्थ. पञ्चम समुल्लास।

* जब-जब प्राण बाहर रोकना हो तो नाभि के नीचे के पेडू स्थान तथा मलमूत्र-विसर्जन तन्त्र को मन से ऊपर की ओर खींचे रखे। इससे अधिक देर तक श्वास बाहर रोका जा सकता है।

श्वास बाहर फेंके और रोके। अब तीसरी बार घबराहट हो, तो धीरे धीरे श्वास लेवे और फेफड़ों को पूरा भर ले और भीतर ही रोक दे। जब घबराहट ही तो बाहर से और थोड़ा श्वास भीतर लेवे और रोके। दूसरी बार घबराहट होने पर भी वैसा ही करे। यह एक प्राणायाम हुआ। तीसरी बार घबराहट होने पर इस प्राणायाम की पुनरावृत्ति शुरू कर दे अर्थात् श्वास बाहर निकाले और रोकने का उपक्रम करे।

शक्ति के अनुसार प्राणायाम करे। हठ और अधिकता न करे। धीरे-धीरे बढ़ावे। आवश्यक नहीं कि चारों प्राणायाम एक साथ किये जायें। प्रथम प्राणायाम का ही पहले पूरा अभ्यास करे। तीन से आरम्भ करके धीरे-धीरे इक्कीस तक बढ़ावे। फिर द्वितीय और तृतीय आदि। नाक में कफ के कारण श्वास लेने में असुविधा होती हो, तो भ्रामरी प्राणायाम से पहले आरम्भ करे। सीधे लेटकर मुख बन्द करके श्वास भर के नाक से भौरे जैसा गुंजार करे। सीधे बैठकर भी ऐसा ही करे। इससे कफशान्ति हो जायेगी।

प्राणायाम शौच, लघुशंका आदि से निवृत्त होकर करना चाहिये। भोजन या नाश्ता करने के कम से कम तीन घंटे बाद ही प्राणायाम करना उचित है। जहाँ प्राणायाम करे वहाँ धुँआ, धूल अथवा गन्दगी न हो। पास में गैस या कोयला अथवा वाहनों की प्रदूषित वायु नहीं आ रही हो, इसका भी ध्यान रखे।

आरम्भ में किसी कुशल प्राणायाम के अभ्यासी मनुष्य के निरीक्षण में प्राणायाम का अभ्यास करें, तो अच्छा है।

६. तप

तप भी मेधाविकास का साधन है। अथर्ववेद में कहा है, कि तप करने से मनुष्य दीर्घायुष्य वाले और उत्तम मेधा बुद्धि वाले बनते हैं^१। ईशोपासनार्थ प्रातर्जागरण, मनोनियन्त्रण, यज्ञानुष्ठान, विद्वज्जनों एवं गुरुजनों की सेवा, शरीर को बाहर और अन्दर से पवित्र रखना, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा को निभाना शारीरिक तप है। किसी को व्यर्थ चुभने वाली वाणी न बोलना, सत्यभाषण, प्रिय और हितकारक वचन बोलना और बोलकर वेदपाठ आदि करना वाणी का तप है। मन को प्रसन्न रखना (= शान्तिमयता), मौन (= मनश्चिन्तन), अपने को बुराई की ओर

यदग्रे तपसा तप उपतप्यामहे तपः।

प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ अ० ७.६३.१ ॥

अने तपस्तप्यामहे उप तप्यामहे तपः।

श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ अ० ७.६३.२ ॥

बुद्धिविकास के उपाय

जाने से रोकना और मनोभावों को शुद्ध रखना यह मानसिक तप है^Z। इस त्रिविध तप से निश्चय ही बुद्धि परिष्कृत होती है।

७. यज्ञ-होम

बुद्धि-विकास का सप्तम उपाय है यज्ञ = होम = हवन। वेद में उल्लेख है, कि हवन करने वाला पवित्र और विचक्षण बुद्धि को प्राप्त करता है[⊕]। मनीषी लोग यज्ञ के द्वारा बुद्धियों में अभिवृद्धि करते हैं^Δ। यज्ञ से कल्याणी मति प्राप्त होती है[⌘]। यज्ञ-होम में अग्नि, उत्तम समिधा (= यज्ञिय काष्ठ), घृत और हवि का प्रयोग होता है[⊕]। उत्तम समिधा से प्रज्वलित, घृताहुति से सुप्रदीप्त और श्रेष्ठ हवि की आहुति से संयुक्त यज्ञाग्नि वास्तव में मेधा-बुद्धि की निर्मात्री होती है[⌘]। होमसमय में मननपूर्वक - एकाग्रतापूर्वक अग्नि को प्रदीप्त करने वाला मनुष्य बुद्धि से समवेत (= पूरी तरह से संयुक्त) होता है *। यज्ञिय अग्नि मनुष्य को मेधावी बनाती है। अतएव वेद में अग्नि सम्पर्क से मेधावी बनने की प्रार्थना की गई है^A। यज्ञिय वृक्षों की जो समिधा यज्ञ-होम में काम में ली जाती हैं, वह भी होम का भाग बनकर बुद्धिप्रदात्री होती है^B। ऐसी समिधा अपनी ज्वालाओं से कल्याणकारिणी मति प्रदान करती हैं^C। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाला मधुर, स्वच्छ, ताजा गोघृत भी बुद्धिप्रसादक होता है^D। यज्ञहोम में जो मिष्ट, पुष्टिकारक, सुगन्धित और रोगनाशक हवि: (= मोहनभोग, मोदक, मेवे, ओषधिम

- Z देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्। ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्। स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ भग० गी० १७.१४-१६
- ⊕ एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वा दधानः शुचिपेशसं धियम् ॥ ऋ० १.१४४.१ ॥
- Δ यज्ञेन गातुमन्तुरा विविद्रे धियो हिन्वाना उशिर्जो मनीषिणः ॥ ऋ० २.२१.५ ॥
- ⌘ वित्तं च मे वेदां च मे ... मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ य० १८.११ ॥
- ⊕ समिधाग्निं दुवस्यत घृतेर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ य० ३.१ ॥
- ⌘ मेधाकारं विदर्यस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ॥ ऋ० १०.९१.८ ॥
- * अग्निमिन्ध्वानो मर्नसा धियं सचेत मर्त्यः। अग्निमीधो विवस्वभिः ॥ ऋ० ५.१०२.२२
- A 'यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविर्न कुरु ॥ य० ३.२.१४
- B 'अग्ने समिधमाहाव बृहते जातवेदसे। स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु ॥ अ० १९.४३.११
- C 'समित्समित्सुमनो बोध्यस्मे शुचा शुचा सुमतिं रसि वस्वः ॥ ऋ० ३.४.१ ॥
- D 'एतमिधं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः। तस्मिन् विदेम सुमतिम् ...। अ० १०.६/३३
- D इमां सु पूर्वा धियं मधोर्धृतस्य पिप्युषीम्। कर्वा उक्थेन वावृधुः ॥ ऋ० ८.६.४३

सामग्री आदि) होमी जाती है, वह भी बुद्धि को श्रेष्ठ बनाती है^E। सुमति की कामना से ही यज्ञ में उत्तम अन्न रूप हवि होमी जाती है^F।

जिन पदार्थों का भोजन करने से बुद्धि की वृद्धि होती है, उन पदार्थों का युक्तिपूर्वक होम करने से भी बुद्धिविकास होता है। हवन में होमी हुई वे वस्तुएँ बुद्धि के अधीनस्थ मस्तिष्कतन्त्र को पुष्टि प्रदान करती हैं और उन्हें सक्रिय बनाती हैं। लगभग ११ वर्ष पूर्व की बात है। इन पंक्तियों का लेखक भुज (कच्छ) में रायण ग्राम निवासी एक सज्जन से बात कर रहा था। उस सज्जन की पत्नी को मस्तिष्क-विकृति के कारण शीघ्र भूल जाने का रोग था। भोजन बना तो लिया, पर उसे परोसना भी है, इसे वह भूल जाती थी। सावरणी (= झाड़ू) हाथ में ले ली, किन्तु उससे कमरे का कचरा निकालना है, यह उसे स्मरण नहीं रहता था। इस पर मैं उस सज्जन को यज्ञ-होम में कुछ विशेष घटकों का प्रयोग करने का सुझाव दे रहा था, कि अकस्मात् वहाँ समीप ही बैठे हुए श्री डॉ० वालजी भाई बोले— “आप सत्य कह रहे हैं। मेरे बड़े पुत्र को मिरगी के दौरे पड़त थे। आपके बताये अनुसार मैंने हवनसामग्री में अधिक मात्रा में ब्राह्मी, शंखपुष्पी, गिलोय, मुलहठी और मालकांगनी मिलाई तथा उसमें पर्याप्त मात्रा में बूरा (पिसी हुई खांड) और गोघृत मिलाया। फिर उस पुत्र को साथ बिठाकर उस विशिष्ट सामग्री से दोनों समय हवन करने लगा। इससे कुछ ही दिनों में अद्भुत लाभ होने लगा”। मैं तो इस बात को भूल चुका था, किन्तु डॉक्टर जी की बात सुनकर मुझे पक्का विश्वास हो गया, कि ब्राह्मी आदि बुद्धिवर्धक ओषधियों में मिष्ट पदार्थ मिलाकर और उसे गोघृत से तर करके उसकी आहुति दी जाय, तो निश्चय ही मस्तिष्कतन्त्र को पोषण मिलेगा और परम्परातः बुद्धि विकसित होगी।

यज्ञहोम में इन विशिष्ट ओषधियों के प्रयोग के साथ ही मन्त्रों का भी मधुर स्वर में श्रद्धापूर्वक उच्चारण भी आवश्यक है। इसीलिये वेद में कहा है— माधुर्य और घृत से तृप्त होने वाली अग्रगामिनी बुद्धि को बुद्धिमान् लोग उक्थ से— शुद्ध मन्त्रोच्चारण से बढ़ाते हैं— विकसित करते हैं*। धी-मेधा-मति-विषयक मन्त्रों का उच्चारण हो अर्थात् बुद्धिसम्बन्धी मन्त्रों से आहुति दी जाय तो शीघ्र बुद्धिविकास में प्रगति होगी। श्रद्धालु सज्जनों के उपयोगार्थ हम पुस्तक के अन्त में ऐसे मन्त्रों का सङ्ग्रह दे रहे हैं।

^E मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चितये।

^F मत्वे श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥ अ० ६.४१.१

ले अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिविश्रवा दधिरे यज्ञियासः ॥ ऋ० १.७३.७

* ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकोमः ॥ ऋ० ३.१.१५

इमां सु पूव्या धियं मघोर्धृतस्य पिपुषीम्। कणा उक्थेन वावृधुः ॥ ऋ० ८.६.४३

बुद्धिनिधिः

८. उषःकाल-सेवन

बुद्धि की अभिवृद्धि के लिये उषावेला का सेवन अत्यावश्यक है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में प्रायः ४.३० बजे से प्रातः ६ बजे तक का समय उषःकाल कहलाता है। ४ बजे शय्या त्यागकर शौचादि से निवृत्त होकर शुद्धवायु में भ्रमण, प्राणायाम, सन्ध्योपासन, व्यायाम आदि करना बुद्धि के विकास में अतीव हितावह है। वेद कहता है— 'सोम्य प्रकाश बिखेरती हुई उषावेला बुद्धि को धारण कराने वाली होती है^Δ। उषः काल में शान्ति होती है। वायु अधिक सुखद तथा प्रदूषणरहित होती है। मनुष्य की पूर्व दिवस की थकावट रात्रिविश्राम से दूर हो चुकी होती है। अतः वह शान्त और मन्द सुगन्धित पवन से प्रसारित वातावरण का भरपूर लाभ उठा सकता है। यदि मनुष्य खानपान-आचारविहार में सन्तुलित रहे, हल्का व्यायाम तथा प्राणायाम प्रतिदिन करे और रात्रि में ठीक समय पर सो जाये, तो स्वाभाविक रूप से उसकी निद्रा प्रातः ४ से ५ के बीच खुल जायेगी। रात्रि को सोने का सही समय १० बजे का है। आनुपातिक रूप से मनुष्य के लिये ६ घंटे सोना पर्याप्त है। बिस्तर पर बहुत समय तक पड़े रहने से विश्राम नहीं मिलता, अपितु गाढ़ निद्रा से ही तन-मन को विश्राम मिलता है और गाढ़ निद्रा का समय तो अल्प ही होता है।

सूर्य की, उसके स्पष्ट रूप से दिखने से पूर्व की जो स्थिति है, उसे 'भग' कहते हैं^A। हिन्दी में जो 'भाग फटने का समय' रूप व्यवहार है, उसमें उसी भग का प्रयोग है। यह काल उषावेला के ही अन्तर्गत है। इसे सद्गुणों को धारण कराने वाला कहा गया है। क्या दरिद्र और क्या सम्पन्न राजा आदि सभी लोग सद्गुणों की प्राप्ति के लिये सम्पन्नता के लिये इसी वेला की शरण में आते हैं^B। इसी भगकाल को (= उषःकाल को) बुद्धि का रक्षक और दाता कहा गया है^C। इसीलिये सूर्य उगने से पूर्व ही उठने का भारी महत्त्व बताया गया है। वेद में अनेकत्र 'हम सूर्य को उगते हुए को देखें' ऐसी कामना की गई है^D। उगते हुए सूर्य को तभी देखा जा सकता है, जब कि मनुष्य सूर्य के उगने से

Δ देवं देवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्भक् सुनता ईरयेन्ती।

व्युच्छन्ती नः सूर्ये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ऋ० ७.७९.५

A भगो व्याख्यातः। तस्य कालः प्रागुत्सर्पणात्। अन्धो भग इत्याहुः। अनुत्सृप्तो न दृश्यते॥ निरु० १२.१४

B प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेयो विधत्ता।

आधिश्विद यं मन्यमानस् तुरश्विद्राजा चिद यं भगं भक्षित्याह॥ यं ३४.३५

C भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगो मां धियमुदेवा ददेन्नः॥ यं ३४.३६

D 'विश्वदानीं सुमनसः स्यात् पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्'॥ ऋ० ६.५२.५

'ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृक्या नः स्वस्ति'। ऋ० १०.५९.६

उषःकाल-सेवन

पूर्व जाग जाय। सूर्योदय से पूर्व जगने से मृत्युकाल दूर हो जाता है^६ अर्थात् आयु की वृद्धि होती है।

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास ने भी उषःकाल को बुद्धिप्रसादक कहा है^६। इस उषावेला में बुद्धि इतनी सात्त्विक और कार्यक्षम होती है, कि उस समय जो भी बुद्धिप्रधान कार्य किया जाय, उसमें सफलता मिलती है।

प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वैद्य गुरुदत्त जी ने बहुत सुन्दर और विपुल साहित्य का सर्जन किया है। पचासों उपन्यासों के अतिरिक्त उन्होंने इतिहास, राजनीति, भौतिकविज्ञान, दर्शन और धर्म एवं नीति आदि पर भी खोजपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। सन् १९७४ में इन पंक्तियों का लेखक उनसे मिलने पंजाबी बाग में उनके निवास स्थान पर जा पहुँचा। वार्त्तालाप के अन्तराल में उन्होंने बताया - "मैंने जो कुछ लिखा है, वह प्रातः ४ बजे से ७ बजे के बीच लिखा है"। क्या लिखना है, इसकी रूपरेखा वे रात्रि को सोते समय बना लेते थे और प्रातःकाल उषावेला में सत्त्वगुणप्रधाना बुद्धि से उसे विस्तृत मूर्त्तरूप प्रदान करते थे। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्थान स्थान पर पात्रों से कहलवाया है। "अब बहुत रात्रि हो गई है, रात्रि में लिया गया निर्णय सही नहीं होता, इसका सही निर्णय प्रातःकाल करेंगे" ^७। अंग्रेजों में भी यह कहावत प्रसिद्ध है कि - 'जल्दी सोना और जल्दी जगना मनुष्य को स्वस्थ सम्पन्न और बुद्धिमान बनाता है' ^८।

अतएव वेद का यह कहना यथार्थ है, कि सूर्योदय से पूर्व जगने से और स्वस्थ होकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करने से मनुष्य की कल्याणी मति दृश्य और अदृश्य पदार्थों के विवेचन में कृतकार्य होती है^९। इसके विपरीत सूर्योदय के समय सोते रहने वाले मनुष्य का तेज नष्ट हो जाता है; मानो उगता हुआ सूर्य सोये हुए मनुष्य के तेज को हर लेता है^{१०}। तेजोहीन मनुष्य की बुद्धि तो निष्क्रिय हो ही जायेगी।

सूर्यकिरणों का यथोचित सेवन भी बुद्धि को धारणावती बनाता है^{११}। इसीलिये अथर्ववेद के मेघासूक्त में सूर्य की किरणों से उत्प्राणित मेघा (धारणावती बुद्धि) को यज्ञ आदि का अनुष्ठान करने वाली कहा है^{१२}।

E भो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ ऋ० १०.५९.४

Early to bed and early to rise. Makes a man healthy wealthy and wise.

उद्दिह्यदिहि सूर्यं वर्चसा माभ्युदिहि।

याश्च पश्यामि याश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेदं विष्णो बहुधा वीर्याणि ॥ अ० १७.१.७

उद्यन्तसूर्यं इव सुप्तानां दिष्टां वर्च आ ददे ॥ अ० ७.१३.२

मेघां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेश्यामहे ॥ अ० ६.१०८.५

त्वं नो मेघे प्रथमा गोभिरश्वैभिरा गहि। त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥ अ० ६.१०८.१

बुद्धिनिधिः

बुद्धिविकास के उपाय

९ सत्सङ्ग

बुद्धि के विकास के लिये सत्सङ्ग भी एक आवश्यक साधन है। सदाचारी विद्वानों की सङ्गति से बुद्धि विकसित होती है। उनकी बुद्धि के समान ही सत्सङ्गी मनुष्य की बुद्धि भी हो जाती है। इसीलिये वेद में अश्वी देवताओं (= अध्यापक और उपदेशक आदि विद्वद्गुणों) से, उनके सम्पर्क में रहने की और उनकी जैसी कल्याणी बुद्धि की प्रार्थना की गई है। वैदुष्य-सम्पन्न शान्तचित्त प्रेरक जन अपनी सदुपदेश भरी वाणी से श्रोताओं की बुद्धि को अपने ज्ञान से व्याप्त कर देते हैं^F। नीतिविद् भर्तृहरि ने सत्सङ्ग के छः लाभों में से सर्वप्रथम और मुख्य लाभ बुद्धि की जड़ता को हरना = बुद्धि में चेतना उत्पन्न करना बताया है^G। सत्सङ्ग से मूर्ख मनुष्य भी बुद्धिमान बनकर निपुणता प्राप्त कर लेता है, जैसे कांच भी स्वर्ण-सम्पर्क से (= स्वर्णाभूषण में जड़ा जाने पर) पन्ने की आभा को प्राप्त कर लेता है^H। सत्सङ्ग में जाकर विद्वानों के उपदेश-प्रवचन सुनने से अवश्य बुद्धि की वृद्धि होती है^J।

‘जैसा संग वैसा रंग’ वाली कहावत यथार्थ है। सङ्ग से ही मनुष्य कुबुद्धि अथवा सुबुद्धि बनता है। एक पथिक घने जङ्गल में मार्ग भटक गया। मार्ग ढूँढ़ने के प्रयास में वह एक ऐसी बस्ती में जा पहुँचा, जो दिन में सुनसान सी लग रही थी, किन्तु उस बस्ती की बाहरी झोपड़ी के पास एक वृक्ष की शाखा में लटकते हुए पिंजरे में बन्द एक तोता उस सज्जन को देखकर ‘लूटो, मारो, पकड़ो, छोडो, झपटो’ की रट ऊँची आवाज में लगाने लगा। इसे सुनकर वह सज्जन वहाँ से चुपचाप खिसक लिया। अन्य दिशा में मार्ग ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह हरियाली से घिरी कुछ पर्ण कुटियाओं के समीप जा निकला। वहाँ एक कुटिया के बरामदे में लटके एक पिंजरे में भी एक तोता था। तोता उस सज्जन को देखते ही मृदु ध्वनि में कहने लगा ‘स्वागतम्, स्वागतम्, आइये, बैठिये, शीतल जल पीजिये, विश्राम कीजिये, यह आपका ही घर है’। इन मधुर वचनों को सुनकर मानो उस पथिक की थकान ही मिट गई। वह पहले तोते और इस तोते के वचनों के भारी अन्तर के विषय में विचार करने लगा, तो कवि के शब्दों में इस तोते का उत्तर था —

- ♦ सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ॥ ऋ० १.११७.२३
- F एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः। विपा व्यानशुर्धियः ॥ ऋ० ९.२२.३
- G जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ नीति० २३
- H काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम्।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खा याति प्रवीणताम् ॥ हि० प्र० ४१
- J श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते। प्रज्ञया योगः। योगादात्मवत्ता ॥ कौ० अ० विन० ५ ॥

“अहं मुनीनां वचनं शृणोमि गवाशनानां स वचः शृणोति ।

न तस्य दोषो न च मे गुणोऽस्ति संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति” ॥

— महोदय! मैं मुनियों के वचन सुनता हूँ और वह [तोता] लुटेरे मांसाहारियों के वचन सुनता है। इसमें न तो उसका कोई दोष है और न मेरा कोई गुण। वास्तव में सङ्ग से ही दोष अथवा गुण किसी में आते हैं। दोषों और गुणों का आधार सङ्ग है।

एवमेव मनुष्य भी कुसङ्ग से दुष्ट बुद्धि वाले और सत्सङ्ग से सदबुद्धि वाले बन जाते हैं। नीचों की संज्ञाति से बुद्धि में हीनता आती है, बराबरी वालों की सङ्गति से बुद्धि साधारण ही बनी रहती है, किन्तु विशिष्ट लोगों के सङ्ग से बुद्धि विशेषता वाली बन जाती है^K। विद्वज्जनों की सङ्गति—सेवा से मनुष्य की बुद्धि कुशाग्र हो जाती है, फलतः वह आयु—कीर्ति—बल के लाभ के साथ ही विद्यावान् भी बन जाता है^L।

१० स्वाध्याय

विद्वज्जनों का मनीषियों का सङ्ग सदा सुलभ नहीं हो पाता है। अतः उसके अभाव में स्वाध्याय उसकी कमी की पूर्ति करता है। किसी ग्रन्थ का स्वाध्याय करना, एक प्रकार से उस ग्रन्थ के लेखक से सत्सङ्ग करना ही है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने स्वाध्याय के मुख्य दस लाभ बताये हैं। उनमें ‘प्रज्ञावृद्धि’ भी है^M। स्वाध्याय से क्योंकि मनुष्य सर्वप्रथम युक्तमना (= एकाग्रमन वाला) बनता है, अतः उसकी बुद्धि की क्षमता बढ़ती जातह है। जो एकाग्रचित्त नहीं उसको बुद्धिलाभ नहीं होता^N। मनुष्य जैसे-जैसे शास्त्रों का स्वाध्याय करके उन्हें आत्मसात् करता जाता है, वैसे-वैसे उसे और अधिक विज्ञान की-विशिष्ट ज्ञान की ललक लगती जाती है^O।

मनुष्य जीविकोपार्जन—हेतु कोई भी कार्य करता हो, किन्तु वह नियम से स्वाध्याय करे, तो अवश्य उसकी बुद्धि का सुविकास होता है। फलतः एक दिन वह मनीषी विद्वान् बन जाता है। महाराष्ट्र के निवासी स्वर्गीय श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर इसके प्रत्यक्ष उदाहरण थे। वे पहले व्यवसाय की दृष्टि से चित्रकार और सफल फोटोग्राफर थे, परन्तु

^K हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात् । समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥

^L अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ मनु २.१२१

^M अथातः स्वाध्यायप्रशंसा । प्रिये स्वाध्यायप्रवचने भवतो युक्तमना भवत्यपराधीनोऽहरहरथान्त्साधयते सुखं स्वपिति परमचिकित्सक आत्मनो भवतीन्द्रियसंयमश्चैकारामता च प्रज्ञावृद्धिर्यशो लोकपक्तिः ॥ शत० ११.५.७.१

^N नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य ॥ भग० गी० २.६६

^O यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति । तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ मनु ४.२०

निरन्तर स्वाध्याय के कारण उन्होंने ऐसी प्रज्ञा को प्राप्त किया, कि वे वेद के एक चिन्तनशील विद्वान् के रूप में विख्यात हो गये। महात्मा मुंशीरामजी (= स्वामी श्रद्धानन्द जी) ने उन्हें गुरुकुल कांगड़ी में 'वेदोपाध्याय' के पद पर प्रतिष्ठापित किया। कालान्तर में उन्होंने पहले औंध (जिला सातारा) और पश्चात् पारडी (बलसाड़) में 'स्वाध्यायमण्डल' नामक संस्थान को स्थापित किया और आजीवन वे वेदानुसन्धान और वैदिकसाहित्यप्रकाशन में लगे रहे। वेदसंहिताओं के प्रथमतः सुन्दर एवं शुद्ध संस्करण निकालने का श्रेय उन्हीं को है। वैदिक जीवनचर्या के बल पर उन्होंने एक सौ एक वर्ष का आयु प्राप्त किया और 'जीवम शरदः शतं' के संकल्प को पूर्ण करके बता दिया।

स्वाध्याय बुद्धिवृद्धि का एक ऐसा साधन है, जिसमें आयु कोई बाधा नहीं डालती। कायस्थकुलोत्पन्न श्री खेमकरणदास जी ने रेल्वे की सेवा से निवृत्त होने के बाद नियमित सतत स्वाध्याय के बल पर तीव्रबुद्धिशाली होकर बड़ौदा (गुजरात) राज्य की श्रावण-मास वेद परीक्षाओं में सफलता प्राप्त की और वे श्री खेमकरण दास त्रिवेदी बन गये। उन्होंने अथर्ववेद और गोपथ ब्राह्मण पर स्वोपज्ञ भाष्य रचे। इस शताब्दी के द्वितीय दशक के आरम्भ में मनसाराम नामक एक अल्पपठित युवक अध्ययनलालसा से गुरुकुल कांगड़ी में आया। नियमानुसार छोटी आयु के बालकों को ही अध्ययनार्थ प्रवेश मिलता था। अतः झाड़ू-बुहारी के कार्य के लिये उन्हें वहां आवास आदि की अनुमति मिल गई। कार्यसमय के अतिरिक्त समय में परिश्रमपूर्वक स्वाध्याय को उन्होंने अपना व्रत बना लिया। कुछ वर्षों में ही उन्होंने बुद्धिवैशद्य से अनेक शास्त्रों में प्रवीणता प्राप्त करली। पुराणों के तो वे मर्मज्ञ विद्वान् बन गये। बुद्धि की विलक्षणता के कारण आर्यबन्धुओं में उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। एक उत्सव के प्रसंग से जब वे पंजाब (वर्तमान हरयाणा) के एक गांव में जाने हेतु एक छोटे स्टेशन पर उतरे। तो स्वागतार्थ आये लोगों ने उन्हें तांगे पर बिठाया और बैलों के स्थान पर सभासदस्य स्वयं तांगा खींचकर ले गये।

११ प्रसन्नता

बुद्धिवृद्धि का एक सरलतम और अनूठा साधन है - प्रसन्नता। प्रसन्न रहने वाला मनुष्य सब दुःखों को सरलता से सह लेता है, सब दुःखों से उबर जाता है और उसकी बुद्धि निश्चयात्मिका बन जाती है^A। उसकी बुद्धि में उर्वरापन उत्पन्न हो जाता है। प्रसन्नचित्त मनुष्य की बुद्धि सही निर्णय कर पाती है। यदि मनुष्य उद्विग्न, खिन्न

Δ श्री स्नातक युधिष्ठिर (स्व० श्री स्वामी व्रतानन्द जी) की प्रत्यक्ष देखी घटना।

A प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते। (भग० गी० २.६५)

और अप्रसन्न रहता है, तो उसकी बुद्धि डगमगा जाती है और सूक्ष्म चिन्तन से रहित हो कर हित-अहित और अनुकूल-प्रतिकूल में भेद करने में असमर्थ हो जाती है। परिणामतः मनुष्य असफलता का भागी बनता है।

लगभग ७० वर्ष पूर्व की बात है। जोधपुर (राज.) के एक स्वाभिमानी व्यक्ति ने एक उद्दण्ड, दुष्ट एवं हिंसक व्यक्ति को मार डाला। लोकहित की दृष्टि से उसका यह कार्य निंद्य नहीं था, पर कानून तो कानून है। उसकी दृष्टि में यह आपराधिक कृत्य था। उसे पकड़ लिया गया। मुकदमा चला। एक प्रसिद्ध सरदार बचाव पक्ष के वकील थे। कानून की नजर में अपराधी, पर समाजहित की दृष्टि से निरपराधी उस व्यक्ति को बचाना था। जिस दिन उस दुष्ट को मारा गया था, उस दिन उस मारने वाले साहसी व्यक्ति को जोधपुर से बाहर दिखाना था। युक्ति से जेल में बन्द व्यक्ति से उस तारीख का एक कार्ड लिखवाया गया। उस पर भेजने का स्थान उदयपुर लिखाया गया। उदयपुर पोस्टऑफिस की मोहर भी उसी तारीख की लगवाने का प्रबन्ध किया गया। तीसरे दिन की जोधपुर पहुँच की तारीख की मोहर की भी व्यवस्था की गई। उस कार्ड को कुछ पुराना भी बनाया गया।

अब उसे अदालत में पेश करना था। इस रहस्य तक सरकारी वकील की बुद्धि न जा सके, इसका भी प्रबन्ध करना था। पेशी के दिन अदालत में बचाव पक्ष के उक्त वकील (जो कि सरकारी वकील से आयु में पर्याप्त बड़े थे) ने सरकारी वकील के कान में उसे एक भद्दी सी गाली दे दी। सरकारी वकील खफा होकर बोला - 'सरदार साहब! आप बुजुर्ग होकर इस प्रकार मुझे गाली दे रहे हैं?' थोड़ी देर बाद फिर सरदारजी ने एक भारी सी गाली सरकारी वकील के कान में सरका दी। इस बार सरकारी वकील बहुत भन्नाया और लगा सरदार जी को बुरा भला कहने। तीसरी बार भी जब सरदार जी ने अपने वचन फिर दुहरा दिये। तो उस वकील ने जज से शिकायत कर दी। जज द्वारा सरदार जी को चेतावनी दी गई, तो सरदार जी ने कहा - "माई लार्ड! यदि मेरा कोई कसूर है, तो मुझ पर अलग से मुकदमा चलाया जाय, वर्तमान मुकदमे से मेरे इस व्यवहार का क्या सम्बन्ध है? मुकदमे का काम आगे चला। बहस हुई। बीच में शान्तचित्त सरदार जी ने वह कार्ड पेश करके कहा, कि मुलजिम उस दिन जोधपुर में था ही नहीं, जिसका पक्का सबूत यह कार्ड है। अदालत की इजाजत हो. तो उदयपुर से भी गवाह बुलाये जा सकते हैं। सरकारी वकील (जो उस समय खिन्न-उद्विग्न था) ने भी उस कार्ड को देखा, पर अप्रसन्नचित्त उस वकील की बुद्धि उस कार्ड के असली रहस्य को न भांप सकी। वह चुप हो गया। और अन्ततः

इस बुद्धि-प्रसादक 'प्रसन्नता' गुण की प्राप्ति के लिये, मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को वश में करके और रागद्वेष रहित होकर संसार के भोगों को भोगना चाहिये। ऐसी स्थिति में वह अवश्य ही सदा प्रसन्न रहेगा*। उच्छृङ्खल और रागद्वेष में फंसी हुई इन्द्रियों से भोगों में लिप्त मनुष्य वास्तव में दुःख के साधन जुटाता है। वह सदा प्रसन्न नहीं रह सकता।

बुद्धि के विकास का - बुद्धि में गुणों की अभिवृद्धि का - बुद्धि में उत्तम प्रेरणा प्राप्त करने का अन्तिम एवं विशिष्ट साधन है ईश्वर की भक्ति। जिन्हें बुद्धि से प्रेम हो - जो धारणावती बुद्धि के लिये लालयित हों- जिनकी बुद्धिविकास में अभिरुचि हो, ऐसे लोगों को पुकार पुकार कर वेद कहता है- 'ऐ मेधाप्रेमी लोगो! तुम अर्चना करो - उत्तम रीति से पुष्कल मात्रा में अर्चना करो - ईश्वर की पूजा (= भक्ति) करो। अपने प्यारे पुत्रों को भी पूजा - अर्चना में लगाओ। जैसे मनुष्य सुरक्षा हेतु दृढ़ दुर्ग की शरण में जाता है, वैसे ही संरक्षार्थ तुम भक्ति के द्वारा ईश्वर की शरण में पहुँचो'। 'हे मेधाबुद्धि के प्रेमियो! तुम सच्चे हर्ष के आधार उस ईश्वर की एकाग्र मन से सङ्गति करो - उसका सेवन करो - उसकी भक्ति करो'।

भक्ति के तीन अङ्ग हैं। स्तुति, प्रार्थना और उपासना (= ध्यान, समाधि)। परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन करना, उनका चिन्तन करना स्तुति कहलाती है। ईश्वर की स्तुति करने से बुद्धि तीक्ष्ण होती है^७। ईश-स्तुति से बुद्धि की अवश्य वृद्धि होती है। इसलिये भक्त भगवान् से, अपने द्वारा की गई उत्तम स्तुति को स्वीकार करने और बुद्धि को बढ़ाने की प्रार्थना करता है*। स्तुति से परिपूर्ण वैदिक

* इमां मे इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मार्गव । उत प्रवर्धया मतिम् ॥ ऋ० ८.६.३२

सूक्तों से और उत्तम कीर्तन-वचनों से कल्याणी मति की प्राप्ति होती है^A। प्रगतिशील मानव मेधाबुद्धि के लिये स्तुतिसमूहों के द्वारा उस प्रभु को साक्षात् करने का प्रयत्न करते हैं^B। ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन वेद में; ईश्वर के अग्नि, इन्द्र, प्रजापति आदि अनेक नामों से किया गया है। परमार्थ में अग्नि, इन्द्र, वायु आदि नाम प्रथमतः एक ईश्वर के ही वाचक हैं^C। ऋग्वेद २.१२; १०.९०; १०.१२१, आदि सूक्तों का अर्थ-चिन्तन-सहित गान-मनन करने से स्वतः बुद्धि में निखार उत्पन्न होता है।

प्रार्थना

पुरुषार्थ करने के पश्चात् सफलता के लिये परमेश्वर से निवेदन करना — याचना करना प्रार्थना कहलाती है। प्रार्थना से निरभिमानीता, उत्साह और सहाय की प्राप्ति होती है^D। निरभिमानी अर्थात् विनम्र मनुष्य की बुद्धि निर्मल होती है। अभिमान से मनुष्य की बुद्धि पर भ्रान्ति रूप परदा पड़ जाता है, जिसके कि कारण वह सुनिश्चय रूपी गुण को खो बैठती है। उत्साहसम्पन्न व्यक्ति की मति स्फूर्तिमती होती है। निराश व्यक्ति की मति कुंठित हो जाती है। अतः नम्रता और उत्साह की जननी प्रार्थना को दैनिक जीवन में अवश्य स्थान देना चाहिये। मेधा की प्राप्ति के लिये, सुमति तथा प्रमति के लाभ के लिये, धी की उपलब्धि के लिये और अमति एवं दुर्मति के निराकरण के लिये वैदिक ईश्वरभक्त सदा विविध प्रकार से प्रार्थना करता है—

ओ३म्! यां मेधां देवगुणाः पितरश्चोपासते।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ यं ३२.१४

— हे ज्ञानमय प्रभो! उच्चकोटि के महाविद्वान् जन और पालक विद्वान् लोग जिस मेधा बुद्धि के लिये ईशोपासना करते हैं, उस मेधा से मुझे आज ही मेधावी बना दो।

ओं यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे०॥ अ० १९.४३.१

— ब्रह्मज्ञानी लोग दीक्षा और तपस्या के सहकार से जिस मुक्तावस्था को प्राप्त होते हैं, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर उस अवस्था में मुझे पहुँचावे और तदर्थ मेरी बुद्धि को पुष्ट करे।

A प्रति व एना नमसाहमेभि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणीम् ॥ ऋ० १.१७१.१

B इन्द्रं स्तोमैर्भिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ ऋ० ८.३.१६

C इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद् विप्रो बहुधा वेदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० १.१६४.४६

D सत्यार्थप्रकाश (सप्तम समुल्लास)

बुद्धिविकास के उपाय

ओम् मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।

मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ य० ३२.१५

— वरणीयतम, ज्ञानेश्वर, प्रजापालक, ऐश्वर्यशाली, प्रगतिदाता और विश्वधत्ता

प्रभु मुझे मेधाबुद्धि प्रदान करे।

ओम् इन्द्रं मूळं मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम्।

यत् किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥ ऋ० ६.४७.१०

— हे सर्वविघ्नविदारक प्रभो! मुझे सुखी करदो, मुझे दीर्घजीवी बनाओ, मेरी बुद्धि को इस प्रकार प्रेरित करो कि वह पैसे शस्त्र की तेज धार के समान तीक्ष्ण बन जावे। मात्र आपकी चाह वाला होकर मैं जो कुछ यह निवेदन कर रहा हूँ, उसे आप सुनकर पूर्ण करो और मुझे देवों वाला बना दो।

ओं तां जुषस्व गिरं मम् वाजयन्तीमवा धियम्। वधूयुरिव योषणाम् ॥ ऋ० ३.६२.८

— हे सर्वपोषक प्रभो! मेरी विस्तृत पुकार को सुनो और जैसे पत्नी की चाह वाला पुरुष ज्ञानवती और सामर्थ्यवती स्वस्त्री की रक्षा करता है, वैसे ही आप मेरी ज्ञानमयी और बलवती बुद्धि की रक्षा कीजिये और उसे अधिक दीप्तिमती बनाइये।

ओम् इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुणं सं शिशाधि।

ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ऋ० ८.४२.३

— हे वरणीय परमेश्वर! मुझ शिक्षार्थी की इस बुद्धि को कर्मशीला और निपुण बनाकर भलीप्रकार प्रेरित कीजिये। जिसके कि द्वारा हम सम्पूर्ण दुर्गुणों और दुःखों से पार हो सकें और उत्तमरीति से तराने वाली नौका के समान इसका आश्रय ले सकें।

ओं ... देवीं धियं मनामहे सुमृड्डीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसम्

सुतीर्था नो असद् वशे ॥ य० ४.११

— हम सब अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिये दिव्य गुणों से युक्त, अतिशय सुख देने वाली, तेजस्विनी, और यज्ञ-सम्पादिका बुद्धि की याचना करते हैं। दुःखों से अच्छी प्रकार तराने वाली वह बुद्धि हमारे वश में रहे।

ओम् उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः। कर्ता नः स्वस्तिमर्तः ॥ ऋ० १.१०.५

— हे सर्वपोषक सर्वव्यापक ईश्वर! हमारी बुद्धियों को ऐसी बनाइये, कि वे इन्द्रियों को अपने मार्गदर्शन में चला सकें। इस प्रकार हमें उत्तम अस्तित्व वाला बनाइये।

भक्ति (उपासना)
 ओं त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्त्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः।

पचो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥ ऋ० ७.१००.२

— हे सर्वव्यापी प्रभो! आप हमें बुद्धि प्रदान करो। ऐसी सुमति (= श्रेष्ठ बुद्धि) दो जो सब सुखों को उत्पन्न करने वाली हो। आप हमें प्रचुर सुखों वाले, अश्वों वाले और बहुत हर्षदायक ऐश्वर्य से युक्त कीजिये ॥

ओं या तै अग्ने पर्वतस्येव धारासंरचन्ती पीपर्यद् देव चित्रा।

तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्त्याम् ॥ ऋ० ३.५७.६

— हे प्रगति कराने वाले प्रभो। हे समस्त उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता! ज्ञानैश्वर्यवान् ईश्वर! पर्वत से बहने वाली तीव्र धारा के समान आपकी गुणरूपी आश्चर्यकारक जो प्रमति (= तीक्ष्ण बुद्धि) है — जो सब गुणों की उत्पादिका सुमति (= कल्याणी मति) है, उसे हमें प्रदान कीजिये।

ओम् आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि।

दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्दस्ति ॥ ऋ० ४.११.६

— हे अतिशय शक्तिमान् ज्ञानमय परमेश्वर! जो आप हमें सुरक्षित रखना चाहते हैं, तो कृपया आप हमसे निर्बुद्धिता और दुष्टबुद्धिता को दूर रखिये, जिससे कि हमसे पाप दूर रहे। हे दाता प्रभो! आप जिसे कल्याण से संयुक्त करते हैं, तो उसकी अज्ञानावस्था रूप रात्रि में भी उसके लिये आप कल्याणकारक होते हैं।

ओं मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः।

मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्याकृधि ॥ ऋ० ३.१६.५

हे महाशक्तिशाली ज्ञानसागर परमेश्वर! आप हमें कभी निर्बुद्धिता, कायरता, अभाव और निन्दा का शिकार मत होने दीजिये। हमसे सब प्रकार के द्वेषों को दूर कर दीजिये।

उपासना

ईशभक्ति का तीसरा अङ्ग है 'उपासना'। ईश्वर के समीप होना, उसमें तल्लीन होना, उसका ध्यान करना और अन्ततः उसे साक्षात् कर लेना ही 'उपासना' है। यही सुप्रभावी और अनिवार्य साधन है बुद्धि के सुविकास का। वेद में 'उस परमेश्वर के ध्यान करने से बुद्धि, विशेष प्रेरणा से सम्पन्न बन जाती है' इस बात को अनेक बार दुहराया गया है। प्रभुध्यान को बुद्धि-प्रेरणा का अचूक साधन बताने वाले 'सविता' देवता वाले सावित्र मन्त्र को = सावित्री ऋचा को वेद में छः स्थानों पर दोहराया गया है। ऋग्वेद

में ३.६२.१३, यजुर्वेद में ३.३५.२२.९; ३०.२; ३६.३; सामवेद में १४६२ संख्या पर। वह प्रसिद्ध मन्त्र है—

ओ३म्! तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

वर्तमान में यह मन्त्र 'गायत्री-मन्त्र' नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि इसका छन्द 'गायत्री' है। तीन पाद वाले और २४ अक्षरों वाले मन्त्र का 'गायत्री' छन्द होता है। प्रणवरहित इस मन्त्र में २३ अक्षर हैं अर्थात् लक्षण से एक अक्षर कम है, अतः इसे 'निचृद् गायत्री' कहा जायेगा। यजुर्वेद (३६.३) में इस मन्त्र के आरम्भ में 'भूः भुवः स्वः' ये तीन पद अधिक हैं और तब इस मन्त्र का—

ओ३म्! भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यह स्वरूप है। इसे औपनिषद अथवा स्मार्त भाषा में प्रणवपूर्विका सव्याहृतिका सावित्री ऋचा* अथवा प्रणवपूर्वक सव्याहृतिक सावित्र मन्त्र कहते हैं। इस सहोङ्कार सव्याहृतिक सावित्र मन्त्र को गायत्री मन्त्र कहना न्याय्य नहीं है, क्योंकि अब इसका छन्द 'गायत्री' नहीं है, अपितु 'उष्णिक्' छन्द है। उष्णिक् छन्द में २८ अक्षर होते हैं। संहिता में इसका पाठ ओङ्काररहित है, अतः पूर्ववत् एक अक्षर कम होने से 'भूर्भुवः प्रचोदयात्' मन्त्र निचृद् उष्णिक् छन्द वाला हुआ। इस मन्त्र का संक्षिप्त पदार्थ इस प्रकार है—

ओ३म् = सर्वरक्षक, अवश्यज्ञेय, प्रियतम, तृप्तिकारक, प्रार्थनीय, ज्योतिर्मय, प्राप्तव्य, परमेश्वर^Δ।

भूः = नित्य, प्राणदाता

भुवः = दुःखहर्त्ता, ज्ञानवान्

स्वः = सुखस्वरूप, सुखदाता [है]

तत् = उस सर्वव्यापक—

सवितुः = सर्वजगदुत्पादक, प्रेरक—

देवस्य = कामना करने योग्य, दाता ईश्वर के

वरेण्यम् = वरणीयतम अतिश्रेष्ठ

भर्गः = क्लेशनाशक शुद्ध स्वरूप को

धीमहि = हम धारण करें — उसका ध्यान करें।

यः = जो पूजनीय [सविता देव]

* ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।

त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥ मनु० २.८१

Δ 'ओम्' शब्द 'अव' धातु से बना है, जिसके कि १९ अर्थवा २० अर्थ हैं। उनमें से यहाँ हमने सात अर्थ लिये हैं। 'अव रक्षण-गति-कान्ति-प्रीति-तृप्ति-अवगम-प्रवेश-श्रवण-स्वात्म्य-याचन-क्रिया-इच्छा-दीप्ति-अवाप्ति-आलिङ्गन-हिंसा-दान-भाग-वृद्धि'।

नः = हमारी

धियः = बुद्धियों को

प्रचोदयात् = [सत्कर्मों में] प्रेरित करे ॥

इस मन्त्र का सारांश यह है, कि सविता (= प्रेरक ईश्वर) के ध्यान से बुद्धि प्रेरणामयी बनती है। इस मन्त्र में दो क्रिया पद हैं — 'धीमहि' और 'प्रचोदयात्' = 'धारण करें' और 'प्रेरणा करे'। 'धीमहि' (= ध्यान करें) पहली क्रिया है और 'प्रचोदयात्' (= प्रेरणा करे) यह पीछे की क्रिया है। धीमहि — धारण करना' भक्त की क्रिया है और 'प्रचोदयात् — प्रेरणा करना' भगवान् की क्रिया है। पहले भक्त ने ध्यान रूप क्रिया करना है, उसके बाद ही भगवान् की क्रिया 'बुद्धि को प्रेरित करना' आरम्भ होगी। कोई भी वैदिक प्रार्थना अथवा सङ्कल्प निरर्थक अथवा असम्भव नहीं है। जैसे, अग्नि के समीप होने पर अवश्यमेव उष्णता की प्राप्ति होगी, बर्फ पर हाथ रखने पर शीतलता अवश्य मिलेगी, ठीक वैसे ही प्रेरक प्रभु का 'ध्यान' करने पर, उसे धारण करने पर — साक्षात् करने पर अवश्यमेव बुद्धिविकास होगा।

केवल शब्दरूप मन्त्रमात्र रटने से बुद्धिलाभ नहीं होगा। मन्त्रजप की चर्चा के प्रसंग में एक बार एक माता जी बोली 'पण्डित जी! मैं तो ४० वर्ष से गायत्री मन्त्र का जप करती हूँ। मेरी बुद्धि तो वैसी की वैसी ही ठोस है'। मैंने पूछा — 'माताजी! 'वरेण्यम्' का अर्थ खरबूजा है या रसगुल्ला'? माताजी — "यह तो पता नहीं है"। बताइये हम जिस मन्त्र से जप कर रहे हैं, उसका — उसके शब्दों का अर्थ ही ज्ञात नहीं है, तो कैसे तो मन लगेगा और कैसे ध्यान होगा? तीन बातें हैं। एक शब्द, दूसरा उसका अर्थ और तीसरा उसके अनुसार आचरण करना—क्रिया करना। जैसे 'मोदक खाने से मुख मीठा होता है' यह वाक्य है। इस वाक्य को बिना इसका अर्थ जाने और बिना क्रिया करने के केवल इसे रटने से तो मुख मीठा होगा नहीं। पहले शब्द का सही उच्चारण करने के पश्चात् 'मोदक' का अर्थ लड्डू होता है यह जानना आवश्यक है। फिर मोदक प्राप्त करके खाने की क्रिया करने से ही मुख में मिठास की अनुभूति होगी। वैसे ही 'ओं भूर्भुवः प्रचोदयात्' मन्त्र एक वाक्य है। इसका बिना अर्थ जाने और बिना तदनुसार क्रिया करने के हजार बार क्या लाख बार भी इसका जप करने—रटने से भी बुद्धि में प्रेरणा प्राप्त नहीं होगी। पहले मन्त्रपदों का शुद्ध उच्चारण आवश्यक है। पश्चात् उसके प्रत्येक शब्द के अर्थ (= भाव) से सुपरिचित एवं अभ्यस्त होना आवश्यक है और फिर तदनुसार क्रिया करना — भर्गः ध्यान करना — सविता ओम् रूप अर्थ = वाच्य को सत्कल्पना से धारण करना — ध्यान में लाना — तन्मय हो जाना

बुद्धिविकास के उपाय

अत्यावश्यक है। इतना करते ही अनिवार्य रूप से बुद्धिविकास होगा। भक्त को तो अपनी क्रिया पर — धारणा — ध्यान करना रूपी क्रिया पर ही लक्ष्य देना है। उसका फल बुद्धिप्रेरण तो भगवान् अवश्य देगा ही। किसी मन्त्र अथवा शब्द का जप तो तद्गत भाव को मन में स्थिर करने के लिये होता है। वास्तव में तो उस मन्त्र में निर्दिष्ट क्रिया को करना अपेक्षित है। शब्दगत वाच्यार्थ को ध्यान में लाना ही वास्तविकता है। मन्त्र को दस बीस सौ बार जपे, पर उत्तरोत्तर ध्यान में लीन होने का प्रयास करे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है ईशध्यान से बुद्धि में प्रकृष्ट प्रेरणा (= सुविकास) होती है, इस बात को वेद में इस मन्त्र के द्वारा छः बार दोहराया गया है। जिस बात को अधिकबार — कई बार कहा जाता है, उसका अभिप्राय यह है कि 'यह अधिक आवश्यक है' ॐ। अतः यहाँ भी यह अभिप्राय है कि प्रभुध्यान बुद्धिविकास का अचूक उपाय है।

यह ध्यान, समाधि (= उपासना) हर एक के लिये एकदम सम्भव नहीं है। जो अभ्यासी और तीव्र वैराग्यवान् हैं। जिनकी सांसारिक और विशिष्ट उपलब्धियों के प्रति वितृष्णा होने के पश्चात् आत्मदर्शन के प्रति जिनमें तीव्र संवेग उत्पन्न हो गया है, ऐसे व्यक्तियों को तो शीघ्र ही ध्यान की स्थिति प्राप्त हो जाती है। जिनकी ऐसी योग्यता नहीं है, उन्हें पहले कुछ साधन करने चाहियें।

मन, वचन—कर्म से उन्हें निरपराध की हिंसा से बचना चाहिये। मांस, मछली, अंडे आदि का सेवन करना हिंसा है। इससे पूर्णरूप से बचना चाहिये। हिंसा से प्राप्त चमड़े, ऊन आदि का प्रयोग भी त्याज्य है। मन से सत्यचिन्तन, वाणी से सत्यभाषण और व्यवहार में सत्यप्रयोग आवश्यक है। किसी अन्य के पदार्थ आदि की चोरी करना वर्जनीय है। इन्द्रियसंयम अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम वालों को शतप्रतिशत रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। गृहस्थियों को पत्नीव्रत और पतिव्रत धर्म का पालन दृढ़ता से करना चाहिये, और पति—पत्नी को भी परस्पर ऐसा साधनामय वातावरण बनाना चाहिये, कि वे सीमित सहवास में ही अपना कल्याण समझें। तदर्थ उत्तेजक टी.वी. दृश्यों, चित्रों गानों, पुस्तकों आदि से परहेज करना आवश्यक है। भौतिक साधनों और उपकरणों का आवश्यकता से अधिक संग्रह ध्यान में बाधक है। आवश्यकताओं को सीमित रखना साधनामार्ग में प्रगतिकारक होता है।

शरीर, वस्त्र, स्थान, यान औह उदर आदि की शुद्धि रखनी चाहिये। पुरुषार्थ करने के पश्चात् जो प्राप्त हो जाय, उसमें सन्तोष करना चाहिये। जितनी तृष्णा बढ़ेगी

ॐ 'अभ्यासे भूयांसमर्थम्मन्यन्ते' निरु० दे० ४.४२

उत्तनी ही मनुष्य की वृत्ति भटकने वाली बनेगी। स्वकर्तव्यपालन, नित्य कर्म, यज्ञ, साधना आदि के सम्पादन में शरीर-मन से थोड़ा श्रम-तप करना पड़े, तो उसे अवश्य करना चाहिये। वेद, योगशास्त्र, उपनिषद् तथा अन्य अन्तर्मुख करने वाले सद् ग्रन्थों का नियमित स्वाध्याय करना चाहिये। ईश्वर को सदा अपने अंग-संग अनुभव करते हुए, उसी को अपने सत्कर्मों को तथा अपने आप को समर्पित करने का अभ्यास करना चाहिये।

ध्यान के लिये नित्यप्रति निश्चल बैठने का अभ्यास करना आवश्यक है। हाथ, पांव, आंख, नाक आदि इन्द्रियों की और मन की चंचलता को रोककर सुखासन, सिद्धासन अथवा पद्मासन से पर्याप्त समय तक स्थिर होकर बैठने का अभ्यास करे। प्राण और मन का अटूट सम्बन्ध है। मन को वश में करने से ध्यान शीघ्र लग जाता है। प्राणों को वश में करने से मन वश में होता है। अतः पृष्ठ १९४-१९५ में लिखे अनुसार प्रातःसायं अवश्य प्राणायाम करे। सांसारिक विषयों और आकर्षणों की ओर जाने वाले मन को बारंबार हटाकर पुनरपि स्वध्येय की ओर अभिमुख करने का प्रयास करना चाहिये।

नित्यप्रति स्थिरसुखासन में बैठकर प्राणायाम करने के पश्चात् भी चित्त कुछ कुछ भटकता रहता है, अतः उसे किसी स्थान विशेष (= देशविशेष) में रोकना (= बांधना) आवश्यक है, इसको 'धारणा' कहते हैं। नेत्र बन्द करके भ्रुकुटिमध्य, नासिका का अग्रभाग, कण्ठ, हृदय आदि में से किसी एक स्थान पर चित्त को बांधने का अभ्यास करे। वेदादि शास्त्रों द्वारा, योगग्रन्थों द्वारा और सिद्ध योगियों द्वारा जिसका निदेश-निर्देश-उपदेश किया जाता है, उस ईश्वर को भी 'देश' कहते हैं*। उसमें अपने चित्त को (= मन को) बांधना = स्थिर करना असली 'धारणा' है। अनवरत-निर्बाध-बिना रुके प्रणव-जप और साथ ही सत्कल्पना से अपने अन्दर अचिन्त्यशक्ति को अनुभव करना 'धारणा' का क्रम है। मानसिक प्रणवजप के समय अपने अन्दर जो कुछ काला, पीला आदि अथवा ज्योतिर्मय जो कुछ भी अनुभूत होवे उस सब में वह परमेश्वर रमा हुआ है - व्याप्त है, ऐसा विचार के उसी में रम जाना 'धारणा' है। बस अब ध्यान का समय आ गया। उस धारणा की स्थिति की एकतानता - समान दीर्घअवधि ही 'ध्यान' है। उस ध्यान के दीर्घकालीन अभ्यास के बाद स्व की अपने आत्मा की जब तक अनुभूति होती रहती है, उसे 'सम्प्रज्ञात समाधि' कहा जाता है। किन्तु सुदीर्घ काल तक ध्यान का अभ्यास करने पर स्वात्मा की भी जब सुध नहीं रहती और एकमात्र परमध्येय

* दिश्यते निर्दिश्यते उपदिश्यते योगिभिर्ध्यानाय यः स ईश्वरो देशः।
 ४ ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा। (योग १.४८)

बुद्धिविकास के उपाय

परमात्मा में आत्मा स्थिर हो जाता है, आत्मा के गुण रूप मन-बुद्धि आदि द्वारा जब ईश्वर की ही मात्र अनुभूति होती रहती है, उसी का नाम 'असम्प्रज्ञात समाधि है'। ऐसी उच्च अवस्था में पहुँचने पर वस्तुतः मनुष्य की बुद्धि का पूर्ण विकास हो जाता है। वह सत्य-प्रकाश से परिपूर्ण हो जाती है - वह 'ऋतम्भरा' हो जाती है^Δ।

इस प्रकार यहाँ बुद्धिविकास के शुद्धसात्त्विक भोजन, औषधसेवन, गो-अश्व-सेवा, संयम, प्राणायाम, तप, यज्ञ-होम, उषःकालसेवन, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, प्रसन्नता और भक्ति इन बारह प्रमुख उपायों का संक्षेप से विवेचन किया गया है। अन्य भी जो सद उपाय शास्त्र और लोक में बताये जाते हैं। उन सबका अनुष्ठान करके बुद्धि का विकास करना चाहिये।

* ओ३म् *

धी-प्रेरकः सुमति-दाता

मेधायागः

याग-वस्तुएँ

- (क) यज्ञकुण्ड १, घृतपात्र १, सामग्रीपात्र १, समिधा-पात्र १, लोटा १, चिमटा १, कलश १, दीपक १, रुई, माचिस। सुवा १। कपूर १० ग्राम।
- (ख) समिधाएँ २५ किलो [गूलर, बड़ अथवा ढाक की। इनके अभाव में पीपल, आम, शमी, बिल्व की]। समिधाएँ अंगूठे के समान मोटी, नई, सूखी हुई, छिल्के सहित हों।
- (ग) गोघृत ३ कि. २०० ग्राम। गोघृत को एक दिन पूर्व अच्छा गरम कर छानकर उसमें - जावित्री ३० ग्राम, छोटी इलायची १०० ग्राम, कपूर ५० ग्राम और श्वेत चन्दन चूरा २०० ग्राम मिलाकर ढक कर रख दें। जावित्री, इलायची पीसकर मिलावें। कपूर को भुरभुरा करके मिला दें।*
- (घ) हवनसामग्री - तगर १०० ग्राम, कपूरकचरी (असली) १०० ग्राम, बच १५० ग्राम, गूगल १५० ग्राम, चावल १०० ग्राम, जौ १०० ग्राम, खोपरा २५० ग्राम, छुहारे १०० ग्राम। ब्राह्मी २५० ग्राम, मुलहठी २०० ग्राम, गिलोय २५० ग्राम। शंखपुष्पी २०० ग्राम, मालकांगनी १५० ग्राम। इन वस्तुओं को सुखा शुद्धकर जौकुट कूट लें। फिर उस सामग्री में एक किलो पचास ग्राम खांड (बूरा) मिला दें। तत्पश्चात् उसमें कम से कम ८५० आठ सौ पचास ग्राम गोघृत भली भाँति मिलावें।*

विधिः

सङ्कल्प-पाठ

यजमान सपत्नीक दक्षिण हाथ में जल लेकर निम्नलिखित सङ्कल्प-वाक्य

बोले-

* घृत और सामग्री का यह परिमाण एक जने की आहुति के लिये है। यदि अधिक यजमान हों तो घृत, सामग्री तदनुसार बढ़ा लें।

बुद्धिनिधिः

२१३

ओ३म् तत् सत् श्रीब्रह्मणो दिवसे द्वितीये प्रहरे तदुत्तरार्धे वैवस्वते मन्वन्तरे, अष्टाविंशतितमे कलियुगे, कलिप्रथमचरणे, ... अधिके सहस्रद्वये विक्रमसंवत्सरे, ...अयने, ... ऋतौ, ... मासे, ... पक्षे, अद्य तिथौ नक्षत्रे शुभमुहूर्ते जम्बू द्वीपे^Δ, भरत-खण्डे^Δ, ... देशे^Δ, ... प्रदेशे, ... मण्डले, ... नगरे, स्वगृहे, ... गोत्रोत्पन्नः, श्रीमतां महामान्यानां महोदयानां पौत्रः, श्रीमतां मान्यानां महोदयानां पुत्रः, ... नामाऽहं, अ०सौ श्रीमत्या नाम्न्या धर्मपत्न्या सहितः^३ शुश्रूषा-श्रवण-ग्रहण-धारण-ऊहापोह-अर्थविज्ञान-तत्त्वज्ञानादीनां बुद्धिगुणानां सुविकासाय धीप्रेरकं सुमतिप्रदं मेधायागं श्रद्धया शान्त्या करिष्ये ।

आचमन

तत्पश्चात् निम्नलिखित तीन मन्त्रों से तीन आचमन करे -

ओं शं नो देवीरभिष्टेय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि स्रवन्तु नः । ॠ० १०.९.४

ओम् आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वै मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ॠ० १०.९.७

ओम् इदमपः प्रवहत यत् किं च दुरितं मयि ।

यद्वाहमभि दुद्रोह यद् वा शेष उत्तानृतम् ॥ ॠ० १.२३.२२

अङ्गस्पर्श

निम्नलिखित मन्त्रों* से बांये हाथ की हथेली में जल लेकर दक्षिण हाथ की मध्य अंगुलियों से यथाक्रम अङ्गस्पर्श करे-

ओं वाङ् म आस्येऽस्तु । [मुख के दोनों ओर]

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु । [नासिका के दोनों नथनों पर]

ओम् अक्षणोर्मे चक्षुरस्तु [दोनों नेत्रों पर]

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु [दोनों कानों पर]

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु [दोनों भुजाओं पर]

ओम् ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु [दोनों जांघों पर]

ओं जङ्घयोर्मे जवोऽस्तु [दोनों पिंडलियों पर]

ओं पादयोर्मे प्रतिष्ठाऽस्तु [दोनों पैरों पर]

ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु [इससे समस्त अङ्गों पर छिड़काव करे]

Δ यदि यह याग भारत और एशिया से बाहर के स्थान में हो रहा हो तो वहाँ के द्वीप और देश का नाम बोले ।

B यदि मेधायाग-कर्त्ता पत्नी-रहित हो, तो इस वाक्यखण्ड को न बोले ।

* स्रोत-अथर्व १९.६०.१,२

दीर्घप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

प्राणायाम

पृष्ठ १९४-१९५ में लिखे अनुसार सात बाह्यवृत्ति प्राणायाम अथवा बाह्याभ्यन्तर-विषयाक्षेपी प्राणायाम करे।

जप

११ बार सावित्र-मन्त्र = [गायत्री-मन्त्र] का सार्थचित्तन उपांशु [ओठों से] जप करे। फिर मन में प्रणव (= ओम्) जप करते हुए थोड़ी देर 'ध्यान' का अभ्यास करे।

प्रार्थना

निम्नलिखित ८ मन्त्रों से प्रार्थना करे-

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु ॥१॥ य० ३२.१४

ओं मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजुतामृषिष्टुताम्।

प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥२॥ अ० ६.१०८.२

ओम् इन्द्रं मूळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमर्यसो न धाराम्।

यत् किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मां देववन्तम् ॥३॥ ऋ० ६.४७.१०

ओम् इमां मे इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव।

उत प्रवर्धया मतिम् ॥४॥ ऋ० ८.६.३२

ओं त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्क्तुं कविमवसे नि ह्वयामहे।

आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे ॥५॥ ऋ० १.११४.४

ओं या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासंश्वन्ती पीपयद् देव चित्रा।

तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥६॥ ऋ० ३.५७.६

ओं तां सवितः सत्यसेवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम्।

यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रेधारां महिषो भगाय ॥ ७ ॥ अ० ७.१५.१

ओम् आरे अस्मदमतिमारे अहं आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि।

दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ॥ ८ ॥ ऋ० ४.११.६

अग्न्याधान

'ओं भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र से घृतदीपक प्रज्वलित करके उसकी लौ से कपूर बलाकर उसे किसी पात्र में रखकर, उस पर पतली झीणी समिधाएँ रखकर निम्नलिखित मन्त्र से यज्ञकुण्ड में अग्नि स्थापित करे-

बुद्धिनिधिः

ओं भूर्भुवः स्वर्गो रिव भूम्ना पृथिवीर्व वरिष्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्टेऽग्निमन्त्रादमन्त्राद्यादधे ॥ य० ३.५ ॥
निम्नलिखित मन्त्र से अग्नि को पंखी आदि से सुप्रज्वलित करे—
ओम् उदबुध्यस्वाने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सं सृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्वरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ य० १५.५४ ॥

समिदाधान

निम्नलिखित तीन मन्त्रों से [एक एक मन्त्र से एक एक] घृत में भीगी तीन समिधा अग्नि में रखे—

१. ओम् अग्ने समिधमाहोर्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र येच्छतु [स्वाहा] अ० १९.६४.१
२. ओम् इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धर्मेन च ॥ [स्वाहा] अ० १९.६४.२
३. ओम् एतास्तै अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ [स्वाहा] अ० १९.६४.४

घृताहुति

निम्नलिखित पांच मन्त्रों से पांच घृताहुति देवे^Δ —

१. ओं घृतं तै अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।
घृतं तै देवीर्नर्प्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुहतां गावो अग्ने ॥ स्वाहा ॥ अ० ७.८२.६
२. ओं घृतमग्नेर्वध्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्यइव रोचते सर्पिरीसुतिः ॥ स्वाहा ॥ ऋ० १०.६९.२
३. ओं घृतं मिमिक्षे घृतम्वस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ स्वाहा ॥ ऋ० २.३.११
४. ओम् आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरधि ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥ य० ३५.१७
५. ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे ॥ स्वाहा ॥ य० ३.२

Δ प्रत्येक आहुति में ५ ग्राम घी अवश्य होमे ।

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

जलसेचन

निम्नलिखित मन्त्र से यज्ञकुण्ड के चारों ओर जलसेचन करें—

ओं शं न आपो धन्वन्त्याः शमु सन्त्वन्प्याः।

शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः

शिवा नः सन्तु वार्षिकीः॥ अ० १.६.४

प्रधान होम

तत्पश्चात् प्रधान होम का आरम्भ करे। निम्नलिखित मन्त्रों से एक व्यक्ति धी की आहुति^२ और एक व्यक्ति सिद्ध सामग्री^२ की आहुति देता जावे—

धी-मन्त्राः

- १ ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् [स्वाहा] ॥ य० ३६.३
२. ओं धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षा ययात॑रन् दश मासो नवग्वाः।
अया धिया स्याम देवर्गापा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः [स्वाहा] ऋ० ५.४५.११
३. ओं मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशार्दसम्।
धियं घृताचीं सार्धन्ता [स्वाहा] ॥ ऋ. १.२.७
४. ओम् एवा तै हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् [स्वाहा] ॥
(ऋ० १.६१.१६)
५. ओं यामर्थवा मनुषिता दध्यङ् धियमलत।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समगमता चर्चन्तु स्वराज्यम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.८०.१६
६. ओम् अहानि गृध्राः पर्या व आर्गुरिमां धियं वार्कायां च देवीम्।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्केरुर्ध्वं नुनद्र उत्सधिं पिबेध्वै [स्वाहा] ॥
ऋ० १.८८.४

- ५ यजमान पूर्वाभिमुख बैठा हो तो कुण्ड के ईशान कोण से आरम्भ करके आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य से होते हुए पुनः ईशानकोण पर जलसेचन समाप्त करे।
- ६ सामग्री भी प्रत्येक आहुति में ५ ग्राम अवश्य होनी जावे।

बुद्धिविकास के उपाय

७. ओम् इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत् आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्र देवासः शर्वसामदन्ननु [स्वाहा] ॥
ऋ० १.१०२.१
८. ओं वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वो सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमेतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.१०९.१
९. ओं घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान् ऋज्जते ।
इन्द्रानो अक्रो विदथेषु दीर्घच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.१४३.७
१०. ओम् एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वा दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते [स्वाहा] ॥
ऋ० १.१४४.१
११. ओं सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बहिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य [स्वाहा] ॥
ऋ० २.३.८
१२. ओं त्वे इन्द्रार्प्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम [स्वाहा] ॥
ऋ० २.११.१२
१३. ओं वि मच्छथाय रशनामिवार्गं ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रो शार्यपसः पुर ऋतोः [स्वाहा] ॥
ऋ० २.२८.५
१४. ओम् आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सर्वनानि गन्तन ।
अश्वाभिव पिप्यत धेनुमूर्धनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् [स्वाहा] ॥
ऋ० २.३४.६
१५. ओं भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम [स्वाहा] ॥
ऋ० २.३८.१०
१६. ओं विश्वान्यन्यो भुवना ज्ञान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणावर्ततं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतेना जयेम [स्वाहा] ॥
ऋ० २.४०.५

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

१७. ओं धियै' पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अर्वतु देव्यदितिरनुर्वा बृहद् वंदेम विदथै सुवीराः [स्वाहा] ॥ ऋ० २.४०.६
१८. ओम् इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियै' शतसेयाय देवीम् [स्वाहा] ॥
ऋ० ३.१८.३
१९. ओं महत्तद् वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रै ।
सखं ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियै' सातये तक्षता नः [स्वाहा] ॥
ऋ० ३.५४.१७
२०. ओं तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् ।
वधूयुरिव योषणाम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.६२.८
२१. ओम् एता धियै' कृण्वामा सखायोऽप या मातां ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् [स्वाहा] ॥
ऋ० ५.४५.६
२२. ओम् अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियै' जुजोष धीतिभिः ।
भसन्तु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.१४.१
२३. ओम् इन्द्रं मृळ मह्यो जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत् किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.४७.१०
२४. ओं पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियै' धातु ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.४९.७
२५. ओम् अग्नीपर्जन्याववत्तं धियै' मेऽस्मिन् हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळमन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजार्वतीरिष आ धत्तमस्मे [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.५२.१६
२६. ओम् उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।
नृवत् कृणुहि वीतये [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.५३.१०
२७. ओम् इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अर्देवीरभि संन्तु मायाः ।
ये मे धियै' पनयन्त प्रशस्ताम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.१.१०

बुद्धिविकास के उपाय

२८. ओं ह्यमि देवाँ अयातुरग्ने साधन्तेन धियं दधामि [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.३४.८
२९. ओम् अमि वो देवी धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् [स्वाहा] ॥
 ऋ० ७.३४.९
३०. ओम् उत त्वे नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
 मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन् युज्यं ते रयिं नः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ७.३६.७
३१. ओं भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्तः ।
 भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.४१.३
३२. ओं प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृधां सातयै कृतं वसूयुम् ।
 विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ७.६७.५
३३. ओम् इमां सु पूर्या धियं मधोर्धृतस्य पिप्युषीम् ।
 कर्णा उक्थेन वावृधुः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६.४३
३४. ओम् इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्विवः ।
 ऋतादियमि ते धियं मनोयुजम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.१३.२६
३५. ओम् इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुणं सं शिशाधि ।
 ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.४२.३
३६. ओं कथा नूनं वां विमना उप स्तवद् युवं धियं ददधुर्वस्येष्टये ।
 ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोर्चतम् [स्वाहा] ॥
 ऋ० ८.८६.२
३७. ओम् इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
 चिकित्विर्नमसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.९५.५
३८. ओम् अग्निमिन्धानो मर्नसा धियं सचेत् मर्त्यः ।
 अग्निमीधे विवस्वभिः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.१०२.२२
३९. ओं त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
 त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१००.३
४०. ओं त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
 स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.११०.७

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

४१. ओम् आराच्छत्रुमपे बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्भः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धैहि यवमद्गोमेदिन्न कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.४२.७
४२. ओं प्र भूर्जयन्तं महं विषोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिशमश्रु नावाणि धनेर्वम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.४६.५
४३. ओं यां मे धियं मरुतु इन्द्र देवा अर्ददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पर्यसेव धेनुं कुविद् गिरो अधि रथे वहोथ [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.६४.१२
४४. ओम् इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमेविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्रोय शंसन् [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.६७.१
४५. ओम् इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्यमसौमि [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.७४.३
४६. ओम् आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यज्ञतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद् यवसेव गत्वी सहस्रधारा पर्यसा मही गौः [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.१०१.९
४७. ओं व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः ।
दैवी धियं मनामहे सुमृडी कामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवोहसं सुतीर्था नो असद् वशे ।
ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षकृतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥
य ४.११
४८. ओं प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् ।
देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् [स्वाहा] ॥ अ० २०.१२७.६
४९. ओं यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियं धियं वो देव्या उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामर्वसे सुवृक्तिभिः [स्वाहा] ॥
ऋ० १.१६८.१
५०. ओं पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानलकम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं धियं सीषधाति प्र पुषा [स्वाहा] ॥
ऋ. ६.४९.८
२२१

बुद्धिविकास के उपाय

५१. ओं मूहो अर्णः सरस्वती प्र चैतयति केतुना ।
धियो विश्वा विराजति [स्वाहा] ॥ ऋ० १.३.१२
५२. ओम् उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः ।
कर्त्ता नः स्वस्तिमर्तः [स्वाहा] ॥ ऋ० १.९०.५
५३. ओं शकेर्म त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान् हवश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.९४.३
५४. ओं भरामेधं कृण्वामा हवींषि ते दितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.९४.४
५५. ओं युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमातस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मनिष्ठ्ये ताभिरुषु ऊतिभिरश्विना गतम् [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.११२.२
५६. ओं सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यै रराथाम् [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.११७.२३
५७. ओं मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायुविन्दवोऽस्मत् क्राणासः सुकृता अभिर्धवो
गोभिः क्राणा अभिर्धवः ।
यद्ध क्राणा इरध्वे दक्षं सचन्त ऊतयः ।
सघ्नीचीना नियुतो दावने धिय उर्प ब्रुवत ई धियः [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१३४.२
५८. ओं कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद् वसुष्कुविद् वसुभिः कार्ममावरत् ।
चोदः कुवित तुतुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.१४३.६
५९. ओम् आ वामृताय केशिनीरनूषत् मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मेनामिरज्यथः [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.१५१.६
६०. ओं यज्ञेन गातुमपुरो विविद्विरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरो निषदा गा अवस्यव इन्द्रै हिन्वाना द्रविणान्याशत [स्वाहा] ॥
 ऋ० २.२१.५

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेघायागः

६१. ओम् इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नयाँ पुरुणि ।
अचैतयद् धिय इमा जेरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमोसाम् [स्वाहा] ॥
ऋ० ३.३४.५
६२. ओं तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.६२.१०
६३. ओं बृहस्पत इन्द्र वधतं नः सचा सा वाँ सुमतिमूत्वस्मे ।
अविष्टं धियोँ जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः [स्वाहा] ॥
ऋ० ४.५०.११
६४. ओं वि तन्वते धियोँ अस्मा अपाँसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पृथा वृध्वो युन्त्यच्छे [स्वाहा] ॥ ऋ० ५.४७.६
६५. ओं विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।
ईशाना पिप्यतं धिर्यः [स्वाहा] ॥ ऋ० ५.७१.२
६६. ओं युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयमाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः [स्वाहा] ॥
ऋ० ५.८१.१
६७. ओम् इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोहव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियोँ रथेष्ठाभजं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.२१.१
६८. ओं कदा भुवन् रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धिर्यः करसि वाजरत्नाः [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.३५.१
६९. ओं कर्हि सित् तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमेघा हवैरानि गच्छाः [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.३५.३
७०. ओं वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि ।
सार्धन्तामुग्र नो धिर्यः [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.५३.४
७१. ओं ता ह त्यद् वर्तिर्यदरधमुग्रेत्या धिर्य ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिधिरैः शयद्ये परिव्यथिर्दाशुषो मत्यस्य [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.६२.३

बुद्धिविकास के उपाय

७२. ओम् उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद् दविद्युतद् दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ७.१०.१
७३. ओम् इन्द्रं नरो नेमर्धिता हवन्ते यत् पाया युनजेते धियस्ताः ।
 शूरो नृषाता शर्वसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ७.२७.१
७४. ओम् एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
 अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ७.६४.५
७५. ओं ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितृणाम् ।
 मित्रं साधयेतुं धियः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.६६.३
७६. ओं देवं देवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्वचक् सुनृता ईरयन्ती ।
 व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ७.७९.५
७७. ओम् अन्वपां खान्यतृन्तमोजेसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
 इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतुं धियः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ७.८२.३
७८. ओं शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतुं गिरः ।
 ईशाना पिप्यतुं धियः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.९४.२
७९. ओम् इयं वा ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
 अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ७.९७.९
८०. ओं पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
 आपिनो बोधि सधमाद्यो वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.३.१
८१. ओं शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः ।
 शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.३.१२
८२. ओम् अच्छा च त्वेना नमसा वदामसि किं मुहश्चिद् वि दीधयः ।
 सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ८.२१.६

८३. ओं जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चाऽवैरिन्द्र प्र णो धियः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२१.१२
८४. ओं स त्वं नौ देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः।
कृधि वाजो अपो धियः। [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२६.२५
८५. ओं ब्रह्म जिवन्तमुत जिवन्तं धियो हतं रक्षीसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.३५.१६
८६. ओं पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वोरुत प्रशस्तयः सूनो ह्रिन्वस्य हरिवः।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नमन्तामन्युके संमे [स्वाहा] ॥
ऋ० ८.४०.९
८७. ओं नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सुत्रा।
दशस्या नौ मघवन्नु विदद्विवो धियो वाजैभिराविथ [स्वाहा] ॥
ऋ० ८.४६.११
८८. ओं येन वंसाम पृतनासु शर्धतस्तरन्तो अर्य आदिशः।
स त्वं नौ वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः [स्वाहा] ॥
ऋ० ८.६०.१२
८९. ओं स पुर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे।
यस्य द्वारा मनुष्यिता देवेषु धियं आनजे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६३.१
९०. ओं कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दम्पते।
गोषाता यस्य ते गिरः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.८४.७
९१. ओम् अर्याम् धीर्वतो धियोऽर्विन्द्रिः शक्र गोदरे।
जयेम पृत्सु वज्रिवः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.९२.११
९२. ओं युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती।
ईशाना पिप्यतं धियः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१९.२
९३. ओम् एते पूता विपश्चितः सोमसो दध्याशिरः।
विपा व्यानशुर्धियः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.२२.३
९४. ओं स्वयं कविर्विधत्तरि विप्रोय रत्नमिच्छति।
यदी मर्मज्यते धियः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.४७.४
९५. ओम् अचोदसो नो धन्वन्तिवन्दवः प्र सुवानासो बृहद्विवेषु हरयः।
वि च नशन् न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.७९.१

बुद्धिविकास के उपाय

९६. ओम् अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियोः सूर्ये न विशीः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.९४.१
९७. ओं द्विता व्युर्ष्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धिर्यः पिन्वानाः स्वसरे न गावे ऋतायन्तौरभि वावश्च इन्दुम् [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.९४.२
९८. ओम् अर्घ क्षपा परिष्कृतो वाजौ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्यन्ति यातवे [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.९९.२
९९. ओम् आ वैच्यस्व सुदक्ष चम्बोः सुतो विशां वह्निं विस्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धिर्यः [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.१०८.१०
१००. ओं नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग् ब्रह्मा सुन्वन्तिमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.११२.१
१०१. ओं सिध्ना अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्धुभिरस्मा अहभिर्वा ममस्तु [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.७.४
१०२. ओं चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुर्न्धीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघर्वत्सु नस्कृतम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.३९.२
१०३. ओं मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नार्वमरित्रपरेणीं कृणुध्वम् ।
इष्कृणुध्वमायुधारे कृणुध्वं प्राज्वं यज्ञं प्र णेयता सखायः [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.१०१.२
१०४. ओम् उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सधीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनैव पृक्ष आ तैसयेथे [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.१०६.१
१०५. ओं विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानैः ।
यद्वा घा सत्यमुत यन्न विन्न धियो हिन्यानो धिय इन्नो अव्याः [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.१३९.५

१०६. ओं प्रवत् ते अग्ने जनिमा पितृयतः साचीव विश्वा भुवेना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः पुरश्चरन्ति पशुपाईव तनी [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.१४२.२

१०७. ओं नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतुं धियः ।

अथा हि वा दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे [स्वाहा] ॥ ऋ० १०.१४३.३

१०८. ओम् अग्निं हि च्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।

तेन जेषु धनं धनम् [स्वाहा] ॥ ऋ० १०.१५६.१

१०९. ओं युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।

अग्नेज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् [स्वाहा] ॥ य० ११.१

११०. ओं पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।

पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा [स्वाहा] ॥ य० ११.३९

१११. ओम् अंहोमुचं वृषभं यज्ञियांनां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।

अपां नपातमशिवना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः [स्वाहा] ॥

य० ११.४२.४

११२. ओं स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गृणोऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।

असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वर्षा गणः [स्वाहा] ॥

ऋ० १.८७.४

११३. ओम् इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेवं धेनोः ।

सा नो दुहीयद् यवसेव गत्वी सहस्रधारा पर्यसा मही गौः [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.४१.५

११४. ओं त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोताऽस्या धियो अभवो दस्म होता ।

त्वं सी वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्वे [स्वाहा] ॥

ऋ० ६.१.१

११५. ओं प्र वो महीमरमेति कृणुध्वं प्र पुषणं विदुध्वं न वीरम् ।

भर्ग धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.३६.८

११६. ओम् ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।

दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.७५.२

२२७

बुद्धिनिधिः

११७. ओं स पुनानो मदन्तेमः सोमश्चमूर्षु सीदति ।
 पुशौ न रेत आदधत् पतिर्वचस्यते धियः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.९९.६
११८. ओं होता यक्षद् वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् ।
 मध्वा समञ्जन् पृथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन
 वेत्वाज्यस्य होतर्यज [स्वाहा] ॥ य० २८.१०
११९. ओं स नौ महौ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
 धिये वाजाय हिन्वतु [स्वाहा] ॥ ऋ० १.२७.११
१२०. ओम् ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतये ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये ।
 उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.१११.४
१२१. ओम् आदित् पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद् रत्नं धारयन्तु द्युभक्तम् ।
 विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्रं धिये वरुण सत्यमस्तु [स्वाहा] ॥
 ऋ० ४.१.१८
१२२. ओम् सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषेक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
 गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद् धिये प्रायसे मदीय [स्वाहा] ॥ ऋ० ४.२१.७
१२३. ओं प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारेमकैः ।
 इषुध्यव ऋतसापः पुरंधीर्वस्वीनो अत्र पत्नीरा धिये धुः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ५.४१.६
१२४. ओं वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये ।
 धिये पूषन्नयुज्महि [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.५३.१
१२५. ओं धिये समश्विना प्रावेतं न उरुष्या ण उरुज्मन्प्रयुच्छन् ।
 द्यौषितर्यावय दुच्छुना या [स्वाहा] ॥ अ० ६.४.३
१२६. ओं मनसे चेतसे धिय आकूतये उत चित्तये ।
 मृत्ये श्रुताय चक्षसे विधेम हविषो वयम् [स्वाहा] ॥ अ. ६.४१.१
१२७. ओम् उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
 नमो भरन्त एमसि [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१.७
१२८. ओं वायुविन्द्रश्च सुन्वत आयातमुप निष्कृतम् ।
 मर्क्षित्या धिया नरा [स्वाहा] ॥ ऋ० १.२.६

१२९. ओम् अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया ॥
 धिष्य वनतं गिरः [स्वाहा] ॥ ऋ० १.३.२
१३०. ओम् इन्द्रायोहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
 उप ब्रह्माणि वाधतः [स्वाहा] ॥ ऋ० १.३.५
१३१. ओं या दत्ता सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
 धिया देवा वसुविदा [स्वाहा] ॥ ऋ० १.४६.२
१३२. ओम् अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः ।
 धिया युयुज्ज इन्दवः [स्वाहा] ॥ ऋ० १.४६.८
१३३. ओं स हि द्वरो द्वरिषु वज्र ऊर्ध्वनि चन्द्रबुध्नो मर्दवृद्धो ममीषिभिः ।
 इन्द्रं तमहे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठारातिं स हि पप्रिन्धसः [स्वाहा] ॥
 दिव्यं ऋ० १.५२.३
१३४. ओम् अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
 यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्येसी ।
 अध प्र सू न उपयन्तु धीतयो देवा अच्छा न धीतयः [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.५३.१
१३५. ओं प्र द्यावां यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचैतसा ।
 देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूतः [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.५५.१
१३६. ओं तद् वो जामित्वं मरुतः परे युरो पुरु यच्छंसममृतास आवत ।
 अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा विकित्रिरे [स्वाहा] ।
 ऋ० १.५६.१३
१३७. ओम् उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिबुध्न्योऽज एकपादुत ।
 त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शर्मि [स्वाहा] ॥
 ऋ० २.३१.६
१३८. ओं वैश्वानराय धिषणा मृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
 द्विता होतारं मनुषश्च वाधतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति [स्वाहा] ॥
 ऋ० ३.२.१
१३९. ओम् अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशंसं धिया ।
 रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचार्तनः [स्वाहा] ॥
 ऋ० ३.३.६

१४०. ओं स हव्यवाळर्मर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः।

अग्निर्धिया समृण्वति [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.११.२

१४१. ओम् अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्यः। अर्थं ह्यस्य तरणि ॥ ऋ० ३.११.३

१४२. ओम् इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गोभिर्नभो वरेण्यम्।

अस्य पातं धियेषिता [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.१२.१

१४३. ओं तं सबाधो यतस्तु च इत्था धिया यज्ञवन्तः।

आ चक्रुरग्निमूतये [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.२७.६

१४४. ओं धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे।

दक्षस्य पितरं तना [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.२७.९

१४५. ओं याभिः शर्वीभिश्चमसाँ अपिशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः।

येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.६०.२

१४६. ओम् इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गर्भस्त्योः।

धियेषितो मघवन् दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.६०.५

१४७. ओं देवं नरः सवितारं विप्रो यज्ञैः सुवृक्तिभिः। नमस्यन्ति धियेषिताः ॥ ऋ० ३.६२.१२

१४८. ओं स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवमक्तं यदस्य।

धिया यद् विश्वे अमृता अकृण्वन् द्यौषिता जनिता सत्यमुक्षन् [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.१.१०

१४९. ओं नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः।

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.१६.२१

१५०. ओं नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरुथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः।

उरुची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.५६.४

१५१. ओं युयं मर्त्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया।

ओतोरो यामहूतिषु [स्वाहा] ॥ ऋ० ५.६१.१५

१५२. ओम् ऋधुद् यस्ते सुदानवे धिया मर्त्तं शशमते।

ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.२.४

२३०

बुद्धिनिधिः

१५३. ओं तं वो धिया नर्वस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्वै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्नेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.२२.७
१५४. ओं तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यकैः ।
ब्रह्मा च गिरौ दधिरे समस्मिन् महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.३८.३
१५५. ओं वाममुद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरैरया धिया वामभार्जः स्याम [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.७१.६
१५६. ओं दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति ज्यातुमार्वां [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.१.५
१५७. ओं वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.३७.६
१५८. ओं दाशराज्ञे परिरयताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
शिवत्यज्यो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो अर्सपन्त तृत्सवः [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.८३.८
१५९. ओम् इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे ।
धिया धेनो अवस्यर्वः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.९४.४
१६०. ओम् इन्द्राय सु मुदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।
शक्र एणं पीपयद् विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.१.१९
१६१. ओम् इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसोतये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.३.१८
१६२. ओं प्र पुषणं वृणीमहे युज्याय पुरुवसुम् ।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.४.१५
१६३. ओम् उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम् ।
धिया विप्रो अजायत [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६.२८
१६४. ओं क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः ।
अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.१३.८

बुद्धिविकास के उपाय

१६५. ओं विश्वानि विश्वमेनसो धिया नो वृत्रहन्तम् ।

उग्रं प्रणेतरधि पू वसो गहि [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२४.७

१६६. ओं स्मदेतयो सुकीर्त्याऽश्विना श्वेतयो धिया ।

वहेथे शुभ्रयावाना [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२६.१९

१६७. ओम् आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन् माकीनया धिया ।

इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२७.८

१६८. ओं देवं देवं वोऽवसे देवं देवमभिष्टये ।

देवंदेवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया [स्वाहा] ॥

ऋ० ८.२७.१३

१६९. ओम् उभयं शृण्वच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शक्विष्ठ आ गेमत् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६१.१

१७०. ओं वृकेश्चिदस्य वारुण उरामथिरा वयुनैषु भूषति ।

सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आगहीन्द्र प्र चित्रयो धिया [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६६.८

१७१. ओं त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि ।

त्वं न ऊती तव चित्रयो धिया शिक्षा शक्विष्ठ गातुवित् [स्वाहा] ॥

ऋ० ८.६६.१४

१७२. ओं प्र प्रै वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे ।

धिया वो मेघसातये पुरन्ध्या विवासति [स्वाहा] ॥ ऋ० ८. ६९.१

१७३. ओं वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रसो वाजसातये ।

ता वलू दसा पुरुदंससा धियाऽश्विना श्रुष्ट्या गतम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ८.८७.६

१७४. ओं स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया दवित्त्वा ।

धिया विडिढ पुरंध्या [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.९२.१५

१७५. ओम् अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत ।

यत् सोमैसोम आभवः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.९३.१७

१७६. ओम् उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणां त्र पारमीरया नदीनोम् ।

नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरन्य कुविदङ्ग वेदत् [स्वाहा] ॥

ऋ० ८.९६.११

धोप्ररकः सुमतिदाता मेधायागः

१७७. ओम् उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यजियो ववर्त्तति ।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः [स्वाहा] ॥

ऋ० ८.१०३.११

१७८. ओम् एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१५.१

१७९. ओम् पर्वमान धिया हितोऽभि योनिं कर्निकदत् ।
धर्मणा वायुमा विश [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.२५.२

१८०. ओं तर्ममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि ।
विप्रासो अण्व्या धिया [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.२६.१

१८१. ओं तमेह्यन् भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः ।
पतिं वाचो अदाभ्यम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.२६.४

१८२. ओं मृती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति ।
विप्रस्य धारया कृविः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.४४.२

१८३. ओं प्र हिन्वानास इन्द्रवोऽच्छा समुद्रमाशर्वः ।
धिया जूता असृक्षत [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.६४.१६

१८४. ओं पुनन्तु मां दैवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.६७.२७

१८५. ओं श्येनो न योनिं सदर्शनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराऽश्वो न देवां अप्येति यजियः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.७१.६

१८६. ओं नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्विः ।
पुराधिवान् मनुषो यज्ञसार्धनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.७२.४

१८७. ओं श्वेतं रूपं कृणुते यत् सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद् दिवस्कर्वन्धमव दर्षदुद्रिणम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.७४.७

१८८. ओम् इन्द्रस्य सोम पर्वमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वाविश ।
प्र णाः पित्व विद्युदग्नेव रोदसी धिया न वाजं उर्प मासि शश्वतः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.७६.३

२३३

बुद्धिनिधिः

बुद्धिविकास के उपाय

१८९. ओम् अयं मृतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्यै ससार पवमान ऊर्मिणी ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तराकवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.८६.१३
१९०. ओम् असेजिं वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोतो प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसरो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.९१.१
१९१. ओं तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
यज्ञं हिन्वन्त्यग्निभिः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१०१.३
१९२. ओं वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयसि युहो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यजियौ यजतु यजियाँ ऋतून् [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.११.१
१९३. ओं कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नृन् कया धिया करसे कन् आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्नै समस्य यदसन् मनीषाः [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.२९.४
१९४. ओं रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विश्वे विशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.४०.१
१९५. ओं तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुत्खणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.५३.६
१९६. ओं वसूनां वा चर्कृष इयक्षन् धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अर्वन्तो वा ये रथिमन्तः सातौ वजुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.७४.१
१९७. ओम् उत स्य ने उशिजोमुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्यो हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.९२.१२
१९८. ओं त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्नै देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान् मृळीकार्य प्रियव्रतान् [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.१५०.३

धीप्ररकः सुमतिदाता मेधायगः

१९९. ओम् आ याहि वस्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥ ऋ० १०.१७२.२
२००. ओं प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् ।
हव्या नो वक्षदानुषक् [स्वाहा] ॥ ऋ० १०.१७६.२
२०१. ओं संहिताऽसि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन ।
उष त्वाऽग्ने दिवेदिवे दोषावस्त धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि [स्वाहा] ॥
य० ३.२२
२०२. ओं समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा ।
मा म आयुः प्रमौषीमो अहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि [स्वाहा] ॥
य० ४.२३
२०३. ओं. युक्त्वार्य सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्र सुवाति तान् [स्वाहा] ॥ य० ११.३
२०४. ओम् उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया ।
दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिरागने याहि सुशस्तिभिः [स्वाहा] ॥
य० ११.४१
२०५. ओम् उखां कृणोतु शक्त्या ब्राहुभ्यामदिति धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साऽग्निं बिभर्तु गर्भ आ । मुखस्य शिरोऽसि [स्वाहा] ।
य० ११.५७
२०६. ओम् अदभ्यः क्षीरं व्यपिबत् कुङ्जङ्गिरसो धिया ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपाने शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं
पयोऽमृतं मधु [स्वाहा] ॥ य० १९.७३
२०७. ओम् अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेधिया सरस्वती ।
आ शुक्रमानसुराद्वसु मघमिन्द्राय जग्निरे [स्वाहा] ॥ य० २०.६७
२०८. ओं देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् ।
धिया भगं मनामहे [स्वाहा] ॥ य० २२.१४
२०९. ओम् आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पूणस्व कुक्षी विडिठ शक्र धियेहा नः ।
शुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय [स्वाहा] ॥
अ० २.५.४
२१०. ओं पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पर्वमानः पुनातु मा [स्वाहा] ॥ अ० ६.१९.१

बुद्धिविकास के उपाय

२११. ओं यस्ते परूषि सन्दधौ रथस्येवर्भुर्धिया ।

तं गच्छ तत्र तेऽयं नमजातस्तेऽयं जनः [स्वाहा] ॥ अ० १०.१.८

२१२. ओं सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वसामूधः स धियामुदज्यनः ।

भरद् धेनू रसवच्छिन्ने पयोऽनु बुवाणो अध्येति न स्वपन् [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.४४.१३

२१३. ओं यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।

स धीनां योगमिन्वति [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१८.७

२१४. ओं विश्वपतिं युहमतिथिं नरः सदा युन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।

अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.३.८

२१५. ओं भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।

त्वामनु प्रमतिमा जगन्नोरुशंसो जरित्रे विश्वधे स्याः [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.१६.१८

२१६. ओं पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।

गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुधीनामविता कारुधायाः [स्वाहा] ॥

ऋ० ६.४४.१५

२१७. ओं प्र णो देवी सरस्वती वार्जेभिर्वाजिनीवती ।

धीनामवित्त्र्यवतु [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.६१.४

२१८. ओम् आ पशुं गौंसि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।

विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२७.२

२१९. ओं नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः संबर्धुधः ।

हिन्वानो मानुषा युगा [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१२.७

२२०. ओं यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।

युवोरित्थाधि सन्नस्वपश्याम हिरण्ययम् ।

धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः [स्वाहा] ॥

ऋ० १.१३९.२

२२१. ओं वनस्पतिरवसृजन्नुपस्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।

त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन् देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् [स्वाहा] ॥

ऋ० २.३.१०

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेघायागः

२२२. ओम् असूत पूर्वी वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे [स्वाहा] ॥
ऋ० ३.३८.५
२२३. ओं ते मर्मजत ददृवांसो अद्रिं तदैषामन्ये अभितो वि वौचन्।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन् विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः [स्वाहा] ॥
ऋ० ४.१.१४
२२४. ओं त्वामग्ने प्रथमं दैव्यन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम्।
द्वेधोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ४.११.५
२२५. ओं सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम्।
स धीभिरस्तु सर्निता मेघसाता सो अर्वता [स्वाहा] ॥ ऋ० ४.३७.६
२२६. ओम् अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तैष्वाविशन्।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः संपर्यत [स्वाहा] ॥ ऋ० ५.२५.४
२२७. ओम् अच्छ ऋषे मारुतं गुणं दाना मित्रं न योषणी।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत [स्वाहा] ॥ ऋ० ५.५२.१४
२२८. ओं स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये।
स तोकसाता तनये स वजी वितन्तसाय्यो अभवत् समत्सु [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.१८.६
२२९. ओं धीभिरवद्भिरर्वतो वाजो इन्द्र श्रवाय्यान्।
त्वया जेष्म हितं धनम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.४५.१२
२३०. ओम् उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा।
अत्रिं न महस्तर्मसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीकै [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.५०.१०
२३१. ओम् एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासौ भूता यजत्राः [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.५०.१५
२३२. ओम् आपश्चित् पिप्युः स्तूर्यो न गावो नक्षन्तुतं जरितारस्त इन्द्र।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ त्वं हि धीभिर्दर्यसे वि वाजान् [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.२३.४

बुद्धिविकास के उपाय

२३३. ओं शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.३५.११
२३४. ओं सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद् याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते गुज्याभिरुती कदा न इन्द्र राय आ देशस्येः [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.३७.५
२३५. ओम् उपो ह यद् विदथे वाजिनो गुर्ध्नाभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.९३.३
२३६. ओं धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमैधैरभिद्युभिः ।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.४.२०
२३७. ओं दिवशिधद् रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमैर्भिर्हवनश्रुता [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.८.७
२३८. ओं यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.९.२१
२३९. ओं सो अद्वा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्येः ।
स धीभिरस्तु सनिता [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.१९.९
२४०. ओं समिधा यो निशिती दाशददिति धामभिरस्य मर्त्यः ।
विश्वेत् स धीभिः सुभगो जना अति द्युम्नैरुदनैव तारिषत् [स्वाहा] ॥
ऋ० ८.१९.१४
२४१. ओं विश्वाभिर्धोभिर्मुवेनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.३५.२
२४२. ओम् आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके संमे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.४२.४
२४३. ओम् अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विप्रश्चितः ।
अन्नसद्याय हिन्विरे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.४३.१९
२४४. ओं वचोविद् वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धोभिरुपतिष्ठमानाम् ।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दुभ्रवेताः [स्वाहा] ॥
ऋ० ८.१०१.१६

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

२४५. ओं यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चकृत्यानि कृण्वतः।
सहस्रसां मेधसोताविव त्मनाऽग्निं धीभिः सपर्यत [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.१०३.३
२४६. ओं तर्मु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः।
मृजन्ति देवतातये [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१७.७
२४७. ओं कविं मृजन्ति मर्ज्य धीभिर्विप्रा अवस्यवः।
वृषा कनिक्रदर्यति [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.६३.२०
२४८. ओं वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया।
मती विप्राः समस्वरन् [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.६३.२१
२४९. ओं समु त्वा धीभिरस्वरन् हिन्वतीः सप्त जामयः।
विप्रमाजा विवस्वतः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.६६.८
२५०. ओं धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम्।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१०६.११
२५१. ओं पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः।
विश्वे देवासः शृणवन् वर्चासि मे सरस्वती सह धीभिः पुरंध्या [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.६५.१३
२५२. ओं विश्वे देवाः सह धीभिः पुरंध्या मनोर्यजत्रा अमृता क्रतुज्ञाः।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.६५.१४
२५३. ओं सरस्वान् धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विनौ।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववैदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरुथमंहसः [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.६६.५
२५४. ओं ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः।
बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुभिर्या असृजत स्वयुग्मिः [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.६७.८
२५५. ओं प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयमि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्च तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वभिः शच्या गृणानः [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.१०४.३
२५६. ओं तनूनपात् पथ क्रतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.११०.२

बुद्धिविकास के उपाय

२५७. ओं धीभिः कृतः प्र वेदाति वाचमुद्धर्षय सत्त्वनामायुधानि ।

इन्द्रमेदी सत्त्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि [स्वाहा] ॥

अ० ५.२०.८

२५८. ओम् इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा ।

अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१७.८

२५९. ओम् अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।

विश्रवांसु धीषु वन्द्य [स्वाहा] ॥ ऋ० १.७९.७

२६०. ओम् अविष्टं धीर्ष्वशिवना न आसु प्रजावद् रेतो अह्वयं नो अस्तु ।

आ वाँ तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.६७.६

२६१. ओम् अग्निं वो देवयज्ययाऽग्निं प्रयत्यध्वरे ।

अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वत्यग्निं क्षेत्राय साधसे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.७१.१२

२६२. ओम् अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।

अष्ट्राँ पूषा शिथिरामुद्धरीवृजत् संचक्षाणो भुवना देव ईयते [स्वाहा] ॥

ऋ० ६.५८.२

२६३. ओं तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्मवसे हूमहे वयम् ।

पूषा नो यथा वेदसामसद वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये [स्वाहा] ॥

ऋ० १.८९.५

२६४. ओम् अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वर्षण्वान् मदता मनीषिणः ।

धिंजिन्वा धिष्या विश्वलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिप्रता [स्वाहा] ॥

ऋ० १.१८२.१

२६५. ओं शिवत्यज्वो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।

उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नृन्, न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.३३.१

२६६. ओं हस्ते दधानो नृम्या विश्वान्यमै देवान् धाद् गुहा निषीदन् ।

विदन्तीमत्र नरो धियंघा ह्वा यत्तुष्टान् मन्त्राँ अशंसन् [स्वाहा] ॥

ऋ० १.६७.२

२६७. ओम् अस्मे वत्सं परिषन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।

श्रमयुवः पदव्यो धियंघास्तस्थुः पुदे परमे चार्वग्नेः [स्वाहा] ॥ ऋ० १.७२.२

२४०

बुद्धिनिधिः

२६८. ओं प्र वामवोचमशिवना धियुं धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजोसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ [स्वाहा] ॥
ऋ० ४.४५.७
२६९. ओं नराशंसस्य महिमानमेषामुपे स्तोषाम यजुतस्य युज्ञैः ।
ये सुक्रतेवः शुचयो धियुं धाः स्वदन्ति देवा उभर्यानि हव्या [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.२.२
२७०. ओं तद्वन्धुः सूरिर्दिवि ते धियुं धा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घ्राऽहं तत् पश्चा कतिथश्चिदास [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.६१.१८
२७१. ओं भवा वरुथं गृणते विभावो भवा मघवन् मुघवन्नयः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.५८.९
२७२. ओं तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतेमासः ।
आशु न वाजं भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.६०.५
२७३. ओम् एवा ते हरियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतेमासो अक्रन् ।
रेषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.६१.१६
२७४. ओं सनायते गोतेम इन्द्र नव्यमर्तक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.६२.१३
२७५. ओम् अकारि त इन्द्र गोतेमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.६३.९
२७६. ओं नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत् ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.६४.१५
२७७. ओम् अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषतो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः [स्वाहा] ॥
ऋ० ३.३.२

२७८. ओं नू नौ रयिमुप मास्व नुवन्त पुनानो वाताप्य विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वेन्दितुरिन्वो तार्यायुः प्रातर्मक्ष धियावसुर्जगम्यात् [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.९३.५

२७९. ओं पावका न सरस्वती वाजैभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वेष्टु धियावसुः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.३.१०

२८०. ओं वायुर्न यो नियुत्वा इष्टयामा नासत्येव हव आ शंभविष्ठः ।
विश्ववोरो द्रविणोदाइव त्मन् पूषेव धीजवनोऽसि सोम [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.८८.३

२८१. ओम् अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरै धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.९७.४९

२८२. ओं हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः ।
धीजवना नासत्या [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.५.३५

२८३. ओं प्र त आशर्वः पवमान धीजवो मदो अर्षन्ति रघुजाइव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.८६.१

२८४. ओं प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि ।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.८६.४

मति-मन्त्राः

२८५. ओं सनायुवो नमसा नव्यो अकैर्वसूयवो मृतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्त स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषाः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.६२.११

२८६. ओं ब्रह्माणि मे मृतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अर्द्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.१६५.४

२८७. ओम् उत न ई मृतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जर्नयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.१८६.७

२८८. ओं म॒तयः सोम॒पामुरुं रि॒हन्ति शर्व॑स॒स्पतिम् ।
इन्द्र॑ वृ॒त्सं न मा॒तरः [स्वाहा] ॥ ऋ. ३.४१.५
२८९. ओम् आ योहि पूर्वीरतिं चर्षणीरां अर्य आशिष उर्य नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा म॒तयः स्तोमे॑तष्टा इन्द्र॑ हवन्ते स॒ख्यं जुषा॑णाः [स्वाहा] ॥
ऋ. ३.४३.२
२९०. ओं प्र वो म॒हे म॒तयो॑ यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एव्यामरुत् ।
प्र शर्धाय॑ प्रयज्यवे सुखादये॑ तवसे भ॒न्ददि॑ष्ट्ये धुनि॒व्रताय॑ शर्वसे [स्वाहा] ॥
ऋ. ५.८७.१
२९१. ओं तमु॑ द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं॑ यर्मस्मै म॒मतै॑व शूषं घृतं न शुचिं म॒तयः प॑वन्ते [स्वाहा] ॥ ऋ. ६.१०.२
२९२. ओम् अच्छा गिरो म॒तयो॑ देव॒यन्ती॑रग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुस॒न्दृशं॑ सु॒प्रतीकं॑ स्व॒र्चं हव्य॑वाहमरति मानुषाणाम् [स्वाहा] ॥
ऋ. ७.१०.३
२९३. ओम् अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं क्विं क्वयोऽपसो मनीषिणः ।
समीं गावो म॒तयो॑ यन्ति संयतं ऋ॒तस्य॑ योना॒ सदे॑ने पुनर्भुवः [स्वाहा] ॥
ऋ. ९.७२.६
२९४. ओं अत्यं॑ मृजन्ति कुलशे दश क्षिपुः प्र विप्राणां म॒तयो॑ वाच ईरते ।
पर्व॑माना अ॒भ्यर्ष॑न्ति सुष्टुतिमेन्द्रं॑ विशन्ति मदिरास इन्द्रवः [स्वाहा] ॥
ऋ. ९.८५.७
२९५. ओं नार्के सुपर्णमुपपत्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।
शिशुं॑ रिहन्ति म॒तयः प॑र्निजतं हिरण्ययं शकुनं क्षार्मणि॑ स्थाम् [स्वाहा] ॥
ऋ. ९.८५.११
२९६. ओं प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धी॒तयो॑ वावशाना अनूषत शिशुं॑ रिहन्ति म॒तयः प॑र्निजतम् [स्वाहा] ॥
ऋ. ९.८६.३१
२९७. ओम् असर्जिं स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं॑ रिहन्ति म॒तयः प॑र्निजतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो॑ युयुः [स्वाहा] ॥
ऋ. ९.८६.४६
२९८. ओं तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं म॒तयः स॑चन्ते त्रितो बिभोति वरुणं समुद्रे [स्वाहा] ॥
ऋ. ९.९५.४

२९९. ओं तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।

गावो यन्ति गोपतिं पूच्छमानाः सोमं यन्ति मृतयो वावशानाः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.९७.३४

३००. ओं धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमर्त्यविम् ।

अभि त्रिपृष्ठं मृतयः समस्वरन् [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१०६.११

३०१. ओम् इमा अग्ने मृतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।

यदा ते मर्तो अनु भोगमानुङ् वसो दधानो मतिभिः सुजात [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.७.२

३०२. ओम् अच्छा म इन्द्रं मृतयः स्वविदः सध्रीचीर्विश्वो उशतीरनूषत ।

परिष्वजन्ते जनेयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्यं मघवानमृतये [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.४३.१

३०३. ओम् इमा अस्मै मृतयो वाचो अस्मदां ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।

वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु विद्वर्धनो यासु चाकनेत् [स्वाहा] ॥ ऋ०

१०.९१.१२

३०४. ओं मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथायथा मृतयः सन्ति नृणाम् ।

इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गैर्वणस्युर्विदानः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.१११.१

३०५. ओं बळित्था तद् वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गुः सहसो यतो जनि ।

यदीमुपह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेनो अनयन्त स्रुतः [स्वाहा] ॥

ऋ० १.१४१.१

३०६. ओम् ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।

इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१४२.४

३०७. ओम् इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाऽच्छा पतिं स्तोमैतष्टा जिगाति ।

या जागृर्विदधे शस्यमानेन्द्र यतो जायते विद्धि तस्य [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.३९.१

३०८. ओं शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतिचीनं ददृशे विश्वमायत् ।

अन्तमतिश्चरति निषिधं गोर्महदेवानामसुरत्वमेकम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.५५.८

३०९. ओं समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सर्वन् यस्मिन्नायता ।

अत्रा न हर्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.४४.९

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

३१०. ओम् आ रुद्रासु इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुवितार्य गन्तन।
इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्ये [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.५७.१

३११. ओं को नु वो मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम्।

तत् सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः [स्वाहा] ॥ ऋ० ५.६७.५

३१२. ओं पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वीचं विदथा जातवैदसः।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुर्ग्नये [स्वाहा] ॥

ऋ० ६.८.१

३१३. ओं राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शर्वसे।

इयं विप्रा मेधसातये [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.६६.८

३१४. ओम् इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वैव वाजिनी।
यां वां होत्रा परि हिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.१०४.६

३१५. ओम् अभि कण्वा अनूषताऽऽपो न प्रवर्ता यतीः।

इन्द्रं वर्नन्वती मतिः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६.३४

३१६. ओम् उत स्या नो दिवा मतिरदितिरुत्था गमत्।

सा शताति मयस्करदपु स्निग्धः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.१८.७

३१७. ओम् इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधोव्यस्मदा।

मन्द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.७४.७

३१८. ओम् इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सज्यूर्ध्वनि।

उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.६९.१

३१९. ओम् उपौ मतिः पृथ्यते सिच्यते मधु मन्द्रार्जनी चोदते अन्तरासनि।

पर्वमानः संतानिः प्रघ्नतामिव मधुमान् द्रप्सः परिवारमर्षति [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.६९.२

३२०. ओं सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पशविः।

नि बाधते अमतिर्गन्ता जसुर्वेन वैवीयते मतिः [स्वाहा] ॥ ऋ० १०.३३.२

३२१. ओं प्र सप्तर्गमृतधीति सुमेधां बृहस्पति मतिरच्छा जिगाति।

य ओङ्गिरसो नर्मसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.४७.६

२४५

बुद्धिनिधिः

३२२. ओम् उपे मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रभिर्व प्रियम् ।

कुवित्सोमस्यापामिति [स्वाहा] ॥ ऋ० १०.११९.४

३२३. ओम् इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ् मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हेमन्ती
पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयण आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ
त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वरैवृते विश्वकर्म ऋषिः ।

प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः [स्वाहा] ॥ य० १३.५८

३२४. ओं वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे
सुपथ्यं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे
मतिश्च मे सुमतिश्च मे युजेन कल्पन्ताम् [स्वाहा] ॥ य० १८.११

३२५. ओम् अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि [स्वाहा] ॥ अ० ८.२३.१

३२६. ओं तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्रशंसामो मतिभिर्गोतमासः ।

आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् [स्वाहा] ॥

ऋ० १.६०.५

३२७. ओं प्रातारथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकुशः सप्तरश्मिः ।

दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिर्भिमतिभी रंढ्यो भूत [स्वाहा] ॥ ऋ० २.१८.१

३२८. ओ त्वं नो गोपाः पथिकृद् विचक्षणस्तव व्रतार्य मतिभिर्जरामहे ।

बृहस्पते यो नो अभि ह्वरौ दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती [स्वाहा] ।

। ऋ० २.२३.६

३२९. ओ त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।

मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि [स्वाहा] ॥

ऋ० २.२३.१०

३३०. ओम् इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।

स्वयवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासौ अक्रन् [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.३०.२०

३३१. ओम् आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।

अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.४३.३

३३२. ओम् एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।

निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः [स्वाहा] ॥ ऋ० ४.३.१६

२४६

बुद्धिनिधिः

३३३. ओं द्युतघोमानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणसु विभातीम् ।

देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते [स्वाहा] ॥ ऋ० ५.८०.१

३३४. ओं हुवे वः सुनुं सहसो युवानमद्रौघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।

य इन्वति द्रविणानि प्रचैता विश्ववाराणि पुरुवारो अधुक् [स्वाहा] ॥

३३५. ओं तमु नः पूर्वं पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।

नक्षद्वाभं ततुरि पर्वतेष्ठा मद्रौघवाचं मतिभिः शविष्ठम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.२२.२

३३६. ओं ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत् इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।

सुते सोमं सुतपाः शन्तमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः [स्वाहा] ॥

३३७. ओम् अस्मा एतन्मह्योऽङ्गुषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।

असद् यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च [स्वाहा] ॥

३३८. ओं त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।

त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.१२.३

३३९. ओं यूयं ह रत्नं मध्वत्सु धत्थ स्वर्दृशं ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।

सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् [स्वाहा] ॥

३४०. ओं ररे हव्यं मतिभिर्यजिरानां नक्षत् कामं मत्यानामसिन्वन् ।

धाता रयिमविदस्यं सदासां संक्षीमहि युज्यैभिर्नु देवैः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.३९.६

३४१. ओं नरा गौरेवं विद्युतं तृषाणाऽस्माकमद्य सवनोप यातम् ।

पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.६९.६

३४२. ओं यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।

सास्मासु धा रयिमृष्यं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.७७.६

३४३. ओं प्रति भीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।

उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमोसि दुरितार्प देवी [स्वाहा] ॥

३४४. ओं यन्नासत्या भुरग्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।

अयं वा वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः [स्वाहा] ॥

बुद्धिविकास के उपाय

३४५. ओम् आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् ।

महिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशौचिषे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२३.२३

३४६. ओं त्वां मृजन्ति दश योषेणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धौतिभिर्हितम् ।

अव्यो वारोभिरुत देव हूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.६८.७

३४७. ओम् अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन् रोदसी मातरा शुचिः ।

रोमाण्यव्या समया वि धावति मघोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.७५.४

३४८. ओम् अभि त्वं गावः पयसा पयोवृधं सोमै श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।

धनंजयः पवते कृत्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.८४.५

३४९. ओं त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवे ।

त्वां सुपर्ण आभरद् दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.८६.२४

३५०. ओम् एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽह्यो न वाजी तरतीदरातीः ।

पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.९६.१५

३५१. ओं कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भोस्यमृतस्य धाम ।

स इन्द्राय पवसे मत्सरवान् हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.९७.३२

३५२. ओं सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।

सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमै अर्कास्त्रिष्टुभः सं नेवन्ते [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.९७.३५

३५३. ओं प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् ।

भूतिं न भेरा मतिभिर्जुषते [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१०३.१

३५४. ओं सं वत्स इव मातृभिरिन्दुहिन्वानो अज्यते ।

देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१०५.२

३५५. ओं स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।

त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.१०७.२४

धूप्ररकः सुमतिदाता मेधायागः

३५६. ओं तमुत्तामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गोभिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रोसो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानोम् [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.६.५

३५७. ओम् इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मतो अनु भोगमान् वसो दधानो मतिभिः सुजात [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.७.२

३५८. ओं वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पर्नीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०. ६४.१५

३५९ ओम् एवा क्विस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद् गयो दिव्यानि जन्म [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.६४.१६

३६०. ओं तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरै भरै अनु मदेम जिष्णुम् [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.६७.९

३६१. ओं यज्जातवेदो भुवनस्य मुर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.८८.५

३६२. ओम् अयं वेनश्चौदयत् पृथिनगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमानै ।
इममपां सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रो मतिभि र्हन्ति [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.१२३.१

३६३. ओं देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदह्वसुं गिरैः ।
महामनूषत श्रुतम् [स्वाहा] ॥ ऋ० १.६.६

३६४. ओम् अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वर्जेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमेतिरच्छाशदानः [स्वाहा] ॥

ऋ० १.३३.१३

३६५. ओं प्र महिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुभाय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शर्वसे अपावृतम् [स्वाहा] ॥

ऋ० १.५७.१

२४९

बुद्धिनिधिः

बुद्धिविकास के उपाय

३६६. ओं ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रौदसी [स्वाहा] ॥
ऋ० १.१०५.१५
३६७. ओं प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळ्यदभ्यां
स्वादिष्टं मृळ्यदभ्याम् । ता सम्राजो घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१३६.१
३६८. ओं प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहस्रः सूनवे भरे ।
अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्विर्यः [स्वाहा] ॥
ऋ० १.१४३.१
३६९. ओं सेमामविद्धि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा ।
यथो नो मीढ्वान्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् [स्वाहा] ॥
ऋ० २.२४.१
३७०. ओं त्रिभिः पवित्रैरपुषोद्वयैर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् [स्वाहा] ॥
ऋ० ३.२६.८
३७१. ओं प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्योनि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्वाना जिगोति [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.४.१
३७२. ओं प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रीमघं वृषेणं बृहन्तम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.८८.१
३७३. ओं त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्त्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्वा यथो नः सुवितस्य भूरेश्वोवतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.१००.२
३७४. ओं कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् ।
उतो शविष्ठ वृष्यम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६.३१
३७५. ओम् इमां मे इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव ।
उत प्र वर्धया मतिम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६.३२
३७६. ओम् अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.९.१६

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

३७७. ओम् इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे ।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्येपश्यम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ८.५९.६

३७८. ओम् एत उ त्वे अवीवशन् काष्ठं वाजिनो अक्रत ।

सतः प्राप्ताविषुर्मतिम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.२१.७

३७९. ओम् आदीं हंसो यथा गुणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।

अत्यो न गोभिरज्यते [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.३२.३

३८०. ओं पुनानश्चमू जनयन् मतिं कविः सोमौ देवेषु रण्यति ।

अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन् वनैष्वव्यत [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१०७.१८

३८१. ओम् अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।

अयं कक्षीर्वतो महो वि वो मदौ मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.२५.१०

३८२. ओम् मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।

तमिदमे हविष्या समानमिह तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.९९.८

३८३. ओं यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेधा अवसृष्टास आहुताः ।

कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.९९.१४

३८४. ओम् अहं तष्टैव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।

कुवित् सोमस्यापामिति [स्वाहा] ॥ ऋ० १०.११९.५

३८५. ओम् अभि त्वं देवं सेवितारमोण्योः कविक्रतुमचामि सत्यसंव रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् ।

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युत्तु सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ।

प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्रार्णन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि [स्वाहा] ॥ य० ४.२५

३८६. ओं ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् ।

तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जं समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं

गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचो स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं

विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् [स्वाहा] ॥ य० ९.४

३८७. ओं यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेधा अवसृष्टास आहुताः ।

कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये [स्वाहा] ॥

य० २०.७८

२५१

बुद्धिनिधिः

बुद्धिविकास के उपाय

३८८. ओं देवा देवानां भिषजा होतारविन्द्रमश्विनौ ।
 वषट्कारैः सरस्वती त्विषि न हृदये मतिं होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं
 वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज [स्वाहा] ॥ य० २१.५३
३८९. ओं देवस्य सवितुर्मतिर्मासवं विश्वदैव्यम् ।
 धिया भगै मनामहे [स्वाहा] ॥ य. २२.१४
३९०. ओं श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वसु ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
 सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथौ नो धेहि तप इन्द्रियं च [स्वाहा] ॥
 अ० ६.१३३.४
३९१. ओम् अक्षन्नमीमदन्तु ह्यव प्रिया अधूषत ।
 अस्तौषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजान्धिन्द्र ते हरी [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.८२.२
३९२. ओं कया शुभा सर्वयसः सनीडाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
 कया मती कुत एतस एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया [स्वाहा] ॥
 ऋ० १.१६५.१
३९३. ओं स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
 चाक्ष्मो यद् वाजं भरते मती धनाऽऽदित् सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथो [स्वाहा] ॥
 ऋ० २.२४.९
३९४. ओम् उताशिष्टा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना
 वीक्षुद्वेषा अनु वशं ऋणमाददिः स ह वाजी संमिथे ब्रह्मणस्पतिः [स्वाहा] ॥
 ऋ० २.२४.१३
३९५. ओं मन्दस्वा सु स्वर्णर उत्तेन्द्र शर्यणावति ।
 मत्स्वा विवस्वतो मती [स्वाहा] ॥ ऋ० ८. ६.३९
३९६. ओं स्मदभीशु कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती ।
 महो वाजिनावन्ता सचासनम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२५.२४
३९७. ओं य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिघ ऋषिचोदनः ।
 इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.५१.३
३९८. ओम् अव्यो वारे परि प्रियो हरिवर्नेषु सीदति ।
 रेभो वनुष्यते मती [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.७.६

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

३९९. ओं परि विश्वानि चेतसा मृशसे पर्वसे मृती ।
स नः सोम श्रवो विदः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.२०.३
४००. ओं मृती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावर्ति ।
विप्रस्य धारया कविः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.४४.२
४०१. ओं वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया ।
मृती विप्राः समस्वरन् [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.६३.२१
४०२. ओम् इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मृती ।
सृजदश्वं रथीरिव [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.६४.१०
४०३. ओम् अद्रिभिः सुतः पवते गर्भस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मृती ।
स मौदते नसेते सार्धते गिरा नैनिक्ते अप्सु यजते परीमणि [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.७१.३
४०४. ओं हरि मृजन्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मृती पुरुष्टुतस्य कति चित् परिप्रियः [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.७२.१
४०५. ओम् उदीरय पितरां जार आ भ्रामिर्यक्षति हर्यतो हृत ईष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मुखस्तविष्यते असुरो वेपते मृती [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.११.६
४०६. ओम् इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भ्रामहे मृती ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नातुरम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.११४.१
४०७. ओं का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम ।
विश्वो मृतीरा ततने त्वायाऽधो म इन्द्र शृण्वो हवेमा [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.२९.३
४०८. ओं नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतुन्त्समजैरध्वरे मृतीर्वेन दुषच्चम्वौरासदद्धरिः [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.७२.५
४०९. ओं कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वर्नस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मृतीर्जनयत स्वधाभिः [स्वाहा] ॥
ऋ० ९.९५.१

बुद्धिविकास के उपाय

४१०. ओम् आदा॒रो वा॑ म॒तीनां॑ नास॒त्या मतव॑चसा ।
पा॒तं सोम॑स्य धृ॒ष्णुया॑ [स्वाहा] ॥ ऋ० १.४६.५
४११. ओम् आ नौ॑ ना॒वा म॒तीनां॑ या॒तं पा॒राय॑ गन्त॒वे ।
यु॒ज्जार्थ॑मश्विना॒ रथे॑म् [स्वाहा] ॥ ऋ० १.४६.७
४१२. ओम् अ॒स्मा इ॒दु त्यमु॑पमं स्व॒र्षा भ॑रा॒म्याङ्गु॑षमा॒स्येन॑ ।
मं॒हि॒ष्ठम॒च्छोक्ति॑भिर्म॒तीनां॑ सु॒वृक्ति॑भिः सु॒रि वा॑वृ॒धध्यै॑ [स्वाहा] ॥
ऋ० १.६१.३
४१३. ओं यु॒ज्ञैर्वा॑ य॒ज्ञवा॑हसो विप्र॒स्य वा॑ म॒तीनाम् ।
मरु॑तः शृणु॒ता ह॑वम् [स्वाहा] ॥ ऋ० १.८६.२
४१४. ओम् अ॒स्मे ऊ॒ षु वृ॑षणा मादयेथा॒मुत् पु॑र्णी॒हैत॑मूर्मा मदे॒न्ता ।
श्रु॒तं मे॒ अ॒च्छोक्ति॑भिर्म॒तीनामे॑ष्टा नरा॒ निचे॑तारा च॒ कर्णे॑ः [स्वाहा] ॥
ऋ० १.१८४.२
४१५. ओम् अ॒धाय्य॑ग्निर्मानु॒षीषु॑ वि॒क्ष्वपां॑ ग॒भो मि॒त्र ऋ॑तेन॒ साध॑न् ।
आ ह॑र्य॒तो य॑ज॒तः सा॒न्व॒स्था॒दभू॑दु विप्रो॒ हव्यो॑ म॒तीनाम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.५.३
४१६. ओम् उ॒रुं ग॒भीरं॑ ज॒नुषा॑भ्यु॒ग्रं वि॒श्वव्य॑चसम॒वतं॑ म॒तीनाम् ।
इ॒न्द्रं सोम॑सः प्र॒दि॒वि सु॒तासः॑ स॒मु॒द्रं न स्र॑वत॒ आ वि॑शन्ति [स्वाहा] ॥
ऋ० ३.४६.४
४१७. ओं स॒हावा॑ पृ॒त्सु त॒रणि॑र्वा॒व्यान्शी॑ रोद॒सी मे॒हना॑वान् ।
भ॒गो न क॑रे ह॒व्यो म॒तीनां॑ पि॒तेव॑ चा॒रुः सु॒हवो॑ वयो॒धाः [स्वाहा] ॥
ऋ० ३.४९.३
४१८. ओम् अ॒स्माकं॑ त्वा म॒तीना॑मा स्तोमं॒ इन्द्र॑ यच्छतु ।
अ॒र्वागा॑ वर्त॒या ह॑री [स्वाहा] ॥ ऋ० ४.३२.१५
४१९. ओं प्र तव्य॑सो नम॒सक्तिं॑ त॒ुरस्या॑ऽहं पू॒ष्ण उ॒त वा॒योरे॑दिक्षि ।
या रा॒धसा॑ चोदि॒तारा॑ म॒तीनां॑ या वा॒र्जस्य॑ द्रवि॒णोदा॑ उ॒त त्मन् [स्वाहा] ॥
ऋ० ५.४३.९
४२०. ओं स ई॑ पा॒हि य ऋ॑जो॒षी तरु॑त्रो यः शि॒प्रवान् वृ॑ष॒भो यो म॒तीनाम् ।
यो गो॑त्र॒भिद् व॑ज्र॒भिद् यो ह॑रि॒ष्वाः स इ॒न्द्र चि॒त्रां अ॒भि तृ॑न्धि वा॒जान् [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.१७.२

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

४२१. ओं यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.४४.२

४२२. ओं या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कुलशा सोमधानी ।

प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्केः [स्वाहा] ॥

ऋ० ६.६९.२

४२३. ओम् इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातुं द्रविणो दधाना ।

सं वामञ्जन्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः [स्वाहा] ॥

ऋ० ६.६९.३

४२४. ओम् आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधुमादो वहन्तु ।

जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे [स्वाहा] ॥

ऋ० ६.६९.४

४२५. ओं प्राग्नये विश्वशुचै धियुधेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।

भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.१३.१

४२६. ओम् अप द्वारो मतीनां प्रुत्ता ऋण्वन्ति कारवः ।

वृष्णो हरस आयवः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१०.६

४२७. ओं विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।

यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.७६.४

४२८. ओं वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अहः प्रतरीतोर्षसो दिवः ।

क्राणा सिन्धूनां कुलशा अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन् मनीषिभिः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.८६.१९

४२९. ओं सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।

जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.९६.५

४३०. ओम् आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूष ।

सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.९७.३७

४३१. ओं परि गेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः ।

सोमः पुनानश्चम्वौर्विशदरिः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.१०३.४

बुद्धिविकास के उपाय

४३२. ओं मंसीमहि त्वा वयमस्मार्कं देव पूषन् ।

मतीनां च सार्धनं विप्रोणां चाध्वम् [स्वाहा] ॥ ऋ० १०.२६.४

४३३. ओं समिद्धो अज्जन कृदेरं मतीनां घृतमग्ने मधुम त्पिन्वमानः ।

वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् [स्वाहा] ॥

य० २९.१

४३४. ओं गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् ।

सं देवो देवेन सवित्रा गतु सं सूर्येण रोचते [स्वाहा] ॥ य० ३७.१४

४३५. ओं वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।

घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति [स्वाहा] ॥

अ० १३.१.३३

४३६. ओम् अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।

ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।

तस्य देवस्य । कुन्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।

उद्वैपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् [स्वाहा] ॥

अ० १३.३.१९

४३७. ओं यो दध्ने अन्तरिक्षे न मृह्णा पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।

तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् [स्वाहा] ॥

अ० १८.३.६३

४३८. ओं वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूर्यो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।

प्राणः सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हादिमाविशन्मनीषया [स्वाहा] ॥

अ० १८.४.५८

४३९. ओं तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वेया मते ।

आ पेप्राथ महित्वना [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६८.२

४४०. ओम् इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिभ्याम् ।

पिबा सुतस्य मतेरिह मघोश्चकानश्चारुर्मदाय [स्वाहा] ॥ अ० २.५.१

४४१. ओम् अरा इवेदचरमा अहैव प्र प्रे जायन्ते अकवा महोभिः ।

पृश्नैः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.५८.५

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

४४२. ओं शिवत्र ओदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्नीनसस्ते मृत्या अरण्याय सुमरो
रुरु रौद्रः क्वयिः कुटरेर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः [स्वाहा] ॥

यं २४.३९

४४३. ओं मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।

मृत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा व्ययम् [स्वाहा] ॥ अं ६.४१.१

४४४. ओम् इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ् आत्या हैमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती ।
पङ्क्त्यै निधनेवन्निधनेवत आग्रयण आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ
त्रिणवत्रयस्त्रिंशभ्यां शाक्वररैवते विश्वकर्म ऋषिः ।

प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः [स्वाहा] ॥ यं १३.५८

४४५. ओं सुष्टुतिं सुमतीवृधौ रातिं सवितुरीमहे ।

प्र देवाय मतीविदे [स्वाहा] ॥ यं २२.१२

सुमति-मन्त्राः

४४६. ओं यास्तै राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।

ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा [स्वाहा] ॥

ऋं २.३२.५

४४७. ओं न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नीः ।

देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाऽव त्मना बृहतः शम्बरं भेत [स्वाहा] ॥

ऋं ७.१८.२०

४४८. ओं को वां दाशत् सुमतये चिदस्यै वसू यद् धेथे नर्मसा पुदे गोः ।

जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणैव मर्नसा चरेन्ता [स्वाहा] ॥

ऋं १.१५८.२

४४९. ओम् इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।

महो हिदाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रणवमर्वसे यजध्वम् [स्वाहा] ॥

ऋं ६.२९.१

४५०. ओम् ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मर्दूधीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।

परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया ससुरदिम् [स्वाहा] ॥

ऋं १.७३.६

४५१. ओं त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे युजियोसः ।

नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः [स्वाहा] ॥

ऋं १.७३.७

बुद्धिनिधिः

२५७

४५२. ओम् अश्याम् ते सुमतिं देवयुज्या क्षयद्विरस्य तव रुद्र मीदिवः।

सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः [स्वाहा] ॥

ऋ० १.११४.३

४५३. ओं त्वेषं वयं रुद्रं येज्ञसाधं वहुं कविमवसे नि ह्वयामहे।

आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे [स्वाहा] ॥

ऋ० १.११४.४

४५४. ओं सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अशिवना प्रावतं मे।

अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यै रराथाम् [स्वाहा] ॥

ऋ० १.११७.२३

४५५. ओं यो वां युजैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः।

उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू [स्वाहा] ॥

ऋ० १.१५१.७

४५६. ओं तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद् ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।

आस्यं जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्तै विष्णो सुमतिं भजामहे [स्वाहा] ॥

ऋ० १.१५६.३

४५७. ओं यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनाऽरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन।

यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिर्विदती रिणार्ति पश्वः सुधितेव बृहणो [स्वाहा] ॥

ऋ० १.१६६.६

४५८. ओं प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम्।

रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् [स्वाहा] ॥

ऋ० १.१७१.१

४५९. ओम् आवदंस्त्वं शकुने भद्रमावद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः।

यदुत्पतन् वर्दसि कर्करियथा बृहद् वर्दम विदथे सुवीराः [स्वाहा] ॥

ऋ० २.४३.३

४६०. ओम् ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः।

देवैरवो मिमीहि सं जेरित्रे रक्षो च नो दम्यैभिरनीकैः [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.१.१५

४६१. ओं समित्समित् सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रोसि वस्वः।

आ देव देवान् यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमनो यक्ष्यग्ने [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.४.१

४६२. ओं यदज्ञं त्वी भरताः सन्तरयुगव्यन् ग्रामे इषित इन्द्रजुतः।

अर्षादहं प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.३३.११

४६३. ओम् अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।

प्र पिन्वध्वमिष्यन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पूणध्वं यात शीमेम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.३३.१२

४६४. ओं या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासंश्रवन्ती पीपर्यद् देव चित्रा।

तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.५७.६

४६५. ओं स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत्।

विश्वान्यस्मै सुदिनोनि रायो द्युम्नान्ययो वि दुरो अभि द्यौत् [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.४.६

४६६. ओम् अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः।

स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमाऽस्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.४.८

४६७. ओं तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात्।

आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहते अग्ने महि शर्म भद्रम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.१.१०

४६८. ओम् एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।

यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्व्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणार्ति [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.२७.३

४६९. ओं महि महे तवसे दीध्ये नृनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान्।

यो अस्मै सुमतिं वाजसातो स्तुतो जनै समर्थश्चिकेत [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.३३.१

४७०. ओं तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः।

सा नः सुदानुर्मृळ्यन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुवितार्य गम्याः [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.४१.१८

४७१. ओं पुरुषाणि चिद्भ्यस्त्यवो नूनं वो वरुण।

मित्रे वंसि वां सुमतिम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ५.७०.१

बुद्धिनिधिः

२५९

४७२. ओं विभूर्बल्लग्न उभयाँ अनु ब्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यतै धीतिं सुमतिमो वृणीमहे ऽ धे स्मा नस्त्रिवरुथः शिवो भव [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.१५.९
४७३. ओं नू सद्मानै दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधै देवानां जन्म वस्युर्ववन्द [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.५१.१२
४७४. ओं तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव ।
इन्द्रस्य चा रभामहे [स्वाहा] ॥ ऋ० ६.५७.५
४७५. ओं वि जयुषा रथ्या यातमर्द्धिं श्रुतं हर्वं वृषणा वध्निमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवै पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू [स्वाहा] ॥
ऋ० ६.६२.७
४७६. ओं यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.६.६
४७७. ओं धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्मोणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा ऽ ऽ न इन्द्रेः सुमतिं गन्त्वच्छे [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.१८.४
४७८. ओं प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.३१.१०
४७९. ओम् ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत् प्रतीची जूर्णिद्वतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.३९.१
४८०. ओं यो ब्रह्मणे सुमतिमा यजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्थुं मघवानो अयं उरुक्षयाय चक्रिरे सुधातु [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.६०.११
४८१. ओं त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्त्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पचो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वोवतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.१००.२
४८२. ओं विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् ।
त्रिषु जातस्य मनसि [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२.२१

धौप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः

४८३. ओं न देवानामपि हुतः सुमतिम् न जुगुक्षतः।

श्रवो बृहद् विवासतः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.३१.७

४८४. ओं यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हमहे वयम्।

विद्या ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गुमेम् गोमेति व्रजे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.५१.५

४८५. ओं समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः।

आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ [स्वाहा] ॥

४८६. ओं देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमोः।

ऋ० ९.९६.२

आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्त्रतमाः [स्वाहा] ॥

४८७. ओं यस्तै अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे।

ऋ० ९.९७.२६

इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स धुमो अमवान् भूषति धून् [स्वाहा] ॥

४८८. ओम् अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः।

ऋ० १०.११.७

ते स्याम् ये रणयन्तु सोमैरेनोत तुभ्यं रथोव्ह भक्षैः [स्वाहा] ॥

४८९. ओं तां सेवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्।

ऋ० १०.१४८.३

यामस्य कण्वो अर्दुहत् प्रपीनां सहस्रधारां पर्यसा महीं गाम् [स्वाहा] ॥

४९०. ओं देवस्य चेततो महीं प्र सेवितुह्वामहे।

य० १७.७४

सुमतिं सत्यराघसम् [स्वाहा] ॥ य० २२.११

४९१. ओम् आ नो अग्ने सुमतिं संभूलो गमेदिमां कुमारिं सह नो भगेन।

जुष्टा वरेषु समनेषु वलुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै [स्वाहा] ॥ अ० २.३६.१

४९२. ओं यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन्।

एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः [स्वाहा] ॥ अ० ४.२३.२

४९३. ओं प्र सुमतिं सेवितर्वाय कृतये महस्वन्तं मत्सुरं मादयाथः।

अर्वाग्वामस्य प्रवतो निर्यच्छतं तो नो मुञ्चतुमंहसः [स्वाहा] ॥ अ० ४.२५.६

४९४. ओं पर्यस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः।

ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु [स्वाहा] ॥

अ० ६.२२.२

२६१

बुद्धिनिधिः

४९५. ओं तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।

यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारं महिषो भगोय [स्वाहा] ॥

अ० ७.१५.१

४९६. ओं धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।

वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वरोधसः [स्वाहा] ॥ अ० ७.१७.२

४९७. ओम् एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।

तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशूत्समिध्वे

जातवेदसि ब्रह्मणा [स्वाहा] ॥ अ० १०.६.३५

४९८. ओम् उदिह्युदिहि सूर्यं वर्चसा माभ्युदिहि ।

यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषुमा सुमतिं कृधि तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधाया मा धेहि परमे व्योमिन् [स्वाहा] ॥

अ० १७.५.७

४९९. ओं यस्तै अग्ने सुमतिं मतो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।

इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमां अमवान् भूषति द्यून् [स्वाहा] ॥

अ० १८.१.२४

५००. ओं चित्राणि साकं दिवि रौघ्नानि सरीसृपाणि भुवने ज्वानि ।

तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहोनि गीर्भिः संपर्यामि नाकम् [स्वाहा] ॥

अ० १९.७.१

५०१. ओम् अंहोमुचे प्रभरे मनीषामा सुत्राव्यो सुमतिमावृणानः ।

इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः [स्वाहा] ॥

अ० १९.४२.३

५०२. ओं स धातरं वरुणमग्न आवृत्स्व

देवां अच्छा सुमती यज्ञर्वनसं ज्येष्ठं यज्ञर्वनसम् ।

ऋतावीनमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.१.२

५०३. ओं शिशुर्न जातोऽवचक्रद्द वने स्वर्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।

दिवो रेतासा सचते पयोवृष्टा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.७४.१

५०४. ओम् ए॒वा ते॒ अग्ने॒ वि॒म॒दो॒ मनी॒षामूर्जो॑ न॒पाद॒मृते॑भिः स॒जोषोः॑ ।
गिर॒ आव॑क्षत् सु॒मती॒रिया॒न इष॒मूर्जो॑ सु॒क्षिति॑ विश॒वमा॒भोः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.२०.१०

५०५. ओं वनी॑वानो॒ मम॒ दूता॒स इन्द्रं॑ स्तोमा॒श्चर॑न्ति सु॒मती॒रिया॒नाः ।
ह॒दि॒स्पृशो॑ मन॒सा व॒च्यमा॑ना अ॒स्मभ्यं॑ चि॒त्रं वृष॑णं र॒यिं दा॑ः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.४७.७

५०६. ओं पुरा॑ स॒बा॒धाद॒भ्याव॑वृत्स्व नो धेनु॒र्न वृत्सं॑ यव॒सस्य॑ पि॒प्युषी॑ ।
स॒कृत् सु॒ ते सु॒मति॑भिः शत॒क्रतो॒ सं पत्नी॑भिर्न वृष॑णो नसीमहि [स्वाहा] ॥

ऋ० २.१६.८

५०७. ओं को अस्य॑ वीरः स॒ध॒माद॑माप॒ समानं॑ श सु॒मति॑भिः को अस्य॑ ।
कद॑स्य चि॒त्रं चि॑किते कदूती वृ॒धे भु॑वच्छश॒मानस्य॑ यज्योः [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.२३.२

५०८. ओं कृते॑ चिद॒त्र म॒रुतो॑ रण॒न्ताऽन॑व॒द्यासः॑ शु॒चयः॑ पाव॒काः ।
प्र णो॑ऽवत सु॒मति॑भिर्न॒जत्राः॑ प्र वाजै॑भिस्तिरत पु॒ष्यसे॑ नः [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.५७.५

५०९. ओं पूर्वा॑पुषं सु॒हव॑ पुरु॒स्पृहं॑ भुज्युं वाजै॑षु पू॒र्व्यम् ।
स॒च॒नाव॑न्तं सु॒मति॑भिः सोभ॑रे वि॒द्वेष॑समने॒हसम्॑ [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२२.२

५१०. ओं द॒श॒स्यन्ता॑ मन॒वे पू॒र्व्यं दि॒वि यवं॑ वृ॒क्रेण॑ कर्षथः ।
ता वा॒ग॒द्य सु॒मति॑भिः शुभ॒स्पती॑ अ॒र्श्विना॑ प्र स्तु॒वीमहि॑ [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२२.६

५११. ओं व॒यं हि वां॑ हवाम॒ह उ॒क्ष॒ण्यन्तो॑ व्य॒श्ववत्॑ ।

सु॒मति॑भिरुप॒ वि॒प्रावि॑हा॒गतम्॑ [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.२६.९

५१२. ओं सु॒ष्टुति॑ सु॒मती॑वृ॒धो रा॒तिं स॑वि॒तुरी॑महे ।

प्र दे॒वाय॑ मती॒विदे॑ [स्वाहा] ॥ य० २२.१२

प्रमति-मन्त्राः

५१३. ओं त्वं नो॑ अग्ने पि॒त्रोरु॑प॒स्थ आ दे॒वो दे॒वेष्व॑नवद्य जागृ॒विः ।

त॒नूकृ॑द् बो॒धि प्र॑म॒तिश्च॑ का॒रवे॑ त्वं के॒ल्याण॑ वसु॒ विश॒वमो॑षिषे [स्वाहा] ॥

ऋ० १.३१.९

५१४. ओं त्वमेग्ने प्रमेतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत् तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामेदाम्य [स्वाहा] ॥
ऋ० १.३१.१०
५१५. ओं त्वमेग्न उरुशंसाय वाघते स्पाहं यद्रेकणः परमं वनोषि तत् ।
आघस्य चित् प्रमेतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः [स्वाहा] ॥
ऋ० १.३१.१४
५१६. ओम् इमामेग्ने शरणि मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमेतिः सोम्यानां भूमिरस्यृषिकृन् मर्त्यानाम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.३१.१६
५१७. ओम् इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं मेहेमा मनीषयो ।
भद्रा हि नः प्रमेतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव [स्वाहा] ॥
ऋ० १.९४.१
५१८. ओं वि ह्यख्यं मनेसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वो सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमेतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् [स्वाहा] ॥
ऋ० १.१०९.१
५१९. ओं यूयं देवाः प्रमेतिर्युयमोजौ यूयं द्वेषांसि सनुतयुयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमेध्वमद्या च नो मृळ्यतापरं च [स्वाहा] ॥
ऋ० २.२९.२
५२०. ओं सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत ।
स हि नः प्रमेतिर्मही [स्वाहा] ॥ ऋ. ६.४५.४
५२१. ओम् उतो घा ते पुरुष्या इदासन् येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अघ्राहं त्वा मघवज्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमेतिः पितेव [स्वाहा] ॥
ऋ० ७.२९.४
५२२. ओम् इन्द्र उक्थेन शर्वसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यार्युषः ।
यज्ञो मनुः प्रमेतिर्नः पिता हि कृमा सर्वतोतिमर्दिति वृणीमहे [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.१००.५
५२३. ओं क्रतुप्रावा जरिता शर्वतामव इन्द्र इदमभ्रा प्रमेतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूर्धेर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतोतिमर्दिति वृणीमहे [स्वाहा] ॥
ऋ० १०.१००.११

५२४. ओम् एमं यजमनुमतिजगाम सुक्षेत्राये सुवीरताये सुजातम् ।

भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यजमवतु देवगौपा [स्वाहा] ॥ अ० ७.२०.५

५२५. ओं यो दुधे अन्तरिक्षे न मद्वा पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।

तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् [स्वाहा] ॥

अ० १८.३.६३

५२६. ओम् एतायामोपं गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।

अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः [स्वाहा] ॥

ऋ० १.३३.१

५२७. ओम् अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः स्रुप्त यद्भीः ।

न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् [स्वाहा] ॥

ऋ० १.७१.७

५२८. ओं भुवोऽविता वामदैवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजेसातौ ।

त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसौ जरित्रे विश्वघ्न स्याः [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.१६.१८

५२९. ओम् उपो ह यद् विदथं वाजिनो गुर्ध्निभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।

अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.९३.३

५३०. ओं गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईदृ रयिं यशसं पूर्वभाजेम् ।

इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्यैभिस्तिरतं देष्णैः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.९३.४

५३१. ओं तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः ।

त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.१९.२९

५३२. ओं मार्किर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।

विद्या हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे तै सन्तु सख्या शिवानि [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.२३.७

५३३. ओं समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजैभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।

सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि [स्वाहा] ॥

ऋ० १.५३.५

बुद्धितिक्रम के उपाय अमतिनिवारण-मन्त्राः

५३४. ओं मा नो अग्नेऽमृतये मावीरताये रीरधः।

मागोताये सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.१६.५

५३५. ओं मा नो अग्नेऽवीरते परो दा दुर्वाससेऽमृतये मा नो अस्यै।

मा नः क्षुधे मा रक्षसे ऋतावो मा नो दमे मा वन आर्जुहर्थाः [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.१.१९

५३६. ओं सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पशवः।

नि बाधते अमतिर्नृगता जसुर्वेन वैवीयते मतिः [स्वाहा] ॥ ऋ० १०.३३.२

५३७. ओम् एभिर्द्युभिः सुमनो एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विनो।

इन्द्रेण दस्युं दुर्यन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रेभेमहि [स्वाहा] ॥

ऋ० १.५३.४

५३८. ओं समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम्।

आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.८.२

५३९. ओं ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता।

आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ३.५३.१५

५४०. ओम् आरे अस्मदमतिमारे अहं आरे विश्वो दुर्मतिं यन्निपासि।

दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सर्वसे स्वस्ति [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.११.६

५४१. ओं युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम्।

ऋध्वद्वेषः कृणुत विश्ववेदसः [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.१८.११

५४२. ओं गोभिष्टरेममतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।

वृयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनैना जयेम [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.४२.१०

५४३. ओम् अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निऋतिं सेधतामतिम्।

आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाय्यं भरत श्लोकमद्रयः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.७६.४

५४४. ओं पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः।

रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् [स्वाहा] ॥

यं १७.५४

५४५. ओं पर्यसा शुक्रममृतं जनित्रं सुरेया मूत्राज्जनयन्तु रेतः।
अपामेति दुर्मतिं बाधमाना ऊर्वेधं वार्तं सब्धं तदारात् [स्वाहा] ॥

य० १९.८४

५४६. ओं शङ्खेनोमीवाममेति शङ्खेनोत सदान्वाः।

शङ्खो नो विश्वमैषजः कृशेनः पातवंहसः [स्वाहा] ॥ अ० ४.१०.३

५४७. ओं गोभिष्टरेमामेति दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे।

वयं राजेसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम [स्वाहा] ॥ अ० ७.५०.७

५४८. ओम् अनुड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादेवघात।

आ रौहत सवितुर्नावमेतां षडभिरुर्वीभिरमतिं तरेम [स्वाहा] ॥ अ० १२.२.४८

५४९. ओं त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान।

त्वयिमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् संहस्वारादरोतिममतिं
क्षुधं च [स्वाहा] ॥ अ० १९.३१.११

५५०. ओम् अरुसं कृत्रिमं नादमेरुसाः सप्त विस्त्रेसः।

अपेतो जङ्घिडामेतिमिषुमस्तैव शातय [स्वाहा] ॥ अ० १९.३४.३

५५१. ओं चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनौ भिया मे अमतेरिदद्विः।

रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तौषन्मघवन्पुरुवसुः [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.३६.३

५५२. ओं त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि।

त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शधिष्ठ गातुवित् [स्वाहा] ॥

ऋ० ८.६६.१४

५५३. ओं विषूदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्वे ईशते।

तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धेवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुभिर्णः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.४३.३

दुर्मतिनिवारण-मन्त्राः

५५४. ओं त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम्।

जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः।

रिष्टं न यामन्तपे भूत दुर्मतिर्विश्वार्प भूत दुर्मतिः [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१३१.७

५५५. ओं परि गो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेभ्यः दुर्मतिर्मही गात।

अवे स्थिरा मघवदभ्यस्तनुष्व मीदवस्तोकाय तनयाय मृळ [स्वाहा] ॥

ऋ. २.३३.१४

बुद्धिनिधिः

२६७

५५६. ओं प्र पीपय वृषभ जित्वा वाजानग्रे त्वं रोदसी नः सुदौघैः।

देवेभिर्देव सुरुचो रुचानो मा नो मर्त्तस्य दुर्मतिः परिष्ठात् [स्वाहा] ॥

ऋ० ३.१५.६

५५७. ओं सनैम्यस्मद् युयोर्त दिद्यु मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ् नः [स्वाहा] ॥ ऋ० ७.५६.९

५५८. ओम् अपो षु णे इयं शरुरादित्या अपं दुर्मतिः।

अस्मदेत्वजघ्नुषी [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६७.१५

५५९. ओम् अव स्वेदा इवाभितो विष्वक् पतन्तु दिद्यवः।

दूर्वाया इव तन्तवो व्यस्मदेतु दुर्मतिर

देवी जनित्र्यजीजनद्भ्रा जनित्र्यजीजनत् [स्वाहा] ॥ ऋ० १०.१३४.५

५६०. ओं परि नो रुद्रस्य हेतिवृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः।

अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीद्वस्तोकाय तनेयाय मृड [स्वाहा] ॥

यं १६.५०

५६१. ओं मा नो अग्ने दुर्मृतये सचैषु देवेद्वैष्वग्निषु प्र वौचः।

मा ते अस्मान् दुर्मृतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.१.२२

५६२. ओं प्र तद्वाचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति।

स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्।

अव स्रवेदघर्शसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१२९.६

५६३. ओम् आरे अस्मदमेतिमारे अहं आरे विश्वा दुर्मतिं यन्निपासिं।

दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचैसे स्वस्ति [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.११.६

५६४. ओं ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धृतं रयिं सहवीरं वचस्यवै।

कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठापे दुर्मतिं हतम् [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.४०.१३

५६५. ओम् ऋतं सत्यमृतं सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद् भैरामः।

ओषधयः प्रति मोदध्वमग्निमेतं शिवमायन्तमभ्यत्रे युष्माः।

व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्तो अपं दुर्मतिं जहि [स्वाहा] ॥

यं ११.४७

५६६. ओं सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।

सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामपे दुर्मतिं हतम् [स्वाहा] ॥

अ० १४.२.६

५६७. ओम् अव यत् स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।

राजुन्नप द्विषः सेध मीद्वो अप स्त्रिधः सेध [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.७९.९

५६८. ओं स मर्मज्ञान इन्द्रियाय धायस् ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।

वृषा शुभेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शयहेव शुरुधः [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.७०.५

५६९. ओं प्र प्रो वो अस्मे स्वयंशोभिरुती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् ।

स्वयं सा रिष्यध्वै या न चपेभे अत्रैः ।

हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१२९.८

५७०. ओं पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्त्रिधोऽवयाता सदमिदं दुर्मतीनां देवः सन् दुर्मतीनाम् ।

हन्ता पापस्य रक्षसेस्त्राता विप्रस्य मावेतः ।

अधा हि त्वी जनिता जीजनद् वसो रक्षोहणै त्वा जीजनद् वसो [स्वाहा] ॥

ऋ० १.१२९.११

मेधा-मन्त्राः

५७१. ओं३म् ये हरी मेधयोक्था मदेन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वौ ।

ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ४.३३.१०

५७२. ओम् इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वते इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिनो ।

यां वां होत्रो परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीष जिन्वतम् [स्वाहा] ॥

ऋ० ७.१०४.६

५७३. ओं तं वेधां मेधयोह्यन् पवमानमधि द्यवि ।

धूर्णसिं भूरिधायसम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ९. २६.३

५७४. ओम् अंशुरंशुष्टे देव सोमाप्योयतामिन्द्रोयैकधनविदे ।

आ तुभ्यमिन्द्रः प्यार्यतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व ।

आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्त्या मेधर्या स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय

एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्योम् [स्वाहा] ॥

य. ५.७

५७५. ओम् अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि मा निर्वर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनैः ।
 2097 सन्या मेधयो रय्या पोषेण [स्वाहा] ॥ यं १२.७

५७६. ओं यां मेधां देवगुणाः पितरश्चोपासते ।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ यं ३२.१४

५७७. ओं न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।

त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्तु त्वज्जनो मायी बिभाय [स्वाहा] ॥

अं ५.११.४

५७८. ओं त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गंहि ।

त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञियो [स्वाहा] ॥ अं ६.१०८.१

५७९. ओं मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।

प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामर्वसे हुवे [स्वाहा] ॥ अं ६.१०८.२

५८०. ओं यां मेधामृभवो विदुर्या मेधामसुरा विदुः ।

ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्यावैशयामसि [स्वाहा] ॥ अं ६.१०८.३

५८१. ओं यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।

तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु [स्वाहा] ॥ अं ६.१०८.४

५८२. ओं मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।

मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वैशयामहे [स्वाहा] ॥ अं ६.१०८.५

५८३. ओं श्रिये कं वो अधि तनुषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युन्मासो धनयन्ते अग्निम् [स्वाहा] ॥

ऋं १.८८.३

५८४. ओम् आ यद् देवस्याद् दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।

ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् [स्वाहा] ॥

ऋं १.१६५.१४

५८५. ओं चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् [स्वाहा] ॥ अं ९.७.११

५८६. ओम् अस्तावि मन्मे पूर्वं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

पूर्वीऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत [स्वाहा] ॥ ऋं ८.५२.९

५८७. ओं यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।

अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥ अं १९.४३.१

५८८. ओं राजा मेधाभिरीयते पर्वमानो मनावधि ।

अन्तरिक्षेण यातवे [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.६५.१६

५८९. ओं तं नो दात मरुतो वाजिनं रथं आपानं ब्रह्म चितयेद् दिवेदिवे ।

इषं स्तोतृभ्यो वृजनैषु कारवे सनि मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः [स्वाहा] ॥

ऋ० २.३४.७

५९०. ओं यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।

दर्दं ऋचा सनि यते दर्दं मेधामृतायते [स्वाहा] ॥ ऋ. ५.२७.४

५९१. ओं प्र सू महे सुशरुणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जार्यमानाम् ।

य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिन्नानो अकृणोदिदं नः [स्वाहा] ॥

ऋ० ५.४२.१३

५९२. ओम् अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभे ।

अहं सूर्यं इवाजनि [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६.१०

५९३. ओम् अस्मे धेहि द्युमद् यशो मधवदभ्यश्च मह्यं च ।

सनि मेधामुत श्रवः [स्वाहा] ॥ ऋ० ९.३२.६

५९४. ओं पर्वमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।

मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हयो मेधामभि प्रयोसि च [स्वाहा] ॥

ऋ० ९.१०७.२५

५९५. ओम् आकूतिमग्निं प्रयुजं स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजं स्वाहा

चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजं स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजं स्वाहा

प्रजार्पतये मनवे स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥ य० ११.६६

५९६. ओं सदेसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य कार्म्यम् ।

सनि मेधार्मयासिषं स्वाहा ॥ य० ३२.१३

५९७. ओं मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजार्पतिः ।

मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ य० ३२.१५

५९८. ओं श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूवे ।

सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च [स्वाहा] ॥

अ० ६.१३३.४

५९९. ओं ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।

प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् [स्वाहा] ॥

अ. ११.५.२४

२७१

बुद्धिनिधिः

६००. ओं द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।

2097 अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः [स्वाहा] ॥ अ० १२.१.५३

६०१. ओं वर्चसा मां समनक्त्वग्निमेधां मे विष्णुर्नक्त्वासन्।

रयिं मे विश्वे नियच्छन्तु देवाः स्योनो मापः पवनैः पुनन्तु [स्वाहा] ॥

अ० १८.३.११

६०२. ओं मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मेथिष्टन।

सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहृतोऽहं सुमेधां वर्चस्वी [स्वाहा] ॥ अ० १९.४०.२

६०३. ओं मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः।

शिवा नः शंसन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः [स्वाहा] ॥ अ० १९.४०.३

६०४. ओम् अग्नै समिधमाहर्षं बृहते जातवेदसे।

स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु [स्वाहा] ॥ अ० १९.६४.१

६०५. ओम् आकृत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा

दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा।

आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी चरो अन्तरिक्ष।

बृहस्पतये हविषो विधेम स्वाहा ॥ य० ४.७

६०६ ओं नृताय सुतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नृरिष्टाय भीमलं

नर्माय रेभं हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीष्वं प्रमदे कुमारीपुत्रं

मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षोणम् [स्वाहा] ॥ य० ३०.६

६०७. ओं मेधाकारं विदथस्य प्रसार्धनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम्।

तमिदमे हविष्या समानमित् तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.९१.८

६०८. ओम् ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च ससे।

अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः [स्वाहा] ॥

य० २९.३

६०९. ओं सोमस्येव जातवेदो अंशुराप्यायतामयम्।

अग्नै विरश्निं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवेतु [स्वाहा] ॥ अ० ५.२९.१३

सुमेधाः-मन्त्राः

६१०. ओं यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः।

प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मार्युष्मन्तः सुमेधसः [स्वाहा] ॥ अ० ७.६३.१

धीप्रेरकः सुमतिदाता मेघायागः

६११. ओम् अग्ने तर्पस्तप्यामह उर्प तप्यामहे तर्पः।

श्रुतानि शृण्वन्तो वयमार्युष्मन्तः सुमेधसः [स्वाहा] ॥ अ० ७.६३.२

६१२. ओं ये यज्ञेन दक्षिण्या समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानुश।

तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृष्णीत मानवं सुमेधसः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.६२.१

६१३. ओं य उदाजन् पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन् परिवत्सरे वल्म।

दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृष्णीत मानवं सुमेधसः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.६२.२

६१४. ओं य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन् पृथिवी मातरं वि।

सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृष्णीत मानवं सुमेधसः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.६२.३

६१५. ओम् अयं नाभो वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन।

सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृष्णीत मानवं सुमेधसः [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.६२.४

६१६. ओं ता सुदेवाय दशुषे सुमेधामवितारिणीम्।

घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.५.६

६१७. ओम् अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् [स्वाहा] ॥

ऋ० १०.१२.५

प्रियमेधा-मन्त्राः

६१८. ओं कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिदधीतमानुशः।

इन्द्रं स्तोमैर्भिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.३.१६

६१९. ओम् अनु प्रलस्यौकसः प्रियमेधास एषाम्।

पूर्वामनु प्रयति वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६९.१८

६२०. ओम् अर्चत प्राचत प्रियमेधासो अर्चत।

अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्वर्चत [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.६९.८

६२१. ओं दध्यङ्ग मे जनुषं पूर्वं अङ्गिराः।

प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मुर्विदुस्ते मे पूर्वं मनुर्विदुः।

तेषां देवेष्वार्यतिरस्माकं तेषु नाभयः।

तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा [स्वाहा] ॥ ऋ० १.१३९.९

६२२. ओं यथा धित् कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् ।

अत्रिं शिञ्जारमश्विना [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.५.२५

६२३. ओं महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।

राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा [स्वाहा] ॥ ऋ० १.४५.४

६२४. ओम् आ वां विश्वामिरुतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।

राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.८.१८

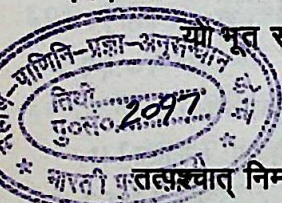
६२५. ओम् आ वां विश्वामिरुतिभिः प्रियमेधा अहूषतः ।

ता वृत्तिर्यातिमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु [स्वाहा] ॥ ऋ० ८.८७.३

६२६. ओं यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा ।

यो भूत सोमैः सत्यमैर्द्धा [स्वाहा] ॥ ऋ. ८.२.३७

इति प्रधान होमः



तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से एक घृताहुति देवे-

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् [स्वाहा] ऋ० १०.१२१.१०

तत्पश्चात् निम्न दो मन्त्रों से शुद्ध घृतसिद्ध मिष्टान्न की अथवा गोदुग्धनिर्मित

मिष्टान्न की दो आहुति देवे-

ओं देवो अग्निः स्विष्टकृद् देवमिन्द्रमवर्धयत् ।

स्विष्टं कुर्वन्त स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो

वसुवर्ने वसुधेर्यस्य वेतु यजे [स्वाहा] ॥ य० २८.२२

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् ।

अग्निष्टत् स्विष्टकृद् विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे ।

अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे

सर्वान्नः कामान्त समर्द्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते, इदं न मम ॥ शत० १४.९.४.२४

तत्पश्चात् निम्न तीन मन्त्रों से तीन पूर्णाहुति घृत-सामग्री की देवे-

ओं धाता र्दधातु नो रयिमिशानो जगत्स्पतिः ।

स नः पूर्णेन यच्छतु [स्वाहा] ॥ अथ० ७.१५.१

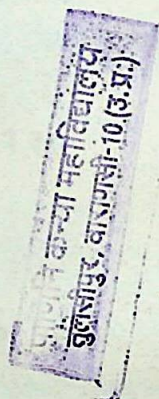
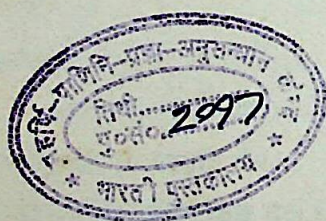
ओं पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।

उतो तदद्य विद्याम् यतस्तत् परे सिच्यते [स्वाहा] ॥ अथ १०.८.२९

ओं पूर्णा देवि परा पत सुपूर्णा पुनरपत ।

वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्ज शतक्रतो [स्वाहा] य. ३.४९

इति धीप्रेरकः सुमतिदाता मेधायागः





विकासः



सात्विक भोजन



औषध-सेवन



गौ-अश्व-सेवा



उषःकाल-सेवन



यज्ञा



तप



स्वाध्याय



सत्संगा



संयम



प्राणायाम



प्रसन्नता



भक्ति